ISSN : 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का
समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल

वर्ष 23 | अंक 1 | जून 2025

www.mpissr.org

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

संरक्षक

प्रोफेसर गोपालकृष्ण शर्मा

सम्पादक

प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक

डॉ. आशीष भट्ट

डॉ. सुदीप मिश्र

सलाहकार मण्डल

प्रोफेसर अनिल कुमार वर्मा

समाज एवं राजनीति अध्ययन केन्द्र, कानपुर (उ.प्र.)

प्रोफेसर बदरीनारायण

गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रोफेसर राम शंकर

पं. एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

प्रोफेसर संजय लोढ़ा

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर संजीव कुमार शर्मा

चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

प्रोफेसर हिमांशु रॉय

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गणेश कावडिया

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

प्रोफेसर अरुण चतुर्वेदी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर उत्तमसिंह चौहान

मध्य प्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रोफेसर सन्दीप जोशी

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

वर्ष 23 जून 2025 अंक 1

सम्पादक
प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक
डॉ. आशीष भट्ट
डॉ. सुदीप मिश्र

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
एवं उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन का स्वायत्त शोध संस्थान)
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा प्रकाशित ***मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल*** अन्तर्विषयक प्रकृति का समीक्षीत अर्द्धवार्षिक जर्नल है। जर्नल के प्रकाशन का उद्देश्य समाज विज्ञानों में अध्ययन एवं अनुसन्धान को बढ़ावा देना तथा समसामयिक विषयों पर लेखकों एवं शोधार्थियों को लेखन एवं सन्दर्भ हेतु समुचित अवसर प्रदान करना है।

यह जर्नल यूजीसी-कन्सोर्टियम फॉर एकेडमिक एण्ड रिसर्च एथिक्स - समूह-एक (UGC-CARE - Group-I) में सूचीबद्ध है।

समाज विज्ञानियों एवं शोधार्थियों से भारतीय एवं क्षेत्रीय सन्दर्भों पर सम-सामयिक विषयों यथा - सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, विकासात्मक, प्रशासनिक मुद्दों, समस्याओं एवं प्रक्रियाओं पर शोधपरक आलेख, पुस्तक समीक्षा आदि आमन्त्रित हैं।

निदेशक
म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)
दूरभाष - (0734) 2510978
e-mail: mpissrhindijournal@gmail.com, mailboxmpissr@gmail.com
web: mpissr.org

जर्नल में प्रकाशित शोध आलेखों में प्रस्तुत किये गये तथा व्यक्त किये गये विचार और टिप्पणियाँ सन्दर्भित लेखकों की हैं। इन्हें सम्पादक अथवा संस्थान के विचारों के प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं लिया जाना चाहिये।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक		**प्रति अंक**	
संस्थागत	रु. 400.00	संस्थागत	रु. 200.00
व्यक्तिगत	रु. 300.00	व्यक्तिगत	रु. 150.00

जर्नल के प्रकाशन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् (शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार) के प्रति संस्थान आभार व्यक्त करता है।

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)

वर्ष 23 जून 2025 अंक 1

भारत में शिक्षा के अधिकार का कार्यान्वयन : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ 1
- पवन कुमार यादव

भारतीय समाजशास्त्र और प्रोफेसर योगेश अटल 13
- सुशांत यादव

बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम, 2011 (समीक्षात्मक अध्ययन) 32
- पंकज कुमार सिंह एवं सीतेश कुमार

गुमशुदा व्यक्ति, उनके परिवार एवं कानून प्रवर्तन परिदृश्य : मध्य प्रदेश के संबंध में एक विश्लेषण 45
- अयूब खान एवं प्रदीप बौहरे

उत्तर प्रदेश की थारू जनजातीय संस्कृति : निरंतरता एवं परिवर्तन 58
- विमल कुमार लहरी

समसामयिक भारत में नगरीकरण की नीतियों का पर्यावरणीय प्रभाव 73
- प्रकाश सिंह एवं प्रदीप कुमार शर्मा

समग्र शिक्षा योजना में नामांकन, धारण एवं अवरोधन का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन 83
- सुनील कुमार दूबे एवं रश्मि श्रीवास्तव

प्रदूषण की सामाजिकी : गंगा नदी के किनारे के शहर और उसका समाज - कानपुर का संदर्भ 98
- विकास कुमार

दलितों की चुनावी भागीदारी के प्रतिमान : अखिल भारतीय तथा राजस्थान राज्य का तुलनात्मक विश्लेषण 114
- धर्मेंद्र मिश्रा एवं रजनी गगवानी

राजस्थान में दलित वोट **128**
- कर्मराज वर्मा

भारतीय राजनीति में जाति की क्रियाशीलता : **138**
अन्य पिछड़े वर्ग के विशेष सन्दर्भ में
- नीता बोरा शर्मा

बाल यौन अपराध एवं रोकथाम के प्रति अभिभावकों में जागरूकता **146**
स्तर का अध्ययन : उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में
- सौरभ जैन

बिहार में मद्यनिषेध के पश्चात् मद्य व्यसन की स्थिति : पूर्वी चंपारण जिले के **157**
विशेष सन्दर्भ में एक आनुभविक अध्ययन
- आशुतोष शरण एवं सुनील महावर

वर्तमान में भारतीय संघीय लोकतंत्र में एक राष्ट्र-एक चुनाव की **173**
आवश्यकता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन
- साक्षी दीक्षित एवं रचना यादव

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 1-12)
UGC-CARE (Group-I)

भारत में शिक्षा के अधिकार का कार्यान्वयन : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

पवन कुमार यादव*

स्वाधीनता के बाद भारत ने एक उदार लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की तथा अपने सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त कराने तथा व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त ये प्रतिबद्धताएं एवं वंचित वर्गों का विकास शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित किये बिना संभव नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी शिक्षा को सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन माना गया है। नेल्सन मंडेला ने भी अपने प्रसिद्ध उद्धरण - "शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है, जिसका उपयोग आप दुनिया को बदलने के लिए कर सकते हैं", के माध्यम से इस तथ्य को रेखांकित किया कि शिक्षा अज्ञानता, गरीबी, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बहिष्करण के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का सशक्त साधन है। भारत में आजादी के 62 वर्षों बाद सन् 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के भाग-3 के अन्तर्गत अनुच्छेद 21-क के माध्यम से शिक्षा के

*असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डीएवी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवान (बिहार)
E-mail: pkybhu@gmail.com

अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा प्राप्त हुआ और भारत विश्व में शिक्षा का अधिकार लागू करने वाला 135वां राज्य बना। तत्पश्चात इसको व्यवस्थित रूप से लागू करने के लिए संसद द्वारा नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 पारित किया गया और एक अप्रैल 2010 से इसे पूरे देश में (उस समय जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर) लागू किया गया। किन्तु शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के लागू होने के 13 वर्षों बाद भी यदि इसकी उपलब्धि की बात करें तो यह मात्र विद्यालयों में नामांकन का अधिकार साबित हुआ है, न कि सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण, समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा के सुनिश्चयन का अधिकार। देश के विभिन्न राज्यों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक अवसरों, संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता में भारी असंतुलन व्याप्त है। असर-2022 के आंकड़े इस सन्दर्भ में हमारी शैक्षिक व्यवस्था की भयावह तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था का सूक्ष्म अवलोकन किया जाये तो यह दर्शित होता है कि आज भी इसकी संरचना मैकाले के बनाये सिद्धांत के आधार पर ही कार्य कर रही है। जिसमें साधन सम्पन्न वर्ग के लोग अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा खरीद सकते हैं, जबकि साधनविहीन वर्ग के लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा न दिला पाने को मजबूर हैं। भारत की यह अलोकतांत्रिक एवं असमानता पर आधारित शिक्षा व्यवस्था क्या समतामूलक एवं समावेशी है? प्रस्तुत शोध पत्र में, भारत में शिक्षा के अधिकार के कार्यान्वयन की वस्तुस्थिति को प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ो के माध्यम से, विश्लेषणात्मक एवं अनुभवाश्रित विधि द्वारा विश्लेषित, विवेचित एवं व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द - शिक्षा का अधिकार, सामाजिक न्याय, समावेशी शिक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति का आधारभूत स्तम्भ है। शिक्षा का अधिकार व्यक्ति के अन्य सभी अधिकारों के उपभोग को सुनिश्चित करने का आधार है। बिना शिक्षा के कोई व्यक्ति अपने अन्य मौलिक अधिकारों का प्रभावी उपभोग नहीं कर सकता है। शिक्षा सभी प्रकार के मानव विकास एवं प्रगति का आधार है। यह सभी मानवीय समस्याओं से लड़ने का सशक्त माध्यम है। नेल्सन मंडेला ने भी अपने प्रसिद्ध उद्धरण कि "शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है, जिसका उपयोग आप दुनिया को बदलने के लिए कर सकते है" के माध्यम से इस तथ्य को रेखांकित किया कि शिक्षा अज्ञानता, गरीबी, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बहिष्करण के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का सशक्त साधन है। 10 दिसंबर 1948 की संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 26 में भी यह संकल्प व्यक्त किया गया है कि "शिक्षा का अधिकार सभी को है, कम से कम प्राथमिक एवं प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षा मुफ्त एवं अनिवार्य होगी"। किसी देश के शासन प्रणाली की सफलता का आधार वहां के नागरिकों की शिक्षा का स्तर है। अरस्तु का यह प्रसिद्ध कथन आज भी प्रासंगिक है कि "साम्राज्यों का भाग्य युवाओं की शिक्षा पर निर्भर करता है"। हमारे देश की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका को रेखांकित करते हुए यह कहा गया है कि "शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना, वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है" (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

इसके साथ ही भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा-2030 के लक्ष्य-4 में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य भी निर्धारित है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी शिक्षा को "सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन माना गया है" (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

भारत में शिक्षा के अधिकार का ऐतिहासिक एवं संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

भारत एक ऐसा राज्य रहा है जहां सदियों तक शिक्षा पर कुछ खास साधन सम्पन्न वर्गों का प्रभुत्व एवं एकाधिकार रहा है। यह सिलसिला आंशिक रूप से बौद्ध काल एवं उसके बाद औपनिवेशिक काल में टूटा, जब ब्रिटिश भारत में स्कूलों के माध्यम से सभी वर्गों के लिए शिक्षा के द्वारा खुले। फिर भी अंग्रजो ने भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए कोई रूचि नहीं दिखाई। अंग्रेजों की उदासीनता को देखते हुए भारतीय विद्वान एवं समाज सेवक महात्मा ज्योतिबा फुले और दादाभाई नौरोजी ने भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रथम प्रयास किया। सन् 1882 में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग (हन्टर आयोग) के समक्ष प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा। यद्यपि उनकी इस मांग पर अंग्रेजी सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया, परन्तु इस माँग ने भारतीयों का ध्यान अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की तरफ जरुर आकर्षित किया। प्रयासों की इस श्रृंखला में अगला प्रयास "सर इब्राहीम रहीमतुल्ला एवं सर चिमनलाल शितवाड़ ने सन् 1906 में बम्बई (वर्तमान मे मुम्बई) सरकार के समक्ष प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा। बम्बई सरकार ने इस प्रस्ताव पर सुझाव देने के लिए एक समिति का गठन किया, परन्तु इस समिति ने अपना सुझाव प्रस्ताव के विपक्ष में दिया" (सिंह, 2014, पृ. 12)।

इन शासकीय प्रयासों के साथ-साथ कुछ निजी संस्थाएं और देशी रियासतों ने भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क बनाने के लिए सराहनीय प्रयास किया। इन प्रयासों में सर्वप्रथम बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड का नाम आता है। जिन्होंने सन् 1893 में प्रयोग स्वरुप अपने राज्य के 'अमरेली' ताल्लुक के 'नौगांव' नामक गाँव में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य कर दिया। इसकी सफलता को देखते हुए सन् 1906 में उन्होंने अपने सम्पूर्ण रियासत में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य करने की व्यवस्था कर दी।

बड़ौदा नरेश के इस कार्य से "गोपाल कृष्ण गोखले सबसे ज्यादा प्रभावित हुए। उन्होंने सन् 1906 में इम्पीरिकल लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा, परन्तु यह प्रस्ताव पास नहीं हो सका। इस श्रृंखला में प्रथम

सफल प्रयास श्री विट्ठल भाई पटेल का रहा। उनके प्रयासों से सन् 1918 में पटेल कानून के नाम से प्रस्ताव पारित हुआ, जिसके द्वारा बम्बई म्यूनिसपल क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य कर दिया गया" (गुप्ता, 2013, पृ. 226)।

इसके कुछ समय पश्चात् देश के अन्य प्रान्तों में भी इसका अनुसरण किया गया। परन्तु यह व्यवस्था मुश्किल से दो वर्ष ही चल पाई थी कि द्वितीय विश्व युद्ध के कारण सभी प्रांतीय योजनायें स्थगित कर दी गयी। परिणामत: भारत में स्वतन्त्रतापूर्व, प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के प्रयासों को कोई विशेष सफलता नहीं मिल पायी।

देश की स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माताओं ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा के अधिकार के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए संविधान के भाग-4 नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद-45 में यह प्रावधान किया था कि "संविधान के लागू होने के 10 वर्षो के अन्दर राज्य 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा" (सरकार एवं मुनीर, 2007, पृ. 37)।

संविधान का अनुच्छेद-41 भी भारत के नागरिकों के शिक्षा के अधिकार की बात करता है। अनुच्छेद 41 के अनुसार "राज्य, अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा" (भारत का संविधान, 2021, पृ. 22)।

इसके साथ ही संविधान का अनुच्छेद-46 यह प्रावधान करता है कि "राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा" (भारत का संविधान, 2021, पृ. 23)।

इसके बाद भी शिक्षा के अधिकार के लिए स्वतंत्रता पूर्व से किए जाने वाले प्रयासों के बावजूद आजादी के 62 वर्षों बाद सन् 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के भाग-3 के अन्तर्गत अनुच्छेद-21(क) के माध्यम से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा प्राप्त हुआ और भारत विश्व में शिक्षा का अधिकार लागू करने वाला 135वां देश बना। तत्पश्चात इसको व्यवस्थित रूप से लागू करने के लिए संसद द्वारा नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 पारित किया गया और एक अप्रैल 2010 से इसे पूरे देश में (उस समय जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर) लागू किया गया।

इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व भी सन् 1992 में मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य एवं सन् 1993 में जे पी उन्नीकृष्ण बनाम आंध्र प्रदेश मामले की सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद-21 जीवन के अधिकार में अंतर्निहित मानते हुए मौलिक अधिकार माना था। इस प्रकार लगभग सौ वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद भारत में आम नागरिक को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ है। जिसके कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में सरकार की जबाबदेही तय हुई है।

भारत में शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन की वस्तुस्थिति

भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 को लागू करना भारतीय समाज के सभी वर्गों के बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा तथा सभी के लिए समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा के सुनिश्चयन की दिशा में एक प्रभावी कदम है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 को लागू हुए एक दशक से अधिक समय बीत चुका है ऐसे में यह देखना अत्यावश्यक हो जाता है कि इसके अंतर्गत निर्धारित प्रावधानों का प्रभावी कार्यान्वयन हो रहा है या नहीं तथा समाज के सभी वर्गों एवं क्षेत्रों के बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा तथा सभी के लिए समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा को सुनिश्चित करने में यह कितना प्रभावी रहा है?

यदि आंकड़ों को देखा जाए तो कुछ राज्यों के उदाहरणों को छोडकर शिक्षा के अधिकार को लागू करने का अब तक का सफर घुटनों पर चलने की तरह रहा है। चूंकि हमारे देश के राजनीतिक विमर्श में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा कोई प्रभावी चुनावी मुद्दा नहीं रहा है। अत: पिछले दस वर्षों के दौरान केंद्र और अधिकांश राज्य सरकारें इसे प्रभावी रूप से लागू करने के प्रति उदासीन ही रहीं हैं।

असर-2022 की रिपोर्ट बताती है कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में "अभी सिर्फ 76 प्रतिशत विद्यालयों में ही पेयजल की सुविधा उपलब्ध है, 76.2 प्रतिशत विद्यालयों में ही प्रयोग करने योग्य शौचालय उपलब्ध है, 68.4 प्रतिशत विद्यालयों में ही लड़कियों के लिए अलग से शौचालय उपलब्ध है, 44 प्रतिशत विद्यालयों में ही पुस्तकालय की किताबों का बच्चों द्वारा उपयोग हो रहा है तथा केवल 7.9 प्रतिशत ही ऐसे विद्यालय हैं जहां बच्चों द्वारा कंप्यूटर का उपयोग हो रहा है" (एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट, 2023)।

अर्थात अभी तक हम शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित न्यूनतम भौतिक संरचना एवं मानवीय संसाधन का विकास भी अपने देश के ग्रामीण क्षेत्रों के सभी विद्यालयों में नहीं कर सके हैं।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम का मुख्य लक्ष्य 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता को सुनिश्चित करना है। असर-2022 के आंकड़े इस सन्दर्भ में भी हमारी ग्रामीण क्षेत्रों की विद्यालयीन व्यवस्था की भयावह तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। असर-2022 की रिपोर्ट का "कक्षा 2 के बच्चों के शैक्षिक प्रदर्शन का यदि हम उदाहरण ले तो कक्षा 2 के 22.3 प्रतिशत बच्चों को अभी अक्षर ज्ञान भी नहीं है, 28.3 प्रतिशत बच्चे अभी अंग्रेजी के बड़े अक्षरों को नहीं पढ़ पाते हैं तथा 16.9 प्रतिशत बच्चे अभी 1-9 तक अंक भी नहीं पहचान सकते हैं" (एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट, 2023)।

इस प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के लागू होने के 13 वर्षों बाद भी यदि इसकी ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यान्वयन की बात करें तो यह मात्र सभी के लिए विद्यालयों में नामांकन का अधिकार साबित हुआ है, न कि शिक्षा का अधिकार।

इसके साथ ही देश के विभिन्न राज्यों में शैक्षिक अवसरों, संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता में भारी असंतुलन व्याप्त है। देश में एक तरफ केरल जैसे राज्य हैं जहाँ बेहतर विद्यालयी संरचना एवं सुविधाएँ है, और जहाँ के बच्चों का शैक्षिक प्रदर्शन भी बेहतर है। वहीं दूसरी तरफ बिहार जैसे राज्य हैं जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत विद्यालयों में निर्धारित न्यूनतम भौतिक संरचना को विकसित करने में राष्ट्रीय स्तर एवं अन्य राज्यों की तुलना में बहुत पीछे है और यहाँ के बच्चों का शैक्षिक प्रदर्शन भी राष्ट्रीय औसत से बहुत निम्न है।

यदि असर-2022 की रिपोर्ट को देखे तो "बिहार में अभी सिर्फ 87.3 प्रतिशत विद्यालयों में ही पेयजल की सुविधा उपलब्ध है, 70.9 प्रतिशत विद्यालयों में ही प्रयोग करने योग्य शौचालय उपलब्ध है, 63.8 प्रतिशत विद्यालयों में ही लड़कियों के लिए अलग से शौचालय उपलब्ध है, 35.4 प्रतिशत विद्यालयों में ही पुस्तकालय की किताबों का बच्चों द्वारा उपयोग हो रहा है, 84.7 प्रतिशत विद्यालयों में ही बिजली उपलब्ध है तथा केवल 1.5 प्रतिशत ही ऐसे विद्यालय हैं जहां बच्चों द्वारा कंप्यूटर का उपयोग हो रहा है" (एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट, 2023)।

इसके साथ ही असर-2022 की रिपोर्ट का "बिहार के सन्दर्भ में कक्षा 2 के बच्चों के शैक्षिक प्रदर्शन का यदि हम उदाहरण ले तो कक्षा 2 के 32.4 प्रतिशत बच्चों को अभी अक्षर ज्ञान भी नहीं है, 37.4 प्रतिशत बच्चे अभी अंग्रेजी के बड़े अक्षरों को नहीं पढ़ पाते हैं तथा 23.2 प्रतिशत बच्चे अभी 1-9 तक अंक भी नहीं पहचान सकते हैं" (एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट, 2023)।

दु:ख की बात है कि इतने प्रयासों के बाद भी हम आज भी इस असंतुलन को मिटा नहीं पाये हैं। जिसका परिणाम यह है कि अपने देश में सभी के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता का सपना आज भी अधूरा है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था का सूक्ष्म अवलोकन किया जाये तो यह दर्शित होता है कि आज भी इसकी संरचना मैकाले के बनाये सिद्धांत के आधार पर ही कार्य कर रही है। जिसमें साधन सम्पन्न वर्ग के लोग अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा खरीद सकते हैं जबकि साधनविहीन वर्ग के लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा न दिला पाने को मजबूर हैं। भारत की यह अलोकतांत्रिक एवं असमानता पर आधारित शिक्षा व्यवस्था क्या शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सही है? क्या ऐसी शिक्षा व्यवस्था से एक आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकेगा?

हमारे देश में व्याप्त विभिन्न सामाजिक स्तर एवं सामाजिक वर्गीकरण की तरह यहाँ शिक्षा एवं विद्यालय में भी वर्गीकरण देखने को मिलता है। जिसके अनुसार अमीर एवं विशिष्ट उच्च वर्ग के बच्चे ज्यादा मंहगें एवं ज्यादा अच्छे विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। इसके विपरीत गरीब एवं निम्न वर्ग के बच्चे सस्ते एवं सुविधाविहीन सरकारी विद्यालयों में पढ़ने के लिए मजबूर हैं। देश में बढ़ते सामाजिक विभाजन का एक कारण यह भी है कि शिक्षा का अधिकार

कानून लागू हुए 13 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बावजूद भी अभी तक हम अपने बच्चों को अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने से मीलों दूर है।

शिक्षा के अधिकार के लागू होने के 13 वर्षों बाद भी अभी हाल ही में संसद में शिक्षा राज्य मंत्री ने बताया की देश में अभी भी 930531 बच्चे प्राथमिक शिक्षा की पंहुच से दूर हैं। इसके साथ ही आंकड़े यह भी दर्शित करते हैं कि प्राथमिक स्तर पर 1.5 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक स्तर पर 3 प्रतिशत, तथा माध्यमिक स्तर पर 12.6 प्रतिशत बच्चें प्रतिवर्ष स्कूल छोड़ रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा का अधिकार सभी बच्चों के विद्यालयों में धारण एवं समावेशन को अभी तक सुनिश्चित करने में सफल नहीं रहा है।

कोविड-19 महामारी के बाद शिक्षा में तेजी से बढ़ते डिजिटलाइजेशन ने भी शिक्षा में समता एवं समावेशन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। यूनेस्को की वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट-2023 बताती है कि "कोविड-19 महामारी के दौरान आनलाइन सीखने की ओर तेजी से बदलाव के कारण दुनिया भर में कम से कम आधे अरब बच्चें वंचित हो गए, जिसका सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभाव गरीब और ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों पर पड़ा है" (द ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट, 2023)।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 की धारा-12(1)(ग) "गैर-अल्पसंख्यक निजी गैर-सहायता प्राप्त स्कूलों को अधिक समतामूलक एवं समावेशी बनाने के लिए वंचित वर्गों के बच्चों के लिए प्रवेश स्तर पर उनकी कुल सीटों का 25 प्रतिशत आरक्षित रखने का प्रावधान करती है" (द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009)।

किन्तु इसके क्रियान्वयन के सन्दर्भ में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि आज भी इसका प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित नहीं हो सका है। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की 2021 की रिपोर्ट के अनुसार, "यह प्रावधान अब तक देश भर में केवल 16 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में ही लागू किया गया है। असम, बिहार, चंडीगढ, छत्तीसगढ, दिल्ली, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश ही केवल ऐसे राज्य और केंद्र शासित प्रदेश हैं, जिन्होंने इस प्रावधान को लागू किया है" (नेशनल कमीशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड राइट्स, 2021)।

इसके साथ ही राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की 2021 की रिपोर्ट के दिल्ली के आंकडे बताते है कि सत्र 2016-17 में इस प्रावधान के अंतर्गत दिल्ली के निजी विद्यालयों में वंचित तबके के बच्चों का नामांकन मात्र 18 प्रतिशत था। इसके साथ ही दिल्ली के आंकड़े यह भी दर्शित करते हैं कि वंचित वर्गों के निजी विद्यालयों में नामांकित इन बच्चों के विद्यालय छोड़ने की दर भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। अर्थात वंचित वर्गों के जिन बच्चों ने इस प्रावधान के अन्तर्गत निजी विद्यालयों में नामांकन लिया था उनका प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने तक इन विद्यालयों में अनेक संरचनात्मक एवं व्यवस्थागत कारणों से धारण सुनिश्चित नहीं हो पा रहा है।

दिव्यांग बच्चों के सन्दर्भ में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन की स्थिति एवं उनके लिए भारत में समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा का सुनिश्चयन अत्यंत चिंतनीय है। यूनेस्को की वर्ष 2019 की 'भारत के लिए शिक्षा की स्थिति रिपोर्ट-2019: विकलांग बच्चे' बताती है कि "भारत में 5-19 आयु वर्ष के बीच 78 लाख से अधिक विकलांग बच्चे हैं। उनमें से केवल 61 प्रतिशत ही किसी शैक्षणिक संस्थान में जा रहे थे। लगभग 12 प्रतिशत ने पढाई छोड दी थी, जबकि 27 प्रतिशत कभी स्कूल ही नहीं गए थे" (एन फॉर नोज: स्टेट ऑफ द एजुकेशन रिपोर्ट फॉर इंडिया 2019 चिल्ड्रेन विद डिसएबिलिटीज, 2019)।

इतना ही नहीं जो दिव्यांग बच्चें विद्यालय जा रहे हैं उनके लिए भी हम अपने सभी विद्यालयों में बाधामुक्त वातावरण एवं संरचना का पूर्ण विकास अब तक नहीं कर पाये हैं। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के वर्ष-2022 के आंकड़े बताते है कि देश के अब तक केवल 71 प्रतिशत सरकारी विद्यालयों में ही दिव्यांग बच्चों के अनुकूल बाधामुक्त संरचना का विकास हो पाया है।

इसके साथ ही शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में हुए कुछ अध्ययनों यथा (ओझा, 2013), (दास, 2014), (मोहलिक, 2017), (कर, 2019), (बोस, 2020), (जवाले एंड गायकवाड, 2021) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में आधारभूत संरचना का अभाव है। इसी तरह (भट्टाचार्य एंड मोहलिक, 2015), (कुमार, 2015), (कर, 2019), (झा एंड रानी, 2015) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय विकास के लिए गठित विद्यालय प्रबंध समिति प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर रहीं हैं। कुछ अध्ययनों जैसे (दास, 2014) में पाया गया कि विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर अत्यंत निम्न है।

वस्तुत: समाज या किसी राज्य में शिक्षा की भूमिका एवं प्रकार्य के सन्दर्भ में मुख्यत: दो सिद्धांत हैं। पहला प्रकार्यवादी सिद्धांत एवं दूसरा संघर्ष सिद्धांत।

प्रकार्यवादी सिद्धांत उन तरीकों पर ध्यान केंद्रित करता है जिनसे सार्वभौमिक शिक्षा समाज की जरूरतों को पूरा करती है। प्रकार्यवादियों का मानना है कि शिक्षा का सबसे पहला कार्य है, अगली पीढ़ी तक बुनियादी ज्ञान और कौशल पहुँचाना। प्रकार्यवादी सिद्धांत के मुख्य सिद्धान्तकार इमाईल दुर्खीम ने लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाने में शिक्षा की अव्यक्त भूमिका की पहचान की है। प्रकार्यवादी सिद्धांतकारों का मानना है कि शिक्षा की अव्यक्त भूमिकाएं हैं, समाज के मूल मूल्यों का संचरण और सामाजिक नियंत्रण।

संघर्ष सिद्धांत शिक्षा की भूमिका एवं कार्यों को सामाजिक असमानता को बनाए रखने और समाज पर प्रभुत्व बनाये रखने वालों की शक्ति को संरक्षित करने के रूप में देखता है। जहाँ प्रकार्यवादी शिक्षा को एक व्यवस्थित समाज के लिए लाभकारी योगदान के रूप में देखते हैं, वहीं संघर्ष सिद्धांतकार शिक्षा एवं शैक्षिक प्रणाली को समाज के निम्न वर्गों को समाज का आज्ञाकारी कार्यकर्ता बनाकर समाज में यथास्थिति बनाए रखने के साधन के रूप में देखते हैं।

इस प्रकार संघर्ष सिद्धांत शिक्षा को एक सामाजिक लाभ या अवसर के रूप में नहीं, बल्कि सत्ता संरचनाओं को बनाए रखने और साधन सम्पन्न के लिए एक विनम्र कार्यबल बनाने के एक शक्तिशाली साधन के रूप में देखता है।

उपरोक्त दोनों सिद्धांतों के सन्दर्भ में भारत में शिक्षा के अधिकार के कार्यान्वयन एवं शैक्षिक प्रणाली के स्वरूप को विश्लेषित किया जा सकता है। भारत में शिक्षा के अधिकार के प्राप्ति के साथ ही वर्तमान भूमंडलीकरण की इस दुनिया में शिक्षा एवं ज्ञान पर एकाधिकार की एक नयी व्यवस्था बनी है, जिसमें पूंजी और बाजार की एक बड़ी भूमिका है। शिक्षा के अधिकार के कारण भारत में पिछले दस वर्षों के दौरान शिक्षा का सार्वभौमिकरण तो हुआ है लेकिन इसका विभाजन भी बहुत गहरा हुआ है। इस नये विभाजन के दो छोर हैं। जहां एक तरफ शहरी क्षेत्रों में महंगे प्राइवेट स्कूल, सरकार द्वारा स्थापित विशिष्ट केन्द्रीय विद्यालय इत्यादि हैं, तो वहीं दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों में साधारण सरकारी और गली मुहल्लों में चलने वाले छोटे और मध्यम स्तर प्राइवेट स्कूल।

भारत में शिक्षा के अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव

यदि हम वास्तव में भारत में शिक्षा के अधिकार तथा समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा को सच्चे अर्थों में सभी के लिए सुनिश्चित करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले पूरे देश में एक सामान शिक्षा प्रणाली की स्थापना के लिए संकल्पित होना होगा। देश की वर्तमान क्षेत्रीय विषमता पर आधारित असमानतापूर्ण एवं सामाजिक भेदभाव को बढ़ावा देने वाली शिक्षा व्यवस्था को समाप्त करने हेतु, सन् 1964 में गठित कोठारी आयोग (शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, 1964-66) द्वारा भी समान स्कूली व्यवस्था की वकालत की गयी थी। आयोग का मानना था कि एक राष्ट्र के तौर पर हमें ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्था लागू करनी चाहिए जिसके आधार पर समाज के सभी क्षेत्रों, वर्गों और समुदायों के बच्चे एक समान शिक्षा हासिल कर सकें। आयोग का यह भी मानना था कि समान स्कूली व्यवस्था के सहारे ही क्षेत्रीय एवं सामाजिक विषमता पर आधारित दोहरी शिक्षा व्यवस्था को खत्म किया जा सकता है। अगर हम समान स्कूली व्यवस्था को अपनी मंजिल मानने को तैयार हों तो शिक्षा का अधिकार कानून भारत में समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण पड़ाव साबित हो सकता है।

इसके साथ ही शिक्षा के अधिकार को सभी के लिए सुनिश्चित करने हेतु हमें ग्रामीण विद्यालयी वातावरण एवं आधारभूत संरचना में व्यापक सुधार की आवश्यकता है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के सभी बच्चों की कक्षाओं तक बाधारहित पंहुच और शिक्षा पूर्ण करने तक विद्यालय में उनका धारण सुनिश्चित हो सके। चेतन और अचेतन रूप से बच्चे संरचित या असंरचित समय में अपने विद्यालय के भौतिक वातावरण से निरन्तर अन्त:क्रिया करते रहते हैं। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश स्कूल आज भी जीर्ण-शीर्ण और जर्जर भवनों में चल रहे है जो कि नीरस, अनुत्तेजक, अरूचिकर भौतिक परिस्थतियों को उत्पन्न करते हैं। अत:

ऐसे विद्यालयी वातावरण को विद्यार्थियों, अभिभावकों, अध्यापकों, प्रशासकों एवं वस्तुकारों के संगठित प्रयासों एवं नवाचारों से बदलने की आवश्यकता है।

सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने तथा शिक्षा में क्षेत्रीय विषमता को समाप्त करते हुए शिक्षा के अधिकार को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए सरकार द्वारा पिछड़े क्षेत्रों के विद्यालयों हेतु विशेष वित्त की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। नवीनतम आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23 के अनुसार "कुल शिक्षा व्यय 2022 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2.9 प्रतिशत था" (इकोनॉमिक सर्वे, 2023)। जो कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के शिक्षा के लिए सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत आवंटित करने के लक्ष्य से आधे से भी कम है। आज से 57 वर्ष पहले सन् 1966 में अपने प्रतिवेदन में कोठारी आयोग ने भी सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने की अनुसंशा की थी। किन्तु आज तक के बजट इतिहास में कभी भी हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके।

इसके साथ ही शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 की धारा-12 (1) (ग) जो गैर-अल्पसंख्यक निजी गैर-सहायता प्राप्त स्कूलों में वंचित वर्गों के बच्चों के लिए प्रवेश स्तर पर उनकी कुल सीटों का 25 प्रतिशत आरक्षित रखने का प्रावधान करती है। इसे इन निजी विद्यालयों के सन्दर्भ में कठोरता से लागू किये जाने की आवश्यकता है। जिससे वंचित वर्ग के अधिक से अधिक बच्चें इस प्रावधान से लाभान्वित हो सकें और इन विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षित स्थानों पर वंचित वर्ग के बच्चों का पूर्ण नामांकन सुनिश्चित हो सके।

यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि बहुत से निजी विद्यालय इस प्रावधान के अन्तर्गत जिन बच्चों का नामांकन अपने विद्यालयों में लेते है। वे उनके साथ भेदभाव की नीति अपनाते हैं, यथा वे इन वंचित वर्ग के बच्चों को विद्यालय के अन्य बच्चों से अलग कक्षा में बैठाते हैं, उनके विद्यालय की अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में प्रतिभाग को हतोत्साहित करते हैं, इत्यादि। विद्यालय के इन भेदभावपूर्ण व्यवहार से वंचित वर्गों के नामांकित बच्चों का आत्मसम्मान एवं व्यक्तित्व प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। जिससे कुछ समय बाद वे विद्यालय छोड़ देते है। निजी विद्यालयों का यह आचरण भारत में समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा तथा शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन की भयावह तस्वीर प्रस्तुत करता है। अत: बाल अधिकार संरक्षण आयोग को इन विद्यालयों का नियमित रूप से प्रभावी निरीक्षण सुनिश्चित करना चाहिए और आयोग द्वारा वंचित वर्गों के बच्चों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभावपूर्ण आचरण की शिकायत पर तुरंत प्रभावी कदम उठाया जाना चाहिए।

इसके साथ ही कोविड-19 महामारी के बाद शिक्षा में तेजी से बढ़ते डिजिटलाइजेशन के कारण वंचित तबके एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चें सिखने में पिछड़ रहे हैं। असर-2022 की रिपोर्ट बताती है कि देश में अभी केवल 7.9 प्रतिशत ही ऐसे विद्यालय हैं जहां बच्चों द्वारा कंप्यूटर का उपयोग हो रहा है। अत: सभी विद्यालयों में कम्प्यूटर, इन्टरनेट इत्यादि साधनों का समुचित प्रबंध समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा के लिए समय की मांग है।

हमें देश के सभी क्षेत्रों में समतामूलक एवं समावेशी शैक्षिक व्यवस्था की स्थापना तथा शिक्षा के अधिकार को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में व्यापक बदलाव करने की जरूरत है। जिससे लिंग, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म इत्यादि के आधारों पर विद्यार्थियों के साथ होने वाले भेदभाव को समाप्त किया जा सके और वे आनन्दपूर्वक भयमुक्त होकर बिना किसी संकोच के सक्रिय रूप से विद्यालयी गतिविधियों में सम्मिलित हो सकें एवं सीख सकें। इस सन्दर्भ में 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याओं के सन्दर्भ में गठित 'राष्ट्रीय फोकस समूह' के आधार-पत्र में भी कहा गया है कि "बच्चों के प्रति लिंग, जाति, वर्ग, जनजाति आधारित और अन्य प्रकारों की पहचान संबंधी इत्यादि भेदभाव को दूर करने और समान आदर और सम्मान को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण के साथ कक्षा-कक्ष व्यवहारों पर विशेष दिशा निर्देश विकसित करने की जरूरत है" (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2010, पृ. 31)।

भारत में समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा तथा सभी के लिए शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए यह भी अत्यावश्यक है कि शिक्षा को निजीकरण के दुष्प्रभावों से भी बचाया जाये जिससे शिक्षा के क्षेत्र में निजी निवेश केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्ति के लिए ही न हो।

निष्कर्ष

शिक्षा के अधिकार का मूल उद्देश्य देश में गुणवत्तापूर्ण, समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा की संकल्पना को मूर्त रूप देते हुए हमारी शैक्षिक प्रणाली के सभी घटकों को बच्चों की स्वाभाविक रूचि, आकांक्षा, वैयक्तिक भिन्नता तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई, क्षेत्रीय परिवेश इत्यादि के सन्दर्भ में पुनर्संगठित करना है, जिससे कि वे अपनी नैसर्गिक मूल प्रवृत्ति के अनुसार अपने ढंग से आनन्दपूर्वक सीख सकें। वर्तमान भारतीय शैक्षिक व्यवस्था के समक्ष देश के सभी क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकार का प्रभावी क्रियान्वयन तथा सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण, समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा को सुनिश्चित करना एक चुनौतिपूर्ण लक्ष्य है। किन्तु जैसे-जैसे हम अपने देश में अधिकाधिक क्षेत्रीय एवं मानवीय विविधता को आत्मसात करने वाली शिक्षा प्रणाली के विकास की ओर अग्रसर होते जायेंगे वैसे-वैसे हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ते जायेंगें।

सन्दर्भ

एन फॉर नोज: स्टेट ऑफ द एजुकेशन रिपोर्ट फॉर इंडिया 2019 चिल्ड्रेन विद डिसएबिलिटीज. (2019). द यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गनाइजेशन।

एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (रूरल)-2022. (2023). न्यू दिल्ली: असर सेंटर।

बोस, ए. (2020). *आरटीई आफ्टर अ डिकेड: एन एसेसमेंट ऑफ बॉटलनेक्स एंड सम वेज फारवर्ड.* राजीव गांधी इंस्टीट्यूट फॉर कंटेम्परेरी स्टडीज (आरजीआईसीएस), न्यू दिल्ली।

भट्टाचार्य, डी. एंड मोहलिक, आर. (2015). प्रॉब्लम्स फेसेड बाय द एसएमसी मेंबर्स इन इम्प्लीमेंटिंग द आरटीई एक्ट 2009: एन एनालिसिस. *एजुक्वेस्ट एन इंटरनेशनल रेफर्ड जर्नल इन एजुकेशन*, 4 (2), पृ.15-24।

भारत का संविधान. (2021). भारत सरकार. विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग।

द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009. (2009). *द गैजेट ऑफ इंडिया*, नं. 35 ऑफ 2009, मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एंड जस्टिस, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट।

द ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट-2023. (2023). द यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन।

दास, आर. (2014). अ स्टडी ऑन इम्प्लीमेंटेशन ऑफ राइट टू एजुकेशन एक्ट, 2009 इन हाजो ब्लॉक ऑफ रूरल कामरूप डिस्ट्रिक्ट. *स्कॉलरली रिसर्च जर्नल फॉर इंटरडिसिप्लीनरी स्टडीज*, 2(13), पृ. 1575-1579।

इकोनॉमिक सर्वे 2022-2023. (2023). गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस, न्यू दिल्ली।

गुप्ता, एस.पी. (2013). *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ*. इलाहबाद: शारदा पुस्तक भवन।

जवाले, जे. राजश्री एंड गायकवाड, एस. प्रतिभा. (2021). *राइट टू एजुकेशन इन इंडिया*. चेन्नई: नोशन प्रेस।

झा, प्रवीन एंड रानी, पी. गीता. (संपा.). (2015). *राइट टू एजुकेशन इन इंडिया: रिसोर्सेज, इंस्टीट्यूशन्स एंड पब्लिक पॉलिसी*. इंडिया: राउटलेज।

कर, एन. (2019). अ स्टडी ऑन राइट टू एजुकेशन एक्ट, 2009 एंड इट्स कंप्लायंस इन स्कूल्स ऑफ गोलाघाट डिस्ट्रिक्ट ऑफ असम. *ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज रिव्यूज*, 7(6), पृ. 570-584।

कुमार, एस. (2015). रोल्स एंड फंक्शन्स ऑफ स्कूल मैनेजमेंट कमिटीज (एसएमसीएस) ऑफ गवर्नमेंट मिडल स्कूल्स इन डिस्ट्रिक्ट कुल्लू ऑफ हिमाचल प्रदेश: अ केस स्टडी. *स्कॉलरली रिसर्च जर्नल फॉर ह्यूमैनिटी साइंस एंड इंग्लिश लैंग्वेज*, 3 (17), पृ. 3876।

मोहलिक, आर. (2017). अवेयरनेस, इनिशिएटिव्स एंड चैलेंजेज इन इम्प्लीमेंटेशन ऑफ द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपलसरी एजुकेशन एक्ट 2009 इन ओडिशा. *सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज जर्नल*, 2 (1), पृ. 1-10।

नेशनल कमीशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड राइट्स. (2021). *अ स्टडी ऑन इम्प्लीमेंटेशन ऑफ सेक्शन 12(1) (सी) ऑफ आरटीई एक्ट, 2009 इन दिल्ली परटेनिंग टू एडमिशन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम डिसएडवांटेज्ड सेक्शन्स इन प्राइवेट स्कूल्स*. न्यू दिल्ली: एनसीपीसीआर।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. (2022). मानव संसाधन विकास मंत्रालय. भारत सरकार।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2010). अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र, नई दिल्ली।

सरकार, एस. एस. एवं मुनीर, जे. जे. (2007). *भारत का संविधान 1950*. (चतुर्थ संस्करण), इलाहाबाद: एलिया लॉ एजेन्सी।

सिंह, बी. जी. (2014). *भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनयम एवं प्रारम्भिक शिक्षा*. इलाहबाद: शारदा पुस्तक भवन।

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66). शिक्षा और राष्ट्रीय विकास. शिक्षा मंत्रालय. भारत सरकार, नई दिल्ली।

ओझा, एस. (2013). इम्प्लीमेंटिंग राइट टू एजुकेशन: इशूज एंड चैलेंजेज. *रिसर्च जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइंसेज*, 1(2), पृ. 1-7।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 13-31)
UGC-CARE (Group-I)

भारतीय समाजशास्त्र और प्रोफेसर योगेश अटल

सुशांत यादव*

'भारतीय समाजशास्त्र और प्रोफेसर योगेश अटल' शीर्षक से प्रस्तुत इस लेख का उद्देश्य भारतीय समाजशास्त्र के प्रति प्रो. अटल की सैद्धांतिक एवं अकादमिक दृष्टि एवं एक विषय क्षेत्र के तौर पर इसमें प्रो. अटल के योगदानों का सारगर्भित मूल्याँकन प्रस्तुत करना है। उपर्युक्त लेख को पाँच भागों में बाँटकर देखा जा सकता है पहला भाग प्रो. अटल के जीवन परिचय से आबद्ध है, जिसमें उनके शिक्षणकाल से लेकर अध्यापन तथा विभिन्न राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों में प्रशासनिक नियुक्ति और प्राप्त महत्वपूर्ण सम्मानों का उल्लेख किया गया है। दूसरा भाग भारत में समाजशास्त्र की उन विशेषताओं को स्वयं में समेटने की कोशिश करता है, जिसकी परिचर्चा प्रो. अटल अपने विभिन्न लेखों/पुस्तकों एवं सेमिनार में दिए गए वक्तव्य में करते हैं। लेख का तीसरा भाग भारतीय समाजशास्त्र में प्रो. अटल के योगदान को वर्णित करता है। जिसके तहत हम देखेंगें कि, किस तरह भारतीय समाजशास्त्र में जाति, नातेदारी एवं ग्राम्य-अध्ययन जैसे मुद्दों के इर्द-गिर्द घूम रहे इस विषय को प्रो. अटल ने व्यापकता प्रदान करते हुए इसमें विकास, लोकतंत्र, ग़रीबी और चुनावी समाजशास्त्र जैसे अति

*सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), कृषक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना (मेरठ) (उत्तर प्रदेश)
E-mail: ysushant05@gmail.com

आवश्यक विषयों को समाहित कराने का दुरूह कार्य अपने अकादमिक लेखों/पुस्तकों के माध्यम से किया। चौथा भाग भारतीय समाजशास्त्र में व्याप्त उन कमियों को उल्लिखित करता है जिसकी तरफ प्रो.अटल ने विशेष तौर पर अपने जीवन के अंतिम समय में भी अपने अकादमिक कार्यों द्वारा ध्यानाकर्षण कराया। वहीं पाँचवाँ और अंतिम भाग निष्कर्ष से सम्बन्धित है।

बीज शब्द - विकास, चुनाव विश्लेषण, समाजशास्त्र, भारतीयता।

प्रोफेसर योगेश अटल का जीवन परिचय

प्रसिद्ध समाजशास्त्री और यूनेस्को के मुख्य निदेशक रहे प्रोफेसर योगेश अटल के लेखन में सैद्धांतिक गहराई और व्यावहारिक समझ का अनूठा संगम देखने को मिलता है। एक ओर वे समकालीन विचारकों से संवाद करते हैं, वहीं दूसरी ओर पाठकों को भारतीय समाजशास्त्र एवं राजनीति की जमीनी हकीकत से भी रूबरू कराते चलते हैं। भारत में चुनाव संबंधी अध्ययनों को दिशा देने में अग्रणी भूमिका निभाने वाले प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेश अटल का जन्म 9 अक्टूबर 1937 को उदयपुर, राजस्थान में हुआ था। उन्होंने 1557-59 में स्नातक की उपाधि, 1959-62 में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। उन्होने पीएचडी की उपाधि भी प्राप्त की। वे हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फ्रेंच, थाई और इंडोनेशियाई भाषा के अच्छे जानकार थे। डॉ. अटल 1974 से संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़े रहे। उन्होंने एशिया और प्रशांत क्षेत्र में सामाजिक एवं मानव विज्ञान के क्षेत्रीय सलाहकार में रूप मे कार्य किया। डॉ. अटल ने 1972 से 1974 के बीच भारतीय सामाजिक विज्ञान परिषद के समाजशास्त्र विभाग के निदेशक के रूप में कार्य किया। उन्होंने 1968-1972 के बीच भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली में सामाजिक विज्ञान के एसोसियेट प्रोफेसर के रूप में भी कार्य किया। वे 1997 में यूनेस्को से सामाजिक विज्ञान में प्रधान निदेशक के रूप में सेवानिवृत्त हुए। सामाजिक विज्ञान में उनके योगदान के लिए उन्हें महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन और भारतीय सामाजिक विज्ञान संघ द्वारा सम्मानित किया गया। विकास संबंधी विषयों पर कई पुस्तकों के लेखक और संपादक, उन्होंने गरीबी पर पुस्तकों की एक त्रयी का संपादन किया।

योगेश अटल के अकादमिक अध्ययन, चिंतन और शोध का दायरा कितना विस्तृत था, इसका अंदाजा उनके द्वारा लिखित और संपादित किताबों से लगाया जा सकता है, जिनकी संख्या बीस से अधिक है। योगेश अटल ने राजनीतिक दर्शन, विकास एवं अर्थशास्त्रीय अध्ययन, गांधी दर्शन एवं विचार, वैदिक दर्शन, भारतीय परंपरा तथा संस्कृति जैसे बहुविध विषयों पर अपनी लेखनी चलाई। संयुक्त राष्ट्र संघ से सेवानिवृत्त होने के बाद, डॉ. अटल ने भारतीय शिक्षा संस्थान, पुणे के महानिदेशक के रूप में एक वर्ष के लिए कार्य किया। पुणे और भारतीय सामाजिक विज्ञान संस्थानों के कार्यक्रम समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। वह भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् और गोबिंद वल्लभ पंत इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, इलाहाबाद के गवर्निंग बोर्ड के सदस्य थे। इसी के साथ मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के विजिटिंग प्रोफेसर भी थे। वह राष्ट्रीय स्वास्थ्य

और परिवार कल्याण संस्थान के गवर्निंग बोर्ड में थे। उन्होंने मार्च 2009 में एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित मानव जीनोमिक्स आईएसएचजी 2009 पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के लिए राष्ट्रीय सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में भी काम किया।

भारत में समाजशास्त्र

लेख के अब इस दूसरे भाग में हम भारत में समाजशास्त्र की उपस्थिति को पहचानने का प्रयास करेंगें या यूँ कहें कि एक विषय के तौर पर समाजशास्त्र भारत में कैसे पुष्पित हो पाया इसका विश्लेषण करेंगें। अन्य समाज-विज्ञानों की भाँति समाजशास्त्र भी भारत में एक आयातित विज्ञान है। भारत-भूमि में इसका प्रवेश अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में बहुत पुराना नहीं हैं (अटल, योगेश: 2014: प्रस्तावना से)। भारत में समाजशास्त्र का एक संस्थागत विषय के रूप में विकास 1919 ईस्वी में हुआ, जबकि प्रोफेसर पैट्रिक गिड्स नामक अंग्रेज समाजशास्त्री की अध्यक्षता में मुंबई विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर समाजशास्त्र विषय का अध्यापन कार्य प्रारंभ हुआ। इसके उदय के दो केंद्र रहे हैं- लखनऊ और मुंबई। लखनऊ में यह विषय अर्थशास्त्र के मार्ग से भीतर घुसा। जिसके पश्चात 1921 में यहाँ समाजशास्त्र विभाग स्थापित हुआ और राधाकमल मुखर्जी ने इस समाजशास्त्र विभाग का नेतृत्व किया। वहीं मुंबई में भारत-विद्या (इंडोलोजी) के मार्ग से इसकी प्रविष्टि हुई। जिसके तहत 1914 में मुंबई विश्वविद्यालय में पहली बार समाजशास्त्र विभाग की स्थापना की गई। कलकत्ता में मानवशास्त्र के अध्यापन के माध्यम से समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की पुष्टि हुई। 1939 में पुणे में श्रीमती इरावती कर्वे की अध्यक्षता में इसकी शुरुआत हुई। इस तरह भारतीय विश्वविद्यालयों में इसका पठन-पाठन अन्य विषयों के उपांग के तौर पर हुआ है (वही, उपरोक्त वर्णित)।

भारत में समाजशास्त्र का विकास उपनिवेशवाद, आधुनिक पूंजीवाद एवं औद्योगीकरण, नगरीकरण का परिणाम माना जाता है। अंग्रेज समाजशास्त्रियों ने 19वीं शताब्दी के भारत में यूरोपीय समाज का अतीत देखा। यद्यपि भारत में औद्योगीकरण का प्रभाव उतना नहीं था जितना कि पश्चिम समाजों पर तथापि पश्चिम समाज शास्त्रियों ने पूंजीवाद एवं आधुनिक समाजों को लिखे अपने लेखों को भारत में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों को समझने के लिए प्रसांगिक माना। उनके एवं भारतीय समाजशास्त्र द्वारा आदिम समूह, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के अध्ययनों से भारत में समाजशास्त्र की नींव मजबूत होती गई (दुबे, श्यामाचरण: 2012: 17)। स्वतंत्रता से पूर्व जो भारतीय विद्वान केवल ब्रिटिश विद्वानों के संपर्क में थे वहीं स्वतंत्रता के पश्चात वे संयुक्त राज्य अमेरिका के अपने समकक्षों के साथ मेलजोल बढ़ाने लगे। इसके फलस्वरुप प्रकाशन तथा क्षेत्र में शोध कार्य में वृद्धि हुई। जिसके तहत 1969 में भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् की स्थापना हुई। भारत में योजनाबद्ध विकास की शुरुआत में समाजशास्त्र को बढ़ावा दिया गया। धीरे-धीरे समाज शास्त्रियों को योजना तथा विकास के कार्यों में शामिल किया जाने लगा। अब ग्रामीण जन जीवन से संबंधित शोध कार्य होने लगे थे। निजी क्षेत्र में कई शोध संस्थानों की स्थापना हुई

जिनमें टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, आगरा तथा मुंबई जे.के. इंस्टिट्यूट ऑफ सोशियोलॉजी एंड सोशल वर्क्स, लखनऊ प्रमुख है।

इस तरह सन 1947 के बाद भारत में समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विषय के रूप में निरंतर प्रगति कर रहा है। आज मुंबई, आगरा, लखनऊ, कानपुर, गुजरात, कर्नाटक, मैसूर, नागपुर, पटना, उस्मानिया, जबलपुर, बिहार, रांची, राजस्थान, बड़ौदा, दिल्ली, पंजाब, पूना, शिमला एवं अन्य प्रमुख विश्वविद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाओं में इसका अध्ययन सुचारू रूप से चल रहा है जो इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता का परिचायक है। समाजशास्त्र के महत्व और लोकप्रियता को देखते हुए अनेक शोध संस्थाओं की भी स्थापना की गई जिनमें बढ़ते हुए समाजशास्त्रीय ज्ञान का इन संस्थाओं में विशेष स्थान है।

भारतीय समाजशास्त्र का इतिहास यह बताता है कि समाजशास्त्र के प्रारम्भिक छात्रों को एक ओर तो समाजशास्त्रीय सोच और दर्शन की जानकारी मिली, तो दूसरी ओर उस समय की प्रचलित विचारधाराओं मार्क्सवाद और पूँजीवाद से भी उनका परिचय हुआ। आग्रह यह भी रहा कि छात्रों को भारतीय समाज की जानकारी मिल सके। इस कारण से प्रारम्भ में दीक्षित हुए छात्र एक ओर तो उभरते हुए समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और विचार-सम्प्रदायों से परिचित हुए, तो दूसरी ओर पौराणिक भारत से। उस समय भारतीय समाज के जो चित्र प्रस्तुत किए गए वे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित या फिर स्मृतियों में वांछित के रूप में प्रस्तावित व्यवहारों पर आधारित थे। विदेशी विद्वानों द्वारा तैयार किए गए भारतीय समाज के चित्रण भी समाजशास्त्रीय माने गए (अटल, योगेश: 2014: 04)।

यद्यपि भारत के अधिकतर विद्वान पश्चिम में सिद्धांतों के आधार पर ही भारत में समाजशास्त्र का विकास चाहते थे। मिसाल के तौर पर मजूमदार, इरावती कर्वे जैसे विद्वानों ने भारत की सामाजिक संस्थाओं परिवार, विवाह, समाज वर्ग आदि का तुलनात्मक अध्ययन पश्चिमी सभ्यता के साथ किया है। प्रो. एस सी दुबे तथा मजूमदार आदि ने गांवों के अध्ययन में भी पश्चिमी सिद्धांतों को महत्व दिया है। अर्थशास्त्री विद्वान राधाकमल मुखर्जी तथा डी.पी. मुखर्जी का सामाजिक आर्थिकी के संबंध में किया गया शोध प्रारंभिक रूप से पश्चिमी सिद्धांतों पर ही आधारित था। तथापि इसके विपरीत भारतीय सिद्धांतों के आधार पर विकसित भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता से काफी भिन्न है अत: कई विद्वानों ने समाजशास्त्र का विकास भारतीय पद्धति से करने के लिए जोर दिया जो कि पूर्णतया भारतीयों पर केंद्रित हो। कुमार स्वामी तथा भगवान दास ऐसे विचारकों में प्रमुख हैं। इन्होंने तर्क के आधार पर भारतीय सिद्धांतों के विकास पर जोर दिया। लेकिन भारतीय समाजशास्त्र की इन दो परंपराओं के मध्य सामंजस्य बिठाते हुए अध्ययन की एक तीसरी परंपरा का भी उदय होता है। जो वस्तुत: भारतीय तथा पश्चिमी सिद्धांतों के समन्वय के आधार पर विकसित हुआ। डॉ. आर एल सक्सेना, प्रो. योगेंद्र सिंह, प्रो. योगेश अटल आदि ने भारत में समाजशास्त्र के विकास के लिए भारतीय तथा पश्चिमी दोनों सिद्धांतों के समन्वय के आधार पर कार्य करने की बात कही है।

उपर्युक्त उद्धरणों से हमें यह ज्ञात होता है कि, भारतीय समाज शास्त्रियों ने इस विज्ञान को अपनी सेवाओं द्वारा अधिक से अधिक समृद्ध बनाने का प्रयास किया। प्रमुख भारतीय समाज शास्त्रियों के रूप में प्रो. गोविंद सदाशिव, डॉ. राधाकमल मुखर्जी, डॉ. इरावती कर्वे, प्रो. एमएन श्रीनिवास, प्रोफेसर श्यामा चरण दुबे, प्रो. योगेंद्र सिंह, प्रो. योगेश अटल आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन समाज शास्त्रियों का भारतीय समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा ये समाजशास्त्र के विभिन्न सम्बन्धित विषय क्षेत्रों को भी अपने विद्वत समाज शास्त्रीय ज्ञान परंपरा से प्रभावित करते रहे हैं। लेख चूँकि प्रो. अटल पर केंद्रित है अत: आगे प्रो. अटल के योगदान का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा।

भारतीय समाजशास्त्र में प्रोफेसर योगेश अटल का योगदान

डॉ. अटल ने यद्यपि अपने कार्यशील जीवन का अधिकतम समय विदेश और यूनेस्को में अकादमिक एवं प्रशासनिक सेवाओं के जरिए व्यतीत किया। परंतु फिर भी वे समाजशास्त्र के देशज स्वरूप के प्रबल हिमायती थे। उन्होंने प्रसिद्ध समाजशास्त्री रोबर्ट मर्टन के साथ भी काम किया लेकिन समाजशास्त्र के एक विषय के तौर पर उनका मानना था कि इसका स्वरूप देशज होना चाहिए। जिसमें समस्याएं भी स्थानीय हों और उनके निदान के बिंदु भी स्थानीय स्तर के हों तभी यह विषय व्यावहारिक जगत में अपनी प्रासंगिकता बनाए रख पाएगा अन्यथा केवल दर्शन और सिद्धांत बनकर रह जाएगा। जिसकी नीति निर्माण एवं समस्या समाधान में कोई भूमिका न होने की वजह से महज किताबी ज्ञान बनकर रह जाएगा। अपने इन्हीं ध्येय बिंदुओं पर कार्य करते हुए उन्होंने भारतीय समाजशास्त्र को औपनिवेशिक मानसिकता से बाहर निकालते हुए उसे भारत की देशज समस्याओं से परिचित कराया और उसके निदान हेतु कुछ प्रमुख आयाम चिन्हित किए जिन पर यह लेख आधरित है।

सेफोलाजी : भारतीय चुनावों और मतदान व्यवहार का अध्ययन

सेफोज यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कंकड़। यूनान में चुनाव के लिए बैलेट पेपर की जगह कंकड़ काम में लिए जाते थे इसलिए कंकड़ गणनाशास्त्र अर्थात् सेफोलाजी का नामकरण हुआ। इसे हिंदी में चुनाव विश्लेषण विज्ञान कहा जा सकता है (अटल, योगेश: 2018: 12)। चुनावी समाजशास्त्र के तहत योगेश अटल ने भारत में चुनावों, निर्वाचन-प्रक्रिया और मतदाताओं के रुझानों के विश्लेषण की सैद्धांतिकी विकसित की, जो अपनी सिद्धांत-रचना और परिकल्पना में भारतीय समाज तथा लोकतंत्र के अनुरूप थी। वर्ष 1967 के चुनावों का अध्ययन करते हुए योगेश अटल ने एक किताब लिखी 'लोकल कम्युनिटीज एंड नेशनल पॉलिटिक्स'। इस पुस्तक में प्रयुक्त शोध पद्धति और इसके लिए तैयार किए गए सूचकांक, खासकर सेंस ऑफ पॉलिटिकल एफीकेसी इंडेक्स (एसपीसी) की सराहना की गई। भारत के अतिरिक्त बांग्लादेश और फिलीपींस के पाठ्यक्रमों में भी इसे स्थान मिला। प्रो. नार्मन डी पामर ने अपनी पुस्तक इलेक्शंस एंड पोलिटिकल डेवेलपमेंट में इस

पुस्तक को 'ग्राउंड ब्रेकिंग स्टडी ऑफ इलेक्शंस एंड पॉलिटिकल डेवेलपमेंट' बताया (वही, उपरोक्त वर्णित)।

1967 के ये आम चुनाव भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुए थे, जिनमें कई राज्यों में कांग्रेस पार्टी बहुमत हासिल करने में असफल रही। जिन राज्यों में कांग्रेस की हार हुई, वहां चुनाव जीतने वाले दलों को भी पूर्ण बहुमत नहीं मिल सका था, जिससे राजनीतिक अनिश्चितता और अस्थिरता की स्थिति पैदा हुई (अटल, योगेश: 2016: प्रस्तावना से)। योगेश अटल ने अपनी पुस्तक 'लोकल कम्युनिटीज एंड नेशनल पॉलिटिक्स' में इसी अनिश्चितता और स्थायित्व के अभाव की परिघटना का विश्लेषण किया था। इसी क्रम में उन्होंने भारतीय मतदाताओं की समझ, मतदाता और राजनीतिक प्रणाली, चुनावी संदर्भों और मतदाताओं के चयन के पीछे काम करने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों के बारे में भी विस्तार से लिखा। जाहिर है कि इसमें भारतीय लोकतंत्र के तमाम संघटक तत्वों मसलन, राजनीतिक अभिजन, राजनीतिक दलों की भूमिका और मतदाताओं तथा निर्वाचक मंडलों के सामाजिक संदर्भों का भी गहन विश्लेषण शामिल था।

प्रो. अटल चुनावी समाजशास्त्र में चुनावों और मतदान व्यवहार के विश्लेषण तक आकर ही नहीं ठहर जाते हैं वरन् चुनाव के संदर्भ में समाजशास्त्र और सेफोलाजी के बीच फर्क कैसे रेखांकित किया जा सकता है? समाज विज्ञान की दृष्टि से सेफोलाजी की सीमाएँ क्या-क्या हैं? सेफोलाजी से अलग हटते हुए चुनावी समाजशास्त्र के क्या-क्या मुकाम हैं? वे कौन से शोध उपकरण हैं जो इस चुनावी समाजशास्त्र में मददगार हो सकते हैं आदि प्रश्नों का उत्तर भी अपने विभिन्न और निरंतर लिखे जाने वाले लेखों में देते आए हैं। चुनावी समाजशास्त्र में हो रही गिरावट के मद्देनजर वह लिखते हैं कि, चुनाव का समाजशास्त्र दरअसल भारत में चुनावों की भविष्यवाणी का शास्त्र होकर रह गया है। सामाजिक शोध के लिए अनुदान देने वाली संस्थाओं ने भी ऐसी शोध को प्राथमिकता देना लगभग बंद-सा कर दिया है। उनके स्थान पर राजनीतिक दल, बाजारू शोध करने वाली संस्थाओं ने कुछ फार्मूले ईजाद किए हैं जो अब तक समाज विज्ञान की शोध पद्धतियों में नहीं पढ़ाए जाते हैं। शुल्क लेकर चुनाव नतीजों की घोषणा करने वाली इन संस्थाओं ने उन्हें गोपनीय सा बना रखा है। यही कारण है कि ओपिनियन पोल की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न उठाए जाने लगे हैं (अटल, योगेश: 2014: 37)।

लोकतंत्र और भारतीय समाज

चुनावों के विश्लेषण के साथ-साथ योगेश अटल ने आजादी के बाद के दशकों में भारतीय समाज के स्वरूप में आते बदलावों का भी गहराई से अध्ययन किया। प्रतिनिधि-मूलक लोकतंत्र, अस्मिता की राजनीति और हाशिये के समुदायों की लोकतंत्र में भागीदारी की प्रक्रिया को भी उन्होंने अपने अध्ययन का विषय बनाया। उनके लेखन में सैद्धांतिक गहराई और व्यावहारिक समझ का अनूठा संगम देखने को मिलता है। अपनी

कृतियों में जहां एक ओर वे रोबर्ट मर्टन, चार्ल्स टेलर, नार्मन डी पामर, हैबरमास, फ्रांसिस फुकुयामा जैसे समकालीन राजनीतिक विचारकों से संवाद करते नजर आते हैं, वहीं दूसरी ओर, वे अपने पाठकों को भारतीय राजनीतिक परिदृश्य की जमीनी हकीकत और लोकतंत्र के यथार्थ से भी रूबरू कराते चलते हैं। उनकी पुस्तक 'चेंजिंग फ्रंटियर्स ऑफ कास्ट' इसका एक बेहतरीन उदाहरण है, जो साल 1979 में छपी थी। योगेश अटल ने लिखा है कि भारतीय लोकतंत्र में दलितों की भागीदारी और उनकी राजनीतिक नियति पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। उनका मानना था कि भारत में दलितों की दयनीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति लोकतंत्र और विकास के अंतरसंबंधों पर सवाल भी खड़े करती है।

आर्थिक विषमता और सामाजिक वंचना से जूझ रहे दलित समुदायों के लिए लोकतंत्र कितना प्रभावशाली साबित हुआ और दलितों के लिए लोकतंत्र के निहितार्थ क्या हैं, इसकी पड़ताल योगेश अटल ने इस किताब में बखूबी की। योगेश अटल के अनुसार, राजनीतिक रूप से एकजुट शक्ति के रूप में दलितों के न उभर पाने और दलित समुदाय के भीतर भी बिखराव की वजह से कई बार दलित समुदाय सार्वजनिक निर्णय-प्रक्रिया को प्रभावित नहीं कर पाते। ये निर्णय अगर उनके हित को ध्यान में रखकर बनाए गए हों, तब भी भारतीय लोकतंत्र की विसंगतियों और सरकारी मशीनरी की खामियों के चलते उनका लाभ दलित समुदाय को नहीं मिल पाता। दलित समुदाय, जिनके नाम पर सरकार द्वारा नीतियों का निर्माण तो जरूर होता है, लेकिन हकीकत में वे इन विकास योजनाओं के लाभ से वंचित रहने को अभिशप्त होते हैं। योगेश अटल ने अपनी अन्य पुस्तक 'इंडियन ट्राईब्स इन ट्रांजिशन : द नीड फॉर रीओरीएंटेशन' में भारत की अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार में पेश आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण किया और इसके समाधान भी सुझाए।

इस क्रम में उन्होंने देहातों की अर्थव्यवस्था में सुधार, रोजगार के अवसर पैदा करने और सामुदायिक सशक्तीकरण पर जोर दिया। भारत में लोकतंत्र पर लिखी गई अपनी एक महत्वपूर्ण किताब 'रीथिंकिंग प्लानिंग एंड डेवेलपमेंट' (2013) में योगेश अटल ने भारत में लोकतंत्र की विकास-यात्रा, सामाजिक क्रांति, संघीय राज्य के अनुभवों, मौलिक अधिकारों और न्यायपालिका के साथ-साथ भारत में राजनीति और राजनीतिक दलों की भूमिका के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा। लोकतंत्र में भागीदारी और समानता सुनिश्चित हो पाने पर उपजने वाले असंतोष की ओर भी उन्होंने ध्यान दिलाया। साथ ही, प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र के राजनीतिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव और 'संप्रभु नागरिक' की शक्ति में हो रहे ह्रास को भी उन्होंने रेखांकित किया।

विकास की अवधारणा और उसकी सीमाएं

लोकतंत्र को उसकी समग्रता में जानने-समझने के क्रम में योगेश अटल ने विकास की अवधारणा और उसकी विसंगतियों का भी विश्लेषण किया। नब्बे के दशक के उपरांत

प्रकाशित किताब 'पावर्टी इन ट्रानजिशन', 'द पावर्टीक्वेशचन' और 'ऑन एजूकेशन एंड डेवेलपमेंट' में योगेश अटल ने 'विकास' की आधुनिक धारणा, निर्धनता की जटिलता और व्यक्ति व समाज के लिए उसके तात्पर्य की गहन चर्चा की। रोबर्ट मर्टन, टेलकेट पारसंस व नार्मन डी पामर जैसे विचारकों की चिंतन प्रक्रिया से गुजरते हुए योगेश अटल ने दिखाया कि 'विकास' की धारणा कैसे बीसवीं सदी तक आते-आते एक विश्व-दृष्टि के रूप में उभरी, जिसमें व्यक्ति, समुदाय, उनके सरोकार व आकांक्षाएं, सामाजिक व्यवहार एवं राजनीतिक संस्थाएं सभी शामिल थीं। विकास की यह धारणा आधुनिक मनुष्य के चिंतन व व्यवहार को आकार देने लगी। योगेश अटल ने विकास की आधुनिक धारणा की सीमाओं को उजागर करते हुए लिखा कि यह मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और समाज, मनुष्य और प्रकृति के बीच भेद करते हुए उनमें अलगाव पैदा करती है। विकास की धारणा का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया, सामाजिक न्याय, जरूरतों के सिद्धांत और सामाजिक तनाव, व्यक्तिगत और सामुदायिक हित, सामाजिक विविधता, आधुनिकीकरण और राष्ट्रीय एकीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया को भी रेखांकित किया।

विकास की धारणा की विसंगतियों को इंगित करने के लिए जहां एक ओर उन्होंने राजनीतिक विचारकों और चिंतकों का सहारा लिया, वहीं दूसरी ओर आम लोगों से संवाद करते हुए भी उन्होंने विकास की अवधारणा की खामियों को समझने की कोशिश की। संवाद की इस समाज-वैज्ञानिक शोध-पद्धति का बेहतरीन उदाहरण है, उनकी 2003 में प्रकाशित किताब 'इंडियन सोशियोलोजी : फ्रॉम व्हेयर टू व्हेयर'। अपनी एक अन्य पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग द सोशल स्फेयर: द विलेज एंड बियोंड' में वह ग्रामीणों के साथ लोकतंत्र और विकास के अहम सवालों पर हुए संवाद को उल्लिखित करते हैं। उक्त किताब में योगेश अटल ने आम लोगों को अध्ययन का विषय बनाने की बजाय उन्हें सत्य के अन्वेषण/खोज की प्रक्रिया का भागीदार बनाया। इस किताब में प्रो. अटल ने विकास और सामाजिक व्यवस्था, सरकार और समाज, समाज और आम लोगों की दृष्टि और उनके सरोकारों के बारे में ग्रामीणों से संवाद किया और उनके द्वारा कही गई बातों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले। प्रो. अटल ने लिखा कि वे ग्रामीण विकास की वर्चस्वशाली धारणा से असंतुष्ट थे और उनका पूरा जोर वर्तमान स्थिति को बदलने, जड़ता को तोड़ने और समाधान निकालने पर था।

जीवंत लोकतंत्र में समस्याएं

चुनावी लोकतंत्र में समस्याएं हैं कि पिंड ही नहीं छोड़ती हैं। किसी एक समस्या का निबटारा होता है तो अन्य समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। प्रो. अटल इन समस्याओं के दरमियान बताते हैं कि जब 2014 के लोकसभा चुनावों से पहले भ्रष्टाचार के विरुद्ध अन्ना हजारे के राष्ट्रीय नेतृत्व में सारे देश में भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम छिड़ी थी तब हजारे की मंशा के विरुद्ध आम आदमी की पार्टी का जन्म हुआ। साफ-सुथरे और राष्ट्र-समर्पित युवाओं के दल के रूप में आप ने पुराने दलों को दिल्ली में ऐसा झटका दिया जो अभूतपूर्व था। पार्टी 2015 के

विधानसभा चुनाव में कांग्रेस के साथ गठबंधन में सरकार का निर्माण करती है। आदर्शों को समर्पित पार्टी को पुराने पठानों ने चलने नहीं दिया, और सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। पर मध्यावधि चुनाव में वह फिर उभर कर आयी और जीत का सेहरा फिर बंधा और बेजोड़ बहुमत/जनसमर्थन के साथ बंधा। पर केंद्र और सरकार के बीच तालमेल बैठ नहीं पा रहा है और कई दिग्गज नेता दल छोड़ने को बाध्य हुए जबकि कई नए नेताओं की गाहे-बगाहे पोल खुल रही है। मूलत: भाजपा और आप दोनों ही दल कांग्रेस को अपदस्थ करने पर तुले थे, आज दोनों में अनबन की स्थिति है। जनता के बहुमत से बनी सरकार को एक रिटायर्ड अफसर की कलम बार बार नीचा दिखा रही है और केंद्र एवं दिल्ली राज्य में दूरियाँ बढ़ती जा रही है। सच है राजनीति में कोई सगे नहीं होते; अगर होते हैं तो वे वंशवाद के पोषक होते हैं और प्रजातंत्र की परंपरा को आगे नहीं बढ़ने देते। आप पार्टी की मुसीबतें कई तरह की हैं मसलन रंगे हाथ पकड़े गए व्यभिचारी नेताओं की, समर्पित नेताओं के प्रति अ-सम्मान की और अपनी विचारधारा के प्रसारण में बाहर से लिये गए व्यक्तियों की आकांक्षाओं के भरण की। पंजाब में जिस आशा और विश्वास के साथ आप आगे बढ़ रही थी वहां गतिरोध उत्पन्न हो गए है। गोआ में भाजपा की टूट से थोड़ी बहुत आशाएं बंधने लगी है तो दिल्ली को छोड़ कर आप के बड़े नेता गोआ में डेरा डालने पर आमादा है, और इस बीच दिल्ली का प्रशासन दिशा हीन हो रहा था। उधर केजरीवाल की खांसी तंग कर रही है, और दिल्ली छोड़ कर बंगलुरु के अस्पताल की शरण लेनी पड़ रही है जो एक प्रकार से दिल्ली की स्वास्थ्य व्यवस्था पर एक तंज है। मुख्यमंत्री है तो कर्णाटक उनके लिये कठिन नहीं है पर आम आदमी जो देश के कोने-कोने से दिल्ली ईलाज के लिए आता है 'वाको कौन हवाल'?

जीवंत मानवीय समाज : समस्याएं और समाधान

भारतीय समाज की सबसे जटिल समस्या की तरफ इशारा करते हुए प्रो. अटल अपने एक लेख में लिखते हैं कि, किसी भी दिन कोई ऐसा अखबार नहीं मिला जिसमें जाति के विषय में खबर न छपी हो। जाति का सम्मलेन, जाति की प्रतिभाओं का सम्मान, जाति के किसी समारोह में प्रदेश के वरिष्ठ नेताओं की उपस्थिति, जबकि वे खुद उस जाति के नहीं थे, या जाति के नाम पर वर्ण के लोगों- जिसमें कई जातियां जो उस वर्ण या जाति-इतर समूह की हैं, का राजनीतिक एकता बनाने के लिए मिलाप। कहीं यह सूचना कि एक ही जाति का दावा करने वाले कई अंतर्विवाही समूह- जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति हैं- मिल कर यह आंदोलन खड़ा कर रहे हैं कि उन्हें भी पिछड़ी जाति, आदिवासी या दलित का दर्जा दिया जाए। कुछ ब्राह्मणों न - जो एक वर्ण है, कई जातियों का संकुल - एक परशुराम सेना गठित की है कि वे भी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं और उन्हें भी एक विशेष श्रेणी में रखा जाए। इससे प्रेरित होकर राजपूत वर्ण के लोग भी अपनी कोई शक्तिवाहिनी सेना बनाने में जुट रहे हैं। एक ओर लगता है कि जाति की संस्था टूट रही है, लोगों में अंतरजातीय विवाह होने लगे हैं, व्यवसाय और जाति का रिश्ता भी टूटता जा रहा है, वहीं राजनीति हावी होकर जाति की टूटती शाखाओं

को पुनर्जीवित करने में लगी है। और विडंबना यह है कि इसमें योगदान दे रही हैं वे पार्टियां, जो अपने को सेक्युलर कहती हैं।

परंतु जाति के इस आख्यान में अंग्रेजों के जमाने के लेखों में सामाजिक जीवन के जो दुर्भाग्यपूर्ण वर्णन मिलते थे, वे वर्तमान भारत के संदर्भ में एकदम झूठे जान पड़ते हैं। हमारे खान-पान में ऐसे अंतर आए हैं कि आज शाकाहारी कही जाने वाली जातियों के युवक-युवती भी सामिष भोजन करने लगे हैं। जातियों की पंचायतें बढ़ते हुए नगरीकरण के साथ कमजोर पड़ने लगी हैं। जिस संस्कृतिकरण की श्रीनिवास ने चर्चा की थी, आज ठीक उसका विपरीत हो रहा है। विवाह के संदर्भ में तो व्यापक परिवर्तन आए हैं। अंतरजातीय विवाहों में बढ़ोतरी हो रही है। विरोधों के बावजूद सगोत्र विवाह भी होने लगे हैं और उन्हें समर्थन भी मिलने लगा है। सच यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से जिस समूह को जाति कहना चाहिए, उसका आम आदमी को संज्ञान नहीं है। जाति पूछिए तो कोई अपने प्रदेश का नाम (जैसे पंजाबी, बंगाली, मद्रासी) बताएगा तो कोई अपना ऋषिगोत्र (भारद्वाज, वशिष्ठ, भार्गव, अंगीरा) बताएगा, तो कोई अपने परिवार से जुड़े पद का जिक्र करेगा (भंडारी, खजांची, दलाल, मुंशी, पाठक)। ये जातिसूचक संज्ञाएं नहीं हैं और इनमें होने वाले परिवर्तन जातिगत परिवर्तन नहीं माने जा सकते। इसी प्रकार गुर्जर, जाट, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भी जाति से ऊपर के समूह हैं। ये सब उदाहरण इस बात का प्रतीक हैं कि आम व्यक्ति जाति की संस्था से कितना अनभिज्ञ है।

एक और पक्ष यह है कि व्यवहार के रूप में जाति समूह एक क्षेत्र विशेष तक सीमित होता है, केवल नाम-समय होने से वह एक क्रियाशील, जीवंत जाति नहीं बन जाता। उदाहरण के लिए, गौड़ ब्राह्मण पूरे देश में पाए जाते हैं, लेकिन एक क्रियाशील समूह के रूप में ये कई प्रांतीय इकाइयों में विभक्त हैं। मसलन, राजस्थान के उदयपुर नगर में चार गौड़ ब्राह्मण जातियां हैं और चारों ही अंतर्विवाही हैं। एक ही नाम होते हुए भी ये चार भिन्न समूह हैं। अब इनमें भी आपस में शादियां होने लगी हैं और इस प्रकार रिश्तेदारी का दायरा बढ़ता जा रहा है। लेकिन जाति का जो शासन था, वह मिटता जा रहा है। इसी प्रकार वर्ण के स्तर पर जाति के नाम से विवाह होने लगे हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि एक अंतर्विवाही समूह के रूप में जाति का क्षेत्र विकसित होकर वर्ण तक फैल रहा है और इस दृष्टि से जाति की सीमाएं टूट रही हैं, 'नियमों?' का उल्लंघन बढ़ रहा है। दूसरी ओर, प्रजातंत्र की राजनीति में संख्या की दृष्टि से जातिसंकुल का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। यह विडंबना ही है कि जातिवाद को हमारा प्रजातंत्र प्रश्रय दे रहा है।

संक्षेप में कहूं तो आज के संदर्भ में परंपरागत जाति का प्रभाव तो संकुचित हो रहा है, जो केवल नातेदारी तक सीमित हो गया है और उसमें भी वह अब क्षेत्रों की सीमाएं लांघने लगा है। दूसरी ओर, राजनीतिक दृष्टि से वह अपने दायरे का विस्तार कर वर्ण जैसे जाति-इतर समूह से संलग्न हो रहा है। जाति के नाम से होने वाली हमारी समस्त प्रक्रियाएं और अंत:क्रियाएं दो अलग-अलग प्रांगणों में कार्यरत हैं। यहां मैं इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि विदेशी विद्वानों ने हमारे समाज को सोपानिक समाज या हाइरार्किकल

सोसाइटी कह कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि उनका समाज समतावादी है। अध्येताओं ने विभिन्न समाजों का अध्ययन करने के बाद पाया है कि दुनिया में एक भी समाज ऐसा नहीं है जहां सभी समान हों। जन्मजात असमानताओं के साथ ही कर्मगत असमानताएं समाज में आने लगती हैं और इस प्रकार समाज का स्तरीकरण होने लगता है।

ऐसा आमतौर पर सभी क्षेत्रों में होता है। अच्छा पढ़ने वाला बालक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है तो कम पढ़ने वाला या कम बुद्धि वाला छात्र कम अंकों से उत्तीर्ण होता या फेल हो जाता है। इस प्रकार समान धरातल से यात्रा करने वाले कालांतर में आगे-पीछे हो जाते और वर्गों में बंट जाते हैं। इस प्रकार, समता वाले समाज में भी असमानताएं घुस आती हैं। वर्ग हो या फिर वर्ण, दोनों ही समाज को श्रेणीगत करते हैं। अंतर है तो यह कि जन्मगत स्थितियां मुख्यतया अपरिवर्तनीय रहती हैं, जो कर्म से बदली नहीं जा सकतीं, जबकि कर्मप्रधान पदों में आरोहण-अवरोहण की संभावना होती है।

भारत की पनपती हुई जाति-व्यवस्था ने इस धारणा का भी खंडन किया है। अंग्रेजों के राज में जब दशकीय जनगणना प्रारंभ हुई तो परिवारों से उनकी जाति के बारे में पूछा गया और उत्तरदाताओं ने जो भी उत्तर दिया उसे ही दर्ज कर लिया गया। इसी का आधार लेकर कई निम्न स्तर पर गिनी जाने वाली जातियों ने अपना नाम बदल कर खुद को ऊंचा स्थान दिलाने की चेष्टा की और उसमें वे सफल भी हुईं। नाम के अनुरूप उन्होंने अपने खान-पान और रहन-सहन में भी परिवर्तन कर ऊंची जातियों जैसी जीवन-पद्धति अपनाई। इस नए परिवर्तन की ओर श्रीनिवास का ध्यान गया और उन्होंने इसे संस्कृतिकरण की संज्ञा दी। उनका यह संबोध भारतीय समाजशास्त्र को वर्षों तक प्रभावित करता रहा। यह दुर्भाग्य है कि आज के राजनीति-प्रेरित लेखक इस प्रक्रिया को श्रीनिवास का दिया हुआ 'प्रेसक्रिप्शन' कह कर उनकी निंदा करते हैं।

श्रीनिवास ने एक प्रचलित प्रक्रिया को उजागर किया था, न कि उसका समर्थन। आज के संदर्भ में उस प्रक्रिया का ठीक उल्टा हो रहा है। आरक्षण का लाभ उठाने के लिए वे समूह और जातियां, जो कभी संस्कृतिकरण के माध्यम से भारतीय समाज में अपना स्तर ऊपर उठा चुकी थीं, आज फिर से नीचे के स्तर पर लौटना चाह रही हैं और अपने को नीचा कहने में गर्व का अनुभव करती हैं। प्रजातंत्र, शिक्षा का प्रसार और आधुनिकता फिर से प्रगति के नाम पर परंपरा को पोषित कर रहे हैं। मरती हुई जाति को प्राणदान दे रहे हैं। आज जाति का परंपरागत जोर समाप्त हो रहा है, व्यवसाय और जाति के पर्याय लुप्त हो रहे हैं, विवाह के लिए भी जाति की सीमाएं टूट रही हैं। सच तो यह है कि कभी भी जाति और व्यवसाय एक दूसरे के पर्याय नहीं रहे। हां, कुछ ऐसे व्यवसाय थे, जिन्हें अमुक जाति के लोग ही करते थे, पर जाति के सभी सदस्य उसमें लगे हों ऐसा कम ही होता था। फिर, कुछ व्यवसाय खुले थे जिन्हें किसी भी जाति का व्यक्ति कर सकता था।

प्रो. अटल लिखते हैं कि, यहाँ यह भी जानने की आवश्यकता है कि निम्न कही जाने वाली सभी जातियां अस्पृश्य नहीं थीं। निम्न जातियों में भी छुआछूत का प्रचलन था और

आज भी है। चर्म उद्योग से जुड़ी जातियों में भी स्तरीकरण पाया जाता है और इसलिए छुआछूत के लिए केवल ऊंची कही जाने वाली जातियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जाति-व्यवस्था की इन बारीकियों को प्रस्तुत करना एक समाज वैज्ञानिक का धर्म है और जो समाज विज्ञान का चोगा पहन कर भी राजनीतिकों को खुश करने के लिए अर्धसत्य को प्रचारित करते हैं, वे एक प्रकार से समाज विज्ञान के माध्यम से दुकान चला रहे हैं और उनसे संभल कर रहने की आवश्यकता है।

स्वास्थ्य सेवा और समाज की सांठ गाँठ

एक समय था जब हम अपने अतीत का गौरव बखान कर अपना वर्तमान बदलने के आन्दोलन में जुटे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हम अपने पिछड़े वर्तमान को ठीक करने की दिशा में चल पड़े। जीवन के प्रत्येक पक्ष में अल्प विकास का अन्धकार छाया हुआ था। चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, कृषि हो, या जीवन पद्धति। अंधविश्वास से घिरे तत्कालीन तृतीय विश्व के सभी देशों के लिये पाश्चात्य सभ्यता ही सन्दर्भ समूह थी और सभी अल्पविकसित देश उसी के अनुसार ढलने की प्रक्रिया में जुट गए। परिवर्तन की इस नयी परिपाटी को आधुनीकीकरण की संज्ञा दी गयी।

21वीं सदी के साथ ही साथ सोच की नयी प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी है। अब ध्यान हमारे अतीत का चित्रण करने से हट कर आने वाली पीढ़ियों को सुखमय बनाने की ओर है। भविष्यमुखी इस सोच का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देने लगा है। प्रो. अटल मानविकी के अपने अध्ययन और शोध के दायरे में स्वास्थ्य की नयी सोच को भी शामिल करते हैं। जिसके तहत बताते हैं कि, पुराने जमाने में स्वास्थ्य और चिकित्सा एक दूसरे के पर्याय माने जाते थे। स्वास्थ्य की जिम्मेदारी अस्पतालों की थी। नयी सोच यह है कि हम अपनी जीवन विधि को कैसे संयोजित करे। ऐसी व्यवस्था कैसे बनाये जिससे हमें कम से कम बार अस्पताल का मुंह देखना पड़े। उपचार के माध्यम को परिष्कृत करने की आवश्यकता तो रहेगी ही, पर अब यह स्वीकार करना होगा कि समाज के स्वास्थ्य की पूरी जिम्मेदारी अस्पताल की नहीं हो सकती। यदि स्वच्छ भारत का अभियान चलाना है तो इस में सभी की भागीदारी आवश्यक है। हम अपने वातावरण को इस प्रकार स्वच्छ बनाए कि बार बार अस्पतालों के चक्कर न काटने पड़े।

आज की परिस्थिति यह है कि जहाँ पुराने रोगों के उपचार सुलभ हुए है वहीं नए रोगों का अवतरण हो रहा है। कभी मलेरिया का महारोग चिंतित करता था तो डीडीटी का अविष्कार हुआ और विश्व भर में मच्छरों के समूल संहार का विशाल कार्यक्रम चला। मलेरिया पर प्रहार तो हुआ पर बेशर्म मच्छर बने रहे। पहले नारा लगाया गया - न रहेगा मच्छर न होगा मलेरिया; फिर हुआ संशोधन: मच्छर तो रहेंगे पर मिट जायगा मलेरिया। क्लब ऑफ रोम के अंतर्गत की गयी शोधों ने बताया कि मलेरिया से लड़नेवाली डीडीटी पानी के साथ घुल मिल कर समुद्र में जा रही है और उससे फैलनेवाले प्रदूषण से मछलियां प्रभावित हो रही है और समुद्री मछली

खानेवाले लोगों के पेट नयी पीड़ा से परेशान हो रहे है। एक का उपचार दूसरी बीमारी का प्रहार बन रहा है। अब मच्छरों ने अपने नए इरादे उजागर कर दिए हैं : पहले डेंगू और अब चिकनगुनिया हमारी शब्दावली में जुड़ गए है और मच्छरों के इस नए हमले ने भारी कोहराम मचा दिया है। चिकित्सा जगत में इस नयी बीमारी के ईलाज के लिए एक तरफ सही दवाओं की तलाश शुरू हुयी है तो दूसरी ओर नयी शोध की आवश्यकता भी जागी है। समस्या से निबटने के लिए पुरानी दवाइयों का प्रयोग अनुमान के तौर पर किया जाने लगा है। इस समस्या से जुझने के लिए जितना समय नयी शोध लेगी तब तक नए कष्ट रोग का रूप धारण करने लग जायेंगे।

उपर्युक्त संदर्भों के आलोक में प्रो. अटल एक दैनिक अखबार में लिखते हैं कि, हमारा पिछला अनुभव बताता है कि उपनिवेशवाद के काल में नये यौन रोग जैसे सिफलिस और गोनोरिया उभर कर आये, वैसे ही बाद में इन्फ्लुएंजा और फिर एड्स की बीमारियाँ फैली। फिर यकृत रोग का प्रसार होने लगा और अब मच्छरों ने परेशान कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह कि जहाँ एक ओर चिकित्सा विज्ञान नए आयामों को छू रहा है वैसे-वैसे ही नए रोगों का आक्रमण भी होने लगा है। दुर्घटना, आत्महत्या, मानसिक तनाव, गुटों के आपसी टकराव आदि से होने वाली समस्याओं का भी चिकित्सा पर प्रभाव पड़ा है। भ्रूण हत्या भी सामाजिक कुकृत्य की निशानी है। जनसँख्या की अभिवृद्धि को रोकने के लिए भी परिवार नियोजन का मार्ग चिकित्सा और समाज व्यवस्था को एक साथ ला खड़ा करता है।

चिकित्सा का समाजशास्त्र बताता है कि आधुनीकीकरण के साथ-साथ रोगों का मानचित्र भी बदल रहा है। एक ओर तो उन रोगों की संख्या बढ़ रही है जो दैहिक न हो कर मानव-अंत:क्रिया से संबन्धित है - जैसे यौन सम्बंधो से जुड़े रोग हैं तो दूसरी ओर पुराने रोगों के कारक तत्व इतने प्रबल हो गए है कि हल्की दवाओं से उनका इलाज नहीं हो पाता। एक अन्य समस्या व्यवहार की है। सभी जानते है कि नकली दवाओं का कितना घिनोना अपराध हो रहा है। छद्म चिकित्सको की भी भरमार हो रही है। वहीं पुरानी जड़ी-बूटियों के नाम पर कुछ छद्मजन लोगों की जिन्दगी के साथ खेल रहे है।

पहले डॉक्टर को भगवान के तुल्य माना जाता था परंतु आज का डॉक्टर विशेषज्ञ हो गया है। अस्पताल व्यवसाय के साधन हो गए है। वे अपनी तुलना पांच सितारा होटल से करते है, पैसे के लालच में बग़ैर जरूरत के टेस्ट करा कर पैसे ऐंठने का कार्य करने लगे हैं। अब जब कि शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा है मरीज भी डॉक्टरों और अस्पतालों को कोर्ट कचहरियों तक घसीटने लगा है। इन सब से चिकित्सा व्यवस्था का ऐसा व्यवसायीकरण होने लगा है कि आम आदमी डॉक्टर को उस भक्ति-भाव से नहीं देखता, और अस्पताल जाने की अपनी मजबूरी पर भी आंसू बहाता है (अटल, योगेश: 2016: प्रस्तावना से)।

डॉक्टर और मरीज का संबन्ध गैर बराबरी का है। चिकित्सा में भाव-ताव नहीं हो सकता, केवल पैसे बचाने के लिए रोगी अपनी जान की जोखिम नहीं ले सकता। उसे ही झुकना पड़ता है, यही उसकी विवशता है। चिकित्सा को इस नए परिवेश में देखने की आज

आवश्यकता है। हमें हमारी भावी चिकित्सा पद्धति ऐसी बनानी होगी जो आने वाले समय की संभावित बीमारियों का उपचार करने में समर्थ हो। उदाहरणार्थ, जन्मदर कम होने के साथ ही साथ वृद्ध लोगों का प्रतिशत भी बढ़ रहा है। ऐसे लोगो के रोग भी अलग होते है। मानसिक रोग भी बढ़ेंगे, नगरीकरण के साथ ही वायु प्रदूषण, मच्छर जनित रोग अभी से परेशान करने लगे हैं। सड़क दुर्घटना के कारण भी लोग अस्पतालों की ओर अधिकाधिक मुखातिब होंगे। इस सब के लिए एक नयी नीति की आवश्यकता है जो आगत की चुनौतियों का अनुमान लगाये और ऐसा ढांचा तैयार करे जो भविष्योन्मुखी हो।

गांधी और मौजूदा भारतीय एवं वैश्विक संकट

गांधी और मौजूदा भारतीय एवं वैश्विक संकट के बारे में प्रो. अटल लिखते हैं कि, 1972 में लंदन विश्वविद्यालय में जब मुझे चतुर्थ महात्मा गांधी स्मारक व्याख्यान के लिए बुलाया गया, तब मैंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि भारत में जाति टूट रही है और खास बात यह है कि जाति के माध्यम से जाति टूट रही है। जैसे लोहे को लोहा काटता है, वैसे ही जाति को जाति काट रही है। आज मैं स्वीकार करता हूं कि जाति मरी नहीं है, बल्कि वह नया स्वरूप धारण कर अपनी जगह कायम है। जाति इक्कीसवीं सदी में भी प्रबल होती दिख रही है। जब देश स्वतंत्र हुआ और गांधीजी ने जातिवाद और गरीबी के उन्मूलन की बात कही तो हम लोग आश्वस्त हुए कि समाज की स्थिति में सुधार होगा। स्वतंत्रता की परम उपलब्धि होगी जाति व्यवस्था की समाप्ति। मैंने शायद यही सोच कर जाति व्यवस्था पर शोध करने का निर्णय किया कि इस संस्था का मरण से पहले वस्तुपरक अध्ययन कर लिया जाए, क्योंकि जैसी जाति व्यवस्था उन दिनों के गांवों में पाई जाती थी, वह भारत-शास्त्रियों द्वारा वर्णित और प्राचीन ग्रंथों पर आधारित विवेचन से कोसों दूर थी। मनु या अन्य मुनियों ने वांछित पर बल दिया था, न कि उनके काल में प्रचलित संस्था का वस्तुनिष्ठ वर्णन। वांछित और वास्तविक में जो अंतर होता है, उसे भारत-शास्त्रियों ने गौण गिना। विदेशियों ने भी वांछित के आदेशों को ही प्रचलित संस्था का वर्णन समझने की गलती की।

सही है कि आज की जाति वैसी नहीं है जैसी मनु ने कभी वांछित के रूप में प्रस्तावित की थी, न ही वह हम जैसे लोगों द्वारा अध्ययन किए हुए ग्रामों में यथावत है। जाति ने अपनी लोचनीयता का भरपूर परिचय दिया है। लोग जाति की संस्था को ठीक से समझते नहीं, लेकिन इस भ्रम में रहते हैं कि एक भारतीय होने के नाते वे जानते हैं कि जाति क्या है। जिस अर्थ में जाति को समझना चाहिए, यानी एक सामाजिक इकाई के रूप में, उसमें तो यह निस्संदेह टूट रही है। जाति पर समाजशास्त्रियों ने जो लिखा है उसके अनुसार जाति का अर्थ छुआछूत, खान-पान, रोटी-बेटी का व्यवहार, पहनावा और शुचिता-अशुचिता के मानदंड थे। आज के संदर्भ में इन विभेदों का तेजी से लोप हो रहा है और जो भी जातियां इन पर जोर दे रही हैं- चाहे वे निम्न श्रेणी की हों या उच्च श्रेणी की- उनका व्यापक विरोध सार्वजनिक होता जा रहा है। जहां तक छुआछूत का प्रश्न है, आप शहरों-कस्बों में देखिए; रेलगाड़ी, मंदिर,

रेस्तरां में जाकर देखिए। लोग घरों में नौकर रखते हैं तो आज उनकी जाति नहीं पूछते। उपर्युक्त तथ्य गाँधी के सपनों के भारत की तरफ बढ़ते कदम को दर्शाते हैं।

प्रो. अटल ने लंदन के इस सेमिनार में 'गांधी और वैश्विक संकट' विषय पर भी अपने विचार प्रकट किये, जिसमें आधुनिकता की सभ्यता-समीक्षा करते हुए गांधी के विचारों को समग्रता में समझने के प्रयास पर बल दिया। उनके इस पूरे वक्तव्य में तीन मुख्य तत्व अंतर्निहित थे : पहला, आधुनिक संकट की प्रकृति और उसके स्वरूप की पहचान, उसकी व्याख्या और हमारे जीवन पर उसके प्रभाव का गहन विश्लेषण। दूसरा, वैश्विक संकट के परिप्रेक्ष्य में और उससे उबरने की राह तैयार करने हेतु गांधी-विचार की प्रासंगिकता। तीसरा, युवा पीढ़ी में गांधी दर्शन के प्रति लगाव पैदा करना और उनमें विवेकसंपन्न सृजनशीलता का विकास।

इसके अतिरिक्त गाँधी और उनकी वैचारिक मान्यता को बढ़ावा देने के तहत उन्होंने भारत में मातृभाषा के संकट को भी उजागर किया और इसके निदान के तौर पर हिंदी में समाज-वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने पर उनका सदैव जोर रहा। उन्होंने स्वयं भी हिंदी में 'समाजशास्त्र : समाज की समझ' (2015) जैसी महत्वपूर्ण किताब लिखी और सीएसडीएस और वाणी प्रकाशन के संयोजन से अर्ध-वार्षिक प्रकाशित होने वाली हिंदी जर्नल 'प्रतिमान' के लगभग हर अंक में हिंदी में शोध आलेख लिखे और कई हिंदी दैनिक समाचार पत्रों में समसायिक मुद्दों पर निरंतर लेख लिखे।

भारत के पुनरोदय के प्रति मजबूत आस्था

प्रो. अटल का मानना था कि एक प्राचीन सभ्यता का सूचक हमारा देश भारत अभी भी विश्व के देशों के बीच युवा गिना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर उपनिवेशवाद से मुक्त हुये देशों में से भारत भी एक था। विभाजन से खंडित देश में आजादी का उत्साह भी था और विभक्ति का दर्द भी। कुछ के घर-बार छीन लिए गए, कुछ के जन्म स्थान। अपने ही देश में कुछ शरणार्थी बन गए। कश्मीर के कुछ हिस्से पर अभी भी जंग का माहौल है। इतना होने पर भी हमारा प्रजातंत्र दृढ़ होता चला गया और पड़ोस में सरकारे बदलती रही, सिंहासन डोलते रहे। भारत एक सफल प्रजातंत्र की मिसाल है। चाह कर भी हम पाकिस्तान को अच्छा पड़ोसी न बना पाए। भारत धर्म निरपेक्षता का उदहारण है। कश्मीर के विषय में हमारी स्थिति स्पष्ट है; वह इस देश का अभिन्न अंग है। वर्तमान सरकार ने अपना रुख साफ कर दिया है और हम सबकी यह आशा है कि जंग न हो और ढंग से यह पेचीदा मामला सुलझ जाय। हमारा शांति का पथ अवश्य है पर हम उतने ही सशक्त भी है। हमें गर्व है कि आज का भारत सन सैतालीस के भारत से कहीं आगे बढ़ गया है। जिन पाश्चात्य विद्वानों ने घटिया भविष्य वाणी कर इस देश पर आशंकाए उठाई थी वे सब कितनी निराधार थी यह इस देश के लोगो ने कर दिखाया है।

विभाजन के उपरांत भी जिस देश की जनसँख्या 35 करोड़ के लगभग थी वह आज 125 करोड़ के करीब है। 1947 का भारत अधिकांश निरक्षर था। साक्षरता कुल मिला कर 16 प्रतिशत के आसपास थी, आज यह आंकड़ा सत्तर को पार कर गया है। हमारी सड़के और रेलें दूर दराज के क्षेत्रों तक पहुँच बढ़ाये जा रही है, वायुयान से यात्रायें सुलभ हुयी है और संचार सम्प्रेषण की क्रांति से निकटता बढ़ती जा रही है। एक समय था जब हमारे युवा उच्च शिक्षा के लिए विदेश भागते थे, आज भारत के निपुण युवा सूचना क्रांति में योगदान कर रहे है। तब हम अन्य विकसित देशों के बाजार के ग्राहक थे। आज हमारा देश आयात करने से आगे बढ़कर निर्यात करने की अवस्था में पहुँच गया है। सन साठ के दशक के उन्नत अमेरिका की तुलना में सन 2016 का भारत कहीं अधिक आधुनिक हो चुका है। जहाँ कभी मात्र 18 विश्वविद्यालय और 518 कॉलेज थे वहां आज यह संख्या बढ़ कर क्रमश: 510 और 26 हजार हो गयी है। इनमें कई तो निजी संस्थाएं है, फिर भी शिक्षा की बढ़ती मांग की तुलना में यह संख्या कम पड़ रही है। शिक्षा के प्रसार से कई नए व्यवसाय भी खुले है जिससे जातिगत भेदभाव भी बड़ी मात्रा में कम हुआ है। शिक्षा के कारण हमारी प्रजातान्त्रिक राजनीति भी प्रबल हुई है। अधिकाधिक संख्या में लोग राजनीति में स्वेच्छा से भाग लेने लगे है।

विश्व स्तर पर भी भारत की साख बढ़ी है। कई देशों के सहकार से भारत में नयी विकास योजनाओं का श्रीगणेश हुआ है। देश तरक्की के रास्ते पर अग्रसर है। जिन्होंने हमारी आजादी मिलने के समय ही हमें श्रद्धांजली दे डाली थी वे अगर आज जीवित होते तो उन्हें अपने कथन पर पछतावा होता। हमारी युवा पीढी, जिसने देश की आजादी के तुरंत बाद का भारत देखा ही नहीं उन्हें शायद भले ही यह लगे कि बहुत कुछ होना अभी शेष है, पर जिन्होंने वे शुरू के दिन देखें है वे तो तब और अब में जमीन-आसमान का अंतर पाते है। कभी भारतीय अन्य देशों में पढ़ने और नौकरिया ढूँढ़ने जाते थे आज दूसरे देशों के लोग भारत में काम की तलाश में आते हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में न केवल भारत के दर्शन प्राय: सभी देशों में होने लगे हैं वरन हमारे देश में सभी देशों की झलक देखने को मिलती है। हम न केवल सम्पूर्ण विश्व के आज के भागीदार है वरन संचार-सम्प्रेषण की क्रांति से फिर अपने अतीत से वर्तमान को जोड़ पाए है वरन अपने सुखद भविष्य की कामना करने लगे है ताकि हमारी आनेवाली पीढियां प्रसन्न रहे, गरीबी मिटे, शिक्षा का विस्तार हो और लोग अन्धविश्वास की काल कोठरियों में पुन: प्रवेश न कर पाए।

भारतीय समाजशास्त्र में मौजूद कमियाँ पर ध्यान आकृष्ट कराते प्रो. अटल

प्रो. अटल मोटे तौर पर भारतीय समाजशास्त्र की पाँच प्रमुख कमियों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट कराते हैं। पहला, भारत में समाजशास्त्रीय अनुसंधान मोटे रूप में बहुमुखी नहीं रही है। एक समय था जब अधिकतर शोध भारत-विद्या के दायरे में थी। फिर ग्रामीण और नागर शोध होने लगे। इन शोधों से जुड़े आधुनिकीकरण के प्रश्नों ने समाजशास्त्रियों को आकर्षित किया और इस प्रक्रिया के अंगों के रूप में नगरीकरण और पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं में

शोध की जाने लगी। इसमें सहायक हुआ यह तथ्य कि भारत सरकार ने सामुदायिक विकास योजना की महती मुहिम पर शनैः शनैः महत्व कम करना प्रारम्भ कर दिया (अटल, योगेशः 2014: 39)।

दूसरा, चुनाव के क्षेत्र में कुछ अध्ययन समाजशास्त्र के क्षेत्र में हुए हैं। पर भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद के विषयगत सर्वेक्षणों से तो यही पता लगता है कि इस दिशा में समाजशास्त्री आगे नहीं बढ़े। चुनाव का समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्रियों के पास चला गया। भारतीय समाजशास्त्र की यह विशेषता रही है कि किसी एक कालखंड में अधिकांश लोग एक ही विषय पर काम करते हैं। ग्रामीण विकास, आधुनिकीकरण आदि पर काम करने के बाद समाजशास्त्र का भारत में रुझान सामाजिक आंदोलन की तरफ मुड़ गया। महिला समाजशास्त्री स्त्री अध्ययन करने लगीं। आज के संदर्भ में क्षेत्र शोध के रूप में पंचायती राज अभी भी अध्ययन का केंद्र है किंतु बिना शोध के चिंतन की दिशा में सभी पर वैश्वीकरण की प्रक्रिया हावी है। वैश्वीकरण के दुष्परिणामों की चर्चा तो होती है, पर इन आलोचनाओं का कोई तथ्यगत ठोस आधार नहीं है (वही, उपरोक्त वर्णित)।

तीसरी कमी के तौर पर वह भ्रष्टाचार से सम्बन्धित अध्ययन को देखते हैं। भ्रष्टाचार की समस्या को तो स्वयं भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने स्वीकार किया था और अपने एक भाषण में कहा कि सरकार से एक रुपया रिलीज होता है तो लाभार्थी के पास पहुँचते-पहुँचते वह मात्र 15 पैसे बचता है शेष 85 पैसे रास्ते में सारे विभाग और कर्मचारियों के मध्य बँट जाता है। प्रो. अटल का यहाँ मानना था कि भ्रष्टाचार और उसे पानी देने वाली जटिल प्रक्रिया आम तौर से समाजशास्त्रीय चिंतन के केंद्र में नहीं रही है। दरअसल भ्रष्टाचार पर मिलने वाला अधिकतर लेखन उसके उजागर होने पर रचा गया है, और उसके प्रभावों की ओर ही इंगित कर पाता है। इससे संदेश यही मिलता है कि भ्रष्टाचार अवांछित है, और इसका निराकरण होना चाहिए। लेकिन समाज चिंतन में ऐसे साहित्य का अभाव है जो इसके उदय और प्रसार की प्रक्रिया का वस्तुपरक अध्ययन करता हो। सरकारी आँकडे और निरीक्षकों की रपटें इस कमी को पूरा नहीं कर सकतीं। समाज विज्ञान को इसके अध्ययन के लिए नयी तकनीक का विकास करना होगा। सर्वेक्षण की पद्धति इसके लिए उपयुक्त नहीं है। पर्यवेक्षण में कई बाधाएँ हैं। स्थिति यह है कि भ्रष्टाचार पर अनुसंधान करने के सर्वांग परिप्रेक्ष्य का भी अभाव है (अटल, योगेशः 2013: 41)।

प्रो. अटल भ्रष्टाचार की समस्या के प्रति अतिगंभीर थे। उनका मानना था कि भ्रष्टाचार की समस्या परोक्ष रूप से मानव अधिकारों को प्रभावित करती है। अपने एक लेख में वे लिखते हैं कि मानव अधिकारों की परोक्ष अवहेलना में खासतौर पर ऐसे भ्रष्टाचार का हाथ रहता है जिसकी आवृत्ति होने पर ही मानवाधिकार प्रभावित होते हैं। सरकारी अफसरों को घूस देकर उन्नत देश अपना टाक्सिक वेस्ट विकाशसील देशों को निर्यात कर देते हैं और ऐसा कूड़ा कई बार बस्तियों के इर्द-गिर्द डाल दिया जाता है। इससे निकलने वाली जहरीली गैसों से वहाँ के निवासी प्रभावित होते हैं और कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस दृष्टांत में रिश्वत

को सीधे-सीधे अधिकारों के हनन से नहीं जोड़ा जा सकता, लेकिन रिश्वत ऐसे मामलों में एक आवश्यक कारक तो हैं ही (वही, उपरोक्त वर्णित)।

चौथी कमी में वह आँग्ल भाषा के प्रति विवशता को रखते हैं। भाषा के लिहाज से भारतीय समाजशास्त्र के अभिजन विद्वान, जो वस्तुत: आँग्ल भाषा में पठन-पाठन एवं शोध कार्य के हिमायती हैं और उसके साधारण उपयोगकर्ता जो वस्तुत: देशज भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं से अनभिज्ञ हैं, का संधि स्थल उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ। प्रो. अटल को केंद्र और परिधि का यह फासला बहुत अखरता था। गाँधी और लोहिया की तरह उनका मानना था कि भारतीय भाषाओं का हाथ थामे बग़ैर भारतीय समाजशास्त्र अपने अभिजात्य से मुक्त नहीं हो सकता। गौरतलब है कि प्रो. अटल न केवल अपनी मातृभाषा हिंदी में सिद्धहस्त थे, बल्कि हिंदी में कविताएँ, शोध-आलेख, पुस्तकें और इच्छुक व्यक्तियों/संस्थाओं को हिंदी माध्यम में बौद्धिक ज्ञान/विमर्श/परिचर्चा के लिए भी हमेशा तत्पर रहते थे। उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में प्रो. अटल का मानना था की भारतीय समाजशास्त्र को इन मुद्दों पर गहनता से सोचने और काम करने की आवश्यकता है ताकि भारतीय समाजशास्त्र अपनी अकादमिक गतिशीलता तथा सामाजिक एवं राजनीतिक प्रासंगिकता बनाए रख सके।

पाँचवीं कमी के तौर पर प्रो. अटल विशिष्ट शोध केंद्रों का अभाव महसूस करते हैं। सैद्धांतिक पद्धति और परिप्रेक्ष्य के लिहाज से भारतीय समाजशास्त्र के विकास-क्रम में विशिष्ट शोध केंद्रों के अभाव की चर्चा करते हुए प्रो. अटल इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि भारत में समाजशास्त्र का अनुशासन दो तरह की विसंगतियों से ग्रसित रहा। कहीं उस पर विरासत हावी रही तो विद्वता के विकास में बरती जाने वाली सावधानी जाती रही और अगर कहीं विद्वता/शोध की अर्हताओं का कड़ाई से पालन किया गया तो उसकी विरासत नहीं बन पाई। इस क्रम में वह यह कहने से भी नहीं चूके कि समाजशास्त्र के विभागों में संरक्षण और कृपाभाव की एक अर्ध-सामंती सी ग़ैर-आधिकारिक व्यवस्था विद्यमान रहती है जिसके कारण विद्वता का प्रश्न दूसरे नंबर पर चला जाता है।

निष्कर्ष

प्रो. अटल भारतीय समाजशास्त्र में एक विशेष धारा का प्रतिनिधित्व करते थे। अपने अध्यापकीय जीवन और बौद्धिक कर्म में वे देशज समाजशास्त्र के हिमायती थे। उनका शोध तथा कृतित्व मुख्यत: सामाजिक आंदोलनों, ग़रीबी का समाजशास्त्र, जातीय अभिवंचना, चुनावी समाजशास्त्र और विकास के बुनियादी सवालों के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहा। इन विभिन्न क्षेत्रों में उनका शोध जमीनी अवसंरचनाओं से आबद्ध होने के कारण अपनी विशिष्ट उपस्थिति दर्शाता है। एक समय जब भारतीय समाजशास्त्र जाति, नातेदारी, ग्राम्य-अध्ययन से आगे नहीं देख पा रहा था और उसकी अवधारणाओं का केंद्रीय बिंदु संरचना-प्रकार्य बन चुका था तब प्रो.अटल 'भारतीय समाजशास्त्र की खोज: कहां से कहां तक?' जैसी समावेशी कृति रचकर भारतीय समाजशास्त्र को नई अवधारणात्मक दिशा प्रदान की। भारतीय समाजशास्त्र के साथ

प्रो. अटल का यह समालोचनात्मक जुड़ाव आजीवन जारी रहा। 2014 में प्रकाशित अपनी एक अन्य पुस्तक के एक लेख में प्रो. अटल ने यह चिंता व्यक्त की थी कि भारतीय समाजशास्त्र में जब भी किसी सार्थक विमर्श का नवीन अभ्युदय होता है तो वह सदैव इस विषय क्षेत्र के परम विशारद व्यक्तियों के अभिजन समूह तक ही सीमित होकर रह जाता है। यह चिंता स्वयं में एक आत्म बोधीय ज्ञान का लक्षण है जो यह दर्शाता है कि प्रो. अटल किसी शोध संस्थान या विश्वविद्यालय के परिसर तक बंध कर बौद्धिक जीवन व्यतीत करने वाले समाजशास्त्री नहीं थे। वरन उनके बौद्धिक ज्ञान का लक्ष्य यह था कि समाजशास्त्रीय ज्ञान सामान्य मानवीय बोध एवं सामाजिक और राजनीतिक नीति-निर्धारण का हिस्सा होना चाहिए। निष्कर्ष के तौर पर यह कहना ग़लत न होगा कि प्रो. अटल ने भारतीय लोकतंत्र, चुनाव-प्रक्रिया, मतदाताओं के व्यवहार को समझने की सैद्धांतिकी विकसित करने के साथ ही आधुनिकता और परंपरा के अंतर्द्वंद्व, हाशिये के समुदायों की लोकतंत्र में भागीदारी, विकास की धारणा की विसंगतियों पर भी अपने विचारोत्तेजक लेखन से लोगों का ध्यान खींचा। भारतीय समाजशास्त्र में उन्होंने संवाद की प्रक्रिया पर आधारित जिस शोध-पद्धति का सूत्रपात किया, वह आज और भी प्रासंगिक हो गई है।

सन्दर्भ ग्रंथ

अटल, योगेश. 2014. *समाजशास्त्र: समाज की समझ.* नई दिल्ली: पियर्सन एजूकेशन.

अटल, योगेश. 2016. *भारतीय समाज: नैरंतर्य और परिवर्तन.* नई दिल्ली: पियर्सन एजूकेशन.

अटल, योगेश. 2014. 'बाजारू शोध बन कर रह गयी है सेफोलजी'. *प्रतिमान.* जनवरी-जून 2014. वर्ष-2. खंड-2. अंक-1

अटल, योगेश. 2018. 'चुनाव-शास्त्र और राजनीति'. *प्रतिमान.* जनवरी-जून 2018. वर्ष-6. अंक-11

अटल, योगेश. 2013. 'भ्रष्टाचार: समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य'. *प्रतिमान.* प्रवेशांक: जनवरी-जून 2013. वर्ष-1. खंड-1. अंक-1.

दुबे, श्यामाचरण. 2012. *विकास का समाजशास्त्र.* नई दिल्ली: लिटिल बुक्स (वाणी प्रकाशन).

देवेश, विजय. 2018. 'योगेश अटल: एशियाई संदर्भों के समाजशास्त्री'. *प्रतिमान.* जनवरी-जून 2018. वर्ष-6. अंक-11

सिंह, योगेन्द्र. 2006. *भारतीय परंपराओं का आधुनिकीकरण.* जयपुर: रावत प्रकाशन

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 32-44)
UGC-CARE (Group-I)

बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम, 2011 (समीक्षात्मक अध्ययन)

पंकज कुमार सिंह[*] एवं सीतेश कुमार[†]

बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम, 2011 को लागू हुए लगभग डेढ़ दशक होने को हैं। पूरे देश भर में राज्यों द्वारा नागरिकों के रोजमर्रा की जरूरतों से जुड़ी कुछ आवश्यक सेवाओं को इस अधिकार आधारित कानून के दायरे में लाया गया। ज्ञात हो कि यह कानून मुख्यत: राज्य सरकारों द्वारा बनाया और लागू किया गया। केंद्रीय स्तर पर भी ऐसे कानून बनाने के लिए संसद द्वारा प्रयास किया गया, पर वह आगे नहीं बढ़ सका। आगे राज्यों के द्वारा ही इस विचार को आगे बढ़ाया गया। बिहार, लोक सेवाओं के अधिकार कानून को अपनाने में न सिर्फ अग्रणी रहा है, बल्कि इसके सुचारू संचालन के लिए सरकार द्वारा व्यापक प्रयास किए गए। ये प्रयास किस प्रकार के थे तथा इन प्रयासों का प्रतिफल क्या रहा है? इसकी विश्लेषणात्मक समीक्षा इस शोध-पत्र में की गई है। इस कानून के उत्पत्ति की वैश्विक परिस्थितियों एवं स्थानीय कारकों तथा वर्तमान स्थिति की विश्लेषणात्मक समीक्षा की गई है। इस शोध-पत्र में इस कानून की

[*]सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)
E-mail: pankajkumarsingh@mgcub.ac.in
[†]शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी, (बिहार)
E-mail: siteshk13@gmail.com

प्रकृति को समझने का प्रयास भी किया गया है क्योंकि, प्रशासन में सुधार के प्रयास तो पहले भी किए जाते रहे हैं तो, लोक सेवाओं के लिए अधिकार आधारित कानून बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह कानून प्रशासनिक सुधार के दृष्टिकोण से कितना महत्वपूर्ण है? इतने लंबे समय बीत जाने पर भी बहुत सीमित सेवाओं को इस कानून के अंतर्गत रखा गया है, इस पर विचार किया गया है। प्रशासनिक सुधारों के अन्य प्रयासों से यह कदम कैसे और कितना अलग है इसकी व्याख्या की गई है। अंत में इस कानून की सीमाओं का विश्लेषण है तथा कुछ सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

बीज शब्द - 'बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम', प्रशासनिक सुधार, अंतर्गष्ट्रीय मुक्त व्यापार, नागरिक घोषणापत्र, इत्यादि।

पृष्ठभूमि

अधिकार आधारित कानूनों की पृष्ठभूमि 'मिन्नोब्रुक सम्मेलनों' (बोवोर्णवाथन, 2010) तथा 'ब्लैक्सबर्ग मेनिफेस्टो' से अवश्य तैयार हुई पर, जुलाई 1991 में ब्रिटेन सरकार के प्रधानमंत्री के तौर पर जॉन मेजर द्वारा प्रकाशित 'नागरिक घोषणा पत्र' को इस कानून की पूर्ववर्ती अवस्था माना जा सकता है। ब्रिटेन और अमेरिका इस कानून के आलोक में होने वाले प्रशासनिक बदलाव के केंद्र में है (विशेषकर भारत के संदर्भ में) पर दोनों देशों में हुए प्रशासनिक सुधारों में कुछ अंतर है, विशेषत: उद्देश्य का। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रशासनिक सुधार मुख्यत: अपने बाजार-विस्तार पर केन्द्रित था, क्योंकि सोवियत यूनियन के विघटन के पश्चात वह महाशक्ति के रुप में स्थापित हो गया था जिससे वह पूंजी के विस्तार हेतु अपने यहां कम बल्कि विकासशील देशों में अपने अनुकूल प्रशासनिक तंत्र चाहता था। पर पश्चिमी यूरोपीय देशों में विशेषकर इंग्लैंड में वहां की आतंरिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यापक प्रशासनिक सुधार के प्रयास किए जा रहे थे, इसलिए यहां सुधार की प्रकृति भिन्न थी। विकसित राष्ट्रों में भी 80 के दशक में सार्वजानिक सेवाओं के क्षेत्र में सरकारी प्रशासन बड़ी आलोचना का केंद्र बन गया था। प्रशासनिक नीति से लेकर उसका क्रियान्वयन सब सवालों के घेरे में था, ऐसी परिस्थिति में प्रशासन में एक बड़े परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यालयों पर नागरिक घोषणापत्र की व्यवस्था पारदर्शिता, जवाबदेही तथा लोक सेवाओं को निर्धारित समय में उपलब्ध कराने की स्पष्ट घोषणा एक क्रांतिकारी परिवर्तन था। इस चार्टर ने पुरे विश्व का ध्यान अपनी और खींचा तथा एक सकारात्मक और व्यापक प्रभाव डाला। इस प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण था विकासशील देशों द्वारा इसे हाथों हाथ लेना। भारत जैसे देशों में अमेरिकी बौद्धिक वर्ग द्वारा सुझाई जा रही प्रशासनिक सुधार के बदले ब्रिटेन सरकार की इस पद्धति से खुद को जोड़ पाना आसान और उपयोगी था। जल्द ही नागरिक घोषणापत्र का प्रभाव व्यवहार में परिलक्षित होने लगा जिसके परिणामस्वरूप एक के बाद एक देशों ने अपने यहाँ ऐसे घोषणा-पत्रों को भिन्न-भिन्न रूप में अपनाया (सिटीजन चार्टर - हिस्टोरिकल बैकग्राउंड) बेल्जियम (पब्लिक सर्विस यूजर चार्टर, 1992), कनाडा (सर्विस स्टैंडर्ड्स इनिश्यटिव, 1995), ऑस्ट्रेलिया (सर्विस चार्टर, 1997), भारत

(सिटीजन चार्टर, 1997) इत्यादि। पर भारत में केवल 'नागरिक घोषणा पत्र' को कार्यालयों में टांग देने भर से स्थिति सुधरने वाली नहीं थी, इसके क्रियान्वयन के लिए कानून की शक्ति के साथ प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता महसूस हुई। इस कानून के उद्‌गम के तीन कारकों का विश्लेषण आवश्यक है

वैश्विक परिदृश्य, अकादमिक विमर्श तथा प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता

वैश्विक परिदृश्य के आलोक में ही इस कानून का जन्म हुआ है। विश्व में द्वि-ध्रुवीय शक्ति-संरचना सोवियत रूस के विघटन के पश्चात बदल गई, जिसके साथ ही आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र में पूंजीवाद का वर्चस्व भी स्थापित हो गया। इस घटना का प्रभाव देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग विषयों पर भिन्न था परंतु, प्रभावित हर क्षेत्र था अत: प्रशासनिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप जैसे विकसित देशों में सार्वजनिक सेवाओं को निजी क्षेत्रों से कठिन चुनौतियां तो पहले से ही मिल रहीं थीं, अब इस चुनौती का स्वरूप बदल गया। जनता विशाल सरकारी संरचना को बोझ समझने लगी क्योंकि, उनके द्वारा प्रदत्त सेवाएं निजी क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं की तुलना में बहुत कमतर और कठिन थीं। जनता का भरोसा सरकार और सरकारी सेवाओं में बना रहे इसलिए बड़े प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता थी। अमेरिका और यूरोप के कई देशों में बहुत सारे प्रशासनिक सुधार को भिन्न-भिन्न रूपों में अपनाया भी गया; जैसे इंग्लैंड में 'नागरिक घोषणा-पत्र' तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में 'नव-लोकप्रबंधन' से निर्देशित प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाया गया। परंतु जैसा ऊपर कहा कि विकसित राष्ट्रों का प्रशासनिक सुधार की अवधारणा को अकादमिक तथा वैश्विक संस्थाओं द्वारा बढ़ावा देने का मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों में अपने अनुकूल प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण करना था।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विकासशील देशों में सार्वजनिक जीवन की एक 'नई-दृष्टि' अथवा 'विकास के नए एजेंडे' को आर्थिक शक्तियों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा था, जिसकी डोर पूंजीवादी शक्तियों के हाथ में थी। नवउदारवाद के राजनीतिक विचार ने 'पूंजीवादी-आर्थिक संरचना' (वर्ल्ड बैंक, 2013) के लिए कई वैश्विक संस्थाओं का निर्माण पहले ही कर दिया था, जिससे विश्व बाजार बनाया और संचालित किया जा सके, जैसे - विश्वबैंक, आईएमएफ इत्यादि। विकासशील देशों के पास इन नव-उदारवादी रुझानों से बचने का कोई विकल्प नहीं था, क्योंकि जन-आकांक्षाएं समय के साथ लगातार बढ़ती जा रही थी तथा इन जनाकांक्षाओं के समाधान की ओर बिना पूंजी और तकनीक के तेजी से बढ़ना असंभव था। विकासशील देशों के लिए पूंजी और तकनीक के रुप में अंतरराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने के लिए प्राथमिक शर्तो में से एक थी, वहां सुशासन का होना। अफ्रीकी मूल के राजनीति विज्ञानी लेफ्टविच, 1994 के अनुसार तत्कालीन पूंजीवादी सहायता और अंतरराष्ट्रीय-सहयोग विकासशील देशों के विकास के लिए काम बल्कि मुक्त-बाजार नीति,

बाजारोन्मुखी और प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूंजीवादी वर्चस्व के उपरांत विकासशील देशों को प्राप्त होने वाली सहायता सुशासन की नवीन राजनीति पर निर्भर हो गई।

'सुशासन' की अवधारणा 1989 में सहारा के अधोवर्ती अफ्रीका महादेश पर विश्व बैंक के एक दस्तावेज में पहली बार 'शासन की अवधारणा' शीर्षक से प्रकाशित हुई, जिसमें सुशासन के चार मूलभूत आयाम बताए गए - सार्वजनिक क्षेत्र प्रबंधन, जिम्मेदारी, विकास का वैधानिक ढांचा, तथा सूचना एवं पारदर्शिता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कालखंड में पूरे विश्व में प्रशासनिक सुधार की बयार चल पड़ी, विकसित या विकासशील सभी देश आंतरिक तथा बाह्य कारणों से अपने यहां बड़े प्रशासनिक सुधार की ओर उन्मुख थे।

वैश्विक कारक के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। एक प्रगतिशील सरकार जो कार्य संपादन का एक निश्चित स्तर बनाए रखना चाहती हो उसे समाज के विविध तरह के परिवर्तनों के अनुसार अपने प्रशासनिक तंत्र को ढालना पड़ता है। जब कार्य संपादन के मानकों का विकास करना हो तो सुधार ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत सरकार सामान्य रूप से समितियों और आयोगों का गठन लोक प्रशासन के विभिन्न पक्षों को जांचने के लिए करती रहती है। अब तक दो बार 'प्रशासनिक सुधार आयोग' का गठन व्यापक परिर्वतन की आवश्यकता तथा उसकी उचित विधि जानने के संदर्भ में किया गया है जिसके पर्यवेक्षण क्षेत्र के अंतर्गत लगभग समूचा भारतीय लोक प्रशासन आता है। अकादमिक जगत में लोक प्रशासन के विद्वान भी इस विषय पर मंथन करते रहते हैं कि कैसे प्रशासन को उपयोगी तथा जनोन्मुख बनाया जा सके।

लोक प्रशासन विषय के प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान पॉल एच. एपलबी ने अमेरिका के प्रथम हूबर आयोग के ऊपर लिखे अपने लेख में प्रशासनिक परिवर्तन को दो मुख्य भागों में विभक्त किया है - निरंतर जारी रहने वाला परिवर्तन और कभी-कभी किए जाने वाले परिवर्तन।

गतिशील परिस्थिति से सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से किए जाने वाले परिवर्तन को सामान्य परिवर्तन में वो रखते हैं, जैसे- नियुक्ति प्रक्रिया में बदलाव, दैनिक कार्यविधि में परिवर्तन इत्यादि। ऐसे परिवर्तन जिसका प्रभाव पूरी व्यवस्था पर पड़े, जो अपने क्षेत्र तथा अंतर्वस्तु की दृष्टि से अत्यंत व्यापक हो तथा जिससे शासन में बड़े पैमाने में बदलाव आ जाए तो, ऐसे परिवर्तन को उन्होंने 'पुनर्संगठनीकरण' का नाम दिया। प्रसिद्ध ब्रिटिश विद्वान गेराल्ड ई. केडन ने इसी पुनर्संगठनमुलक परिवर्तनों को प्रशासनिक 'सुधार' कहा तथा इसे सामान्य प्रशासनिक परिवर्तन से अलग तथा महत्त्वपूर्ण माना। फ्रेडरिग्स, 1971 ने भी कहा है कि प्रशासनिक सुधार का संबंध प्रशासनिक प्रणाली की बढ़ती हुई उस क्षमता से है जिसके तहत वह विकल्पों को तय करती है एवं सचेत तथा सजग निर्णयों द्वारा वातावरण में परिवर्तन लाने के लिए 'स्वगत निर्णय' के अधिकार का प्रयोग करती है। इन विद्वानों की व्याख्या की कसौटी पर रखकर इस कानून को हम देखते हैं तो पाते हैं कि लोक सेवाओं के लिए

अधिकार आधारित कानून ने पूरी शासन व्यवस्था को व्यापक रुप से प्रभावित किया, इसलिए इसे हम बड़े प्रशासनिक सुधार के रूप में मानते हैं। जैसा कि ऊपर कहा कि इन अधिकार आधारित कानूनों को सैद्धांतिक बल मिनोब्रुक कॉन्फ्रेंस तथा ब्लैक्सबर्ग मैनिफेस्टो से अवश्य मिला पर जुलाई 1991 में ब्रिटेन सरकार के प्रधानमंत्री के तौर पर जॉन मेजर द्वारा प्रकाशित 'नागरिक घोषणा पत्र' से इसकी व्यापक प्रक्रिया शुरू हुई। जिन प्रशासनिक सुधारों की वकालत मुक्त व्यापार तथा वैश्विक बाजार के निर्माण के उद्देश्य से वैश्विक ताकतें कर रही थीं उसकी आवश्यकता विकासशील देशों में स्वयं भी महसूस की जा रही थी।

भारत में अधिकार आधारित सेवाओं की पृष्ठभूमि वैश्विक परिदृश्य में हो रहे परिवर्तनों के आलोक में 90 के दशक में तैयार हुई, परंतु इसको भारतीय संविधान, न्यायपालिकाओं के निर्णयों तथा विभिन्न प्रशसनिक सुधारों के लिए विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा किये गए प्रयासों ने भी संभव बनाया है। पूर्व से स्थित राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक तंत्र में ऐसी व्यवस्था थी जिससे इन अधिकार आधारित कानूनों के आगमन का मार्ग सरल हुआ।

भारत में कानून का सर्वोच्च स्रोत है हमारा संविधान, जिसके निर्माताओं की बड़ी चिंता थी व्यक्ति के सर्वांगीन विकास को कैसे संभव किया जा सके तथा जो भी व्यवस्था हो उसका सकारात्मक प्रभाव समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सके। भारत के सविधान पर तो वैसे पुरे विश्व के उत्कृष्ट संविधानों की छाया रही है, पर सबसे अधिक प्रभाव ब्रिटेन का है, जहाँ स्वयं ही कोई लिखित संविधान नहीं है। संविधान-सभा (ऑस्टिन, 1999) ने कहीं से भी हुबहू चीजों को नहीं उठाया बल्कि उसे भारतीय परिवेश के अनुरूप ढाला, जैसे - भारतीय संविधान निर्माताओं ने, ब्रिटेन की व्यवस्था पर बहुत अधिक प्रभाव डालने वाले बेन्थम के 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' नहीं बल्कि थोड़ा कम ही सही पर सर्वजन हित को अपना ध्येय बनाया। भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को मूल-अधिकार देकर सशक्त बनाया। राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों को संविधान में जगह दी गई जो कानूनी रूप से बाध्यकारी तो नहीं था पर, नैतिक जिम्मेदारी के रूप में इसे व्याख्यायित किया गया।

दुसरे प्रशासनिक सुधार आयोग के रिपोर्ट संख्या 12 में प्रशासनिक समस्या से संबंधित गहराइयों और उसके प्रभावी समाधान के संदर्भ में विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। नागरिक-केन्द्रित प्रशासन को वर्तमान समय में प्रशासन की आत्मा बताई गई तथा इसको वास्तविक रूप में धरातल पर लाने के भी व्यापक प्रावधानों को सुझाया गया। इसमें सरकार से ऐसे विधान बनाने की सिफारिश की गई जिससे प्रशासन के निचले स्तर पर जहाँ नागरिकों का सीधे संबंध होता है, वहीं पारदर्शिता तथा जवाबदेही तय की जा सके। जिस स्तर पर नागरिक अपना आवेदन देता है वहाँ उसे अपने आवदेन की रसीद दी जाए तथा एक समय सीमा निर्धारित की जाए जिसमें उसे अपनी शिकायत का एक निश्चित समयावधि में समाधान मिले या संबंधित कार्य के न हो पाने के कारणों की विस्तृत जानकारी मिल सके। ऐसा न हो पाने की स्थिति में आवेदन प्राप्तकर्ता अधिकारी पर इसकी जिम्मेदारी तय हो तथा गलती पाए जाने

की स्थिति में दंड का प्रावधान हो। 1997 के मुख्यमंत्रियों के सम्मलेन से ही नागरिक-केन्द्रित शासन के विचार को अपनाने पर बल दिया जाने लगा तथा समय-समय पर उसकी समीक्षा कर सुधार के प्रयास भी किये जाने का संकल्प लिया गया। प्रशासनिक सुधारों के महत्वपूर्ण कदम के रूप में अधिकार-आधारित कानूनों के महत्त्व को समझा गया। 'महात्मा गाँधी ग्रामीण स्वरोजगार गारंटी अधिनियम 2005', 'सूचना का अधिकार कानून 2005', 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' इत्यादि जैसे कई विधायी प्रयास किए गए। इसी आलोक में सेवाओं के अधिकार से संबंधित जो बिल संसद में लाया गया वह अभी तक लंबित है पर, कई राज्यों ने इसे अपने स्तर पर इस कानून को अपने यहां अपनाया। सेवाओं के अधिकार आधारित कानून बनने तथा इनके लागू होने में काफी मतभेद भी हुए; जैसे दंड के संबंध में अधिकारियों का ये मत था कि इससे प्रशासन के निचले स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेंगे, परंतु सरकारों की दृढ़ इच्छाशक्ति से समस्याओं के बावजूद यह कानून बने तथा लागू किया गया। प्रभाव-समीक्षा का भी सहारा लिया गया जिससे इसके भविष्य की संभावनाओं का आंकलन कर और प्रभावी बनाया जा सके। बिहार इस कानून को और आगे ले जाने वाले राज्यों में अग्रणी रहा।

बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम, 2011

15 अगस्त 2011 को 'बिहार लोक सेवावों का अधिकार अधिनियम, 2011' (बिहार राइट टू पब्लिक सर्विस एक्ट, 2011) बिहार में लागू किया गया, जिसमें ये सुनिश्चित किया गया कि इस कानून के अंतर्गत आने वाली सेवाओं को आसानी से और तय सीमा के अंतर्गत नागरिकों को उपलब्ध कराया जाएगा। संबंधित अधिकारी निश्चित समय सीमा के अंतर्गत सेवा उपलब्ध कराने में बिना उचित कारण के अक्षम पाए जाते हैं तो वे दंड के भागी होंगे। इस अधिनियम के अंतर्गत 10 विभागों के 52 सेवाओं को शामिल किया गया तथा इसके सुचारू क्रियान्वयन और संचालन के लिए 'सूचना और संचार प्रौद्योगिकी' (आई.सी.टी.) को अपनाया गया जिसमें कम से कम मानवीय हस्तक्षेप हो। तकनीक द्वारा इस नई व्यवस्था के सफल संचालन के लिए 'अधिकार' (सॉफ्टवेयर), 'समाधान' (आई.वी.आर.एस.) तथा 'जिज्ञासा' (कॉल सेंटर) की व्यवस्था की गई, जो नागरिकों की सहायता कर सके तथा इस कानून संबंधित जानकारी और जागरूकता को बढ़ा सके। इस कानून के तहत आवेदन पंचायत स्तर पर 'जनसेवा केंद्र', ब्लॉक स्तर पर बने आर.टी.पी.एस. काउन्टर तथा 'अधिकार' ऐप के द्वारा उपलब्ध कराने का प्रावधान भी किया गया। आज 'सर्विस प्लस' के माध्यम से देश स्तर पर एक संयुक्त वेबसाइट के माध्यम से सारी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं, जिसमें देश के कुल 36 राज्य तथा केंद्र शासित प्रदेश द्वारा अधिसूचित सेवाएं एक साथ उपलब्ध हैं। साथ ही इस कानून अंतर्गत आने वाली सेवाओं से संबंधित सूचनाएं लगातार सर्विसप्लस द्वारा अपडेट की जाती हैं।

2005 में 'विश्व-बैंक' ने अपने रिपोर्ट में बिहार के सामाजिक और आर्थिक विकास में कई बाधाओं को चिन्हित किया जिसमे अति-गरीबी, अशिक्षा, उच्च जनसंख्या घनत्व, खराब स्वास्थ्य सूचकांक, जर्जर कानून व्यवस्था के कारण निवेश के लिए अनुपयुक्त माहौल को बिहार के विकास की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने रखा।

उपरोक्त परिस्थितियों में विकास को साकार करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण और प्रारंभिक आवश्यकता थी कि बड़ा प्रशासनिक सुधार किया जाए। ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था के निर्माण की चुनौती थी जो पारदर्शी तथा जवाबदेह हो। यह तब और कठिन हो जाता है जब, सरकार के पास अपेक्षाकृत संसाधन सीमित हों, जहां जनता गरीब और अशिक्षित हो तथा जहां प्रशासनिक लोगों को हुजूर तथा माई-बाप जैसे विशेषणों से कातर स्वर-भाव से संबोधित करना आम बात हो। प्रशासन के ऐसे नौकरशाही तंत्र को इन परिस्थितियों में बदलना तथा उसे जनोन्मुख बनाना अत्यंत कठिन होता है। प्रशासन में नौकरशाही से त्रस्त व्यवस्था के बदलाव की प्रक्रिया के सफल क्रियान्वयन का साधन बताते हुए केडेन, 2017 चार बिंदुओं को उद्धृत किया है - राजनीतिक क्रांतियों के जरिए अध्यारोपित सुधार; सांगठनिक जड़ता और रूढ़ियों को खत्म करने के लिए चालू किए गए सुधार; वैधानिक रीति से किए गए सुधार; एवं प्रवृत्तियों में बदलाव लाकर किए गए सुधार।

'बिहार लोकसेवाओं के अधिकार अधिनियम' को हम वैधानिक रीति से किए गए सुधार की श्रेणी में रख सकते हैं।

प्रशासनिक तंत्र की नौकरशाही प्रवृत्ति प्रशासनिक व्यवस्था को ठीक करने में सबसे बड़ी समस्याओं में से एक थी, जिसके प्रभावी उपचार के रूप में यह क़ानून सामने आया जो न सिर्फ नागरिकों के लिए सेवाओं की सुव्यवस्था तय करती है बल्कि, नागरिकों को उस प्रक्रिया का भागीदार भी बनाती है। इस कानून में नागरिकों के जीवन से जुड़े कुछ आवश्यक क्षेत्रों को इस कानून के दायरे में लाया गया, जैसे - जाति प्रमाणपत्र, आवासीय प्रमाणपत्र, जमीन के रजिस्ट्रेशन से जुड़ी प्रक्रिया इत्यादि। ऐसे कुल 52 विषयों को इसके अंतर्गत रखा गया। वैसे तो मध्यप्रदेश सेवा का अधिकार कानून पास करने वाला प्रथम राज्य है पर, बिहार सूचना और संचार तकनीक (आई.सी.टी.) का इस कानून के अनुपालन में उपयोग करने के मामले में विशेष है। तकनीक के प्रभावी क्रियान्वयन तथा इस कानून के सुचारू और प्रभावी उपयोग के लिए बिहार सरकार ने ब्रिटेन के 'अंतर्राष्ट्रीय विकास विभाग' का सहयोग लिया जो इस कानून के प्रति सरकार की गंभीरता को प्रदर्शित करता है।

2005 में बिहार में नई सरकार पूरी व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन के वायदे के साथ सत्ता में आई थी। सत्ता सँभालने के बाद उस ओर काफ़ी तत्परता के साथ प्रयास प्रारंभ हुए, जिसमें 'बिहार शासन और प्रशानिक सुधार कार्यक्रम' के तहत 'बिहार प्रशासनिक सुधार मिशन' 2008 में लॉन्च किया गया। ब्रिटेन की विकासशील देशों से संबंधित 'अंतर्राष्ट्रीय विकास विभाग' (दी डिपार्ट्मन्ट फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट) इस मिशन के लिए धन और आवश्यक संसाधन जुटाया गया। तकनीक का उपयोग कर सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में भी सरकारी

सेवाओं को प्रभावी रूप से पहुँचाने का प्रयास किया गया जिससे भ्रष्टाचार रहित, पारदर्शी और जवाबदेह व्यवस्था का निर्माण किया जा सके। बिहार सरकार का आर.टी.पी.एस. एक्ट में 'सुचना और संचार प्रौद्योगिकी' (आई.सी.टी.) का प्रयोग बहुत सकारात्मक रहा। इसे आगे चल कर कई राज्यों ने अपनाया क्योंकि, यह मानवीय हस्तक्षेप को अत्यंत सीमित करता है जिससे, भ्रष्टाचार की संभावना नगण्य हो जाती है और व्यवस्था पारदर्शी बनाने में भी इससे बहुत सहायता होती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, 10 विभागों से 52 विषयों को इसके अंतर्गत रखा गया था । सीमित संसाधनों के बाद भी आज बिहार में पंचायत स्तर पर सरकार द्वारा प्रशिक्षित लोग 'जन सेवा केंद्रों' के माध्यम से लोगों को न सिर्फ इन सेवाओं को उपलब्ध कराने में सहभागी हैं बल्कि इससे स्वरोजगार का भी एक प्रभावी मार्ग प्रशस्त हुआ है। 'बिहार लोकसेवाओं के अधिकार अधिनियम' के लागू होने के लगभग चार वर्ष बाद 2015 में 'लोक शिकायत निवारण अधिनियम' लाया गया। यह पूरे देश में लोकसेवाओं के सफल क्रियान्वयन की दिशा में (आर.टी.पी.एस.) के बाद) पहला और प्रभावी कदम था। 'लोकसेवाओं के अधिकार कानून' से यह विस्तार की दृष्टि में अलग था अर्थात 'लोक शिकायत निवारण अधिनियम' के दायरे में सरकार द्वारा संचालित सभी सेवावों को पारदर्शिता तथा निश्चित समयावधि में पूरा न होने की परिस्थिति में समर्थ अधिकारी के समक्ष शिकायत तथा निश्चित समय में उस शिकायत के निवारण की व्यवस्था के लिए कानून बनाया गया था। जैसा कि ऊपर कहा कि इसके अंतर्गत वो सारी सार्वजनिक सेवाएं आती थी जो 'लोकसेवाओं के अधिकार कानून' के अंतर्गत समाहित नहीं थी। सुशासन सूचकांक 2020-21 के लिए बिहार को 18 प्रमुख राज्यों में (ग्रुप अ-ब में सम्मिलित रुप से) 15वां स्थान मिला है और ग्रुप ब में बिहार छठे स्थान पर है। (गुड गवर्नेंस इंडेक्स, 2021) भारत सरकार के प्रशासनिक सुधार और लोकशिकायत विभाग (डी.ए.आर.पी.जी.) द्वारा जारी सूचकांक, विभिन्न क्षेत्रों में शासन की स्थिति को दर्शाता है। प्रमुख क्षेत्रों में सुधार, उल्लेखनीय रूप से सार्वजनिक अवसंरचना और उपयोगिता क्षेत्र में बिहार ने महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्य से आगे निकलते हुए प्रथम स्थान को प्राप्त किया है। बिहार उन पहले दो राज्यों में शामिल है जिसमें सबसे पहले से 'सेवा का अधिकार अधिनियम' लागू है, साथ ही बिहार उल्लेखनीय रूप से पहला राज्य है जिसने लोक-शिकायत निवारण कानून को भी आगे बढ़ कर अपनाया है। महामारी के दौरान भी इस सूचकांक में राज्य की सकारात्मक वृद्धि दर सरकार के बेहतर शासन के प्रयासों को दर्शाती है।

बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में लोकसेवाओं से संबंधित विषयों पर अधिकार आधारित कानून की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि, ये सभी प्रकार के मानवाधिकारों तथा संवैधानिक अधिकारों की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। पूरे विश्व में न्यूनाधिक मात्रा में प्रशासनिक जटिलता, भ्रष्टाचार, अपारदर्शिता तथा गैरजवाबदेही के कारण से आमलोगों का जीवन त्रस्त रहता है, फिर बिहार जैसे पिछड़े राज्यों जहां की अधिकांश आबादी सरकारी या गैरसरकारी सभी सर्वेक्षणों में अत्यंत अशिक्षित और गरीब है

वहां भ्रष्टाचार मुक्त तथा जवाबदेह प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता और बढ़ जाती है। यही वजह है जिससे नीति-निर्माताओं के समक्ष ये चुनौती होती है कि प्रशासनिक अव्यवस्था की समस्या का समाधान ढूंढा जाए। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में नीति निर्माताओं का चयन जनता करती है और उन्हें सत्ता में बने रहने के लिए बार-बार जनता के पास जाना होता है, पर धरातल पर उन नीतियों का क्रियान्वयन प्रशासनिक तंत्र के हाथ में होता है। लोकसेवाओं का सुचारू संचालन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि, जनता का दैनंदिन सामना अपने द्वारा चुने प्रतिनिधियों से नहीं बल्कि प्रशासनिक अधिकारियों-कर्मचारियों से होता है। जनता की लोकतांत्रिक व्यवस्था में आस्था तथा सरकार में विश्वास बना रहे इसके लिए दुरूस्त प्रशासनिक व्यवस्था का होना अति आवश्यक है।

विकसित देशों में व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक तथा निजी दोनों तरह की सेवाएं उपलब्ध हैं हालांकि नागरिकों के उच्च शिक्षा स्तर तथा सक्षमता के कारण सरकार के लिए चुनौती बनी रहती है क्योंकि, नागरिकों को दोनों प्रकार की सेवाओं में से किसी को भी चुनने का विकल्प होता है पर, बिहार जैसे राज्यों में तो पूरी निर्भरता सरकारी सेवाओं पर है। अगर सरकारें विकास की सकारात्मक सोच रखें भी तो सक्षम प्रशासनिक तंत्र के अभाव में क्रियान्वयन संभव नहीं है जिससे सत्ता से जाने का भी खतरा बढ़ जाएगा। ऐसी चुनौतियों से निपटने के लिए समय-समय पर व्यापक चिंतन मंथन से नए सुधारों को अपनाया जाना आवश्यक है। अधिकार आधारित कानूनों का जन्म भी इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ, जिसे आगे चलकर बिहार सहित पुरे देश में अपनाया गया।

वैश्विक बाजार के विस्तार के लिए विश्व बैंक जैसी संस्थाएं सुशासन (मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स) के विचार को न सिर्फ बड़ी मजबूती से उठा रही थीं बल्कि विकासशील देशों को उन मानकों पर खरे उतरने के लिए मजबूर किया जाने लगा जिससे बड़ी पूंजीवादी शक्तियों को विस्तार में आसानी हो। यह भी स्पष्ट है कि वैश्विक संस्थाओं द्वारा सुशासन के जो मानक तय किए जा रहे थे, उनसे किसी भी विकासशील देश में रहने वाले आम लोगों को पहले से ज्यादा सुविधाएं मिलने की उम्मीद थी।

बिहार में 'बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम' का आगमन तथा राज्य के सरकारी सेवाओं में 'सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी' का व्यापक प्रयोग एक साथ हुआ है। गांव-गांव तक इंटरनेट की उपलब्धता ने सूचना तकनीक के प्रभाव को मजबूत बना दिया है पर, इस कानून का वह प्रभाव नहीं दिख रहा जो इससे उम्मीद की जा रही थी। ये देखा जा रहा है कि सार्वजानिक कार्यालयों में आम लोगों के लिए अपने कार्य का समाधान मिलना कुछ आसान अवश्य हुआ है। निजी क्षेत्र की कंपनियों या कौशलयुक्त लोगों को सर्विस प्लस से जोड़ने से लोगों के बहुत सारे सरकारी कार्य बिना दफ्तर के चक्कर काटे अपने आसपास 'जनसेवा केंद्र' के माध्यम से संभव हो जा रहे हैं। इससे बड़ी आबादी जो तकनीकी रूप से सक्षम नहीं हैं, उन्हें आसानी होती है तथा आम लोग इससे भी थोड़े खुश होते हैं कि उन्हें बार-बार थोड़े कम पैसे में बिना सरकारी कार्यालयों की दौड़ लगाए विश्वसनीयता से काम हो

जा रहे हैं। सुशासन की अवधारणा को लेकर जिसके अंतर्गत जवाबदेही, पारदर्शिता तथा न्याय का अंतिम व्यक्ति तक वितरण जैसे मानदंडों को प्राप्त करने के लिए अधिकार आधारित कानून बनाने का विचार आया था। बिहार सरकार के आंकड़ों में इस कानून का प्रदर्शन उम्दा है, अब तक जितने आवेदन लोगों द्वारा इस कानून के अंतर्गत दिए गए तथा उनके सफलता पूर्वक निष्पादन का विवरण वेबसाइट (बिहार लोक सेवा नियमावली, 2011) पर उपलब्ध हैं।

नीचे 4 अक्टूबर 2024 तक के उपलब्ध आंकड़े हैं जिसे आठ वर्गों में बांटा गया है जो निम्न हैं :

प्राप्त	प्रदत्त	समय पर प्रदत्त	देरी से प्रदत्त
148802760	129756964	110407170	19349794
अस्वीकृत	प्रक्रियाधीन	समय पर प्रक्रियाधीन	देरी से प्रक्रियाधीन
17607447	1438349	1413765	24584

उपरोक्त आंकत्ते सही हैं पर जमीनी सच्चाई इससे भिन्न है। वहां तक के सारे कार्य आसानी से संपन्न हो जाते हैं जहां तक आवेदनकर्ता स्वयं डिजिटली सक्षम होते हैं तथा ऑनलाइन व्यवस्था ठीक काम कर रही होती है, पर जहां मामला सरकारी कार्यालय में मानवीय दखल के अंतर्गत आता है वहां फिर नागरिकों के कार्य सामान्यत: भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाते हैं।

निष्कर्ष

सार्वजनिक सेवाओं के लिए बने 'अधिकार आधारित कानून' की सफलता के लिए आवश्यक है कि सेवा प्रदाता अर्थात सरकार व्यवस्था को सशक्त, संवेदनशील, पारदर्शी तथा जवाबदेह बनाए। इस कानून का सकारात्मक प्रभाव व्यवस्था के निचले स्तर तक अवश्य पहुंच गया है, परंतु उतना नहीं जितना कि इस कानून से अपेक्षाएं थीं। तकनीक का उपयोग आज की शासन व्यवस्था को बहुत सरल बना सकती है और इसका उपयोग भी बिहार सरकार ने बढ़ चढ़कर शुरू किया है परंतु, केवल इसके प्रतीकात्मक प्रयोग से सूरत नहीं बदलेगी। प्रतीकात्मक इसलिए कहा कि हम अक्सर सरकारी कार्यालयों में अति अल्प मात्रा में इसका प्रयोग देखते हैं। साथ ही कौशलयुक्त मानव संसाधन का भी घोर अभाव दिखता है। इन सब संसाधनों की उपस्थिति हो भी जाए कहीं तो हम पाते हैं कि छोटे-छोटे कारणों को गिनाकर लोगों का कार्य रोक दिया जाता है, जबकि इस कानून में समय पर सुविधा उपलब्ध कराने का प्रावधान है। चूँकि अंतिम निर्णय लेने का अधिकार कर्मचारियों को ही दिया गया है जिसका अक्सर दुरुपयोग किया जाता है। भ्रष्टाचारजनित धन का प्रवाह नीचे से ऊपर तक होता है इसलिए ऊपर के अधिकारी भी कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं करते। इस भीषण समस्या के निपटारे के लिए समय-समय पर प्रभावी लेखा-परीक्षा की आवश्यकता है। जनता की तथा

जन-प्रतिनिधियों की प्रतिक्रिया को भी लेखा-परीक्षा में शामिल करने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे निचले स्तर पर कर्मचारियों में जवाबदेही बढ़े।

ऐसी समस्याओं का क्षणिक और त्वरित समाधान संभव नहीं, इसके लिए सतत प्रयास की आवश्यकता है। सरकार सामान्यत: संचार माध्यमों पर ऐसे कानूनों का प्रचार करके अपने दायित्वों को पूरा मान लेती है, इसका परिणाम यह होता है कि ज्यादातर लोगों को ऐसे कानूनों के बारे में पता ही नहीं होता, अगर पता भी है तो केवल यह कि अब गांव से भी कुछ काम हो जाता है जनसेवा केंद्र के माध्यम से। लेकिन वहां से भी जब सरकारी कार्यालयों में किसी साधारण कारण को बता कर कार्य रोक दिया जाता है तो लोग अंत में कुछ पैसा देकर अपना काम करवाते हैं। इस प्रकार बदलाव यही दिखता है कि भ्रष्टाचार का विकेंद्रीकरण हुआ है, भ्रष्टाचार मिटा नहीं है। इस कानून द्वारा जिन सेवाओं को निर्धारित समय के अंदर उपलब्ध करने को निर्देशित किया गया, जैसे - जाति प्रमाणपत्र, आवासीय प्रमाणपत्र, आय प्रमाणपत्र इत्यादि, लोग उससे कम समय में तथा आसानी से अन्य माध्यमों से ऐसे प्रमाण पत्रों को बनवा लेने के आदि रहे हैं। सीधे-सीधे कहें तो रिश्वत देकर ज्यादा आराम से लोगों के काम हो जाते हैं। कई स्तरों पर अस्पष्टता, बेवजह के प्रमाण-पत्रों की लंबी और अस्पष्ट सूची तथा कार्यालय में अंतिम निर्णय में कर्मचारियों के मनमाने व्यवहार के कारण, अन्य संभव उपाय देखते ही लोग आसान विकल्प की ओर चल पड़ते हैं। बिहार जैसे पिछड़े राज्य में एकल-खिड़की प्रणाली की आवश्यकता कब से बताई जा रही है, पर उस पर अमल करने के लिए न तो सरकार द्वारा पर्याप्त संसाधन का आवंटन दिखाई देता है न ही इच्छाशक्ति। बेवजह के प्रमाणपत्रों की मांग कम कर देने तथा सही जानकारी लोगों तक उपलब्ध करा देने मात्र से सीमित संसाधन में भी कार्यालयों में काफ़ी सुधार संभव है। आज भी कई तरह के प्रमाण पत्र व्यवस्था में एक साथ चल रहे हैं। ऐसा लगता है कि सरकारी तंत्र असमंजस की स्थिति बनाए रखना चाहता है जिससे कार्यालयों की आमदनी का स्रोत बना रहे। नागरिकों और सरकारी महकमे के बीच की दूरी कम करने में यह कानून जितना कारगर हो सकता था उतना होता दिख नहीं रहा। बिहार जैसे राज्य में अन्य सेवाओं को इस कानून के दायरे में लाने की बात तो दूर, जो सेवायें इसके दायरे में हैं वे भी सुचारू रूप से कार्य करें तो बड़ी बात होगी। ऑनलाइन सेवाओं की हालत बहुत चिंताजनक है जो कि इस कानून को प्रभावी बनाने का सबसे कारगर हथियार था।

आई.सी.टी. का अधिकतम उपयोग करने का उद्देश्य ही यह था कि मानवीय हस्तक्षेप को सीमित किया जाए क्योंकि निचले स्तर पर जहाँ लोग अशिक्षित और कमजोर हैं वहाँ यह भ्रष्टाचार पर नजर रखेगी जिससे पारदर्शी और जवाबदेह व्यवस्था कायम की जा सकेगी पर, ब्लॉक स्तर पर कार्यालयों की स्थिति अत्यंत दयनीय है, आई.सी.टी. द्वारा संचालन तो दूर सामान्य प्रशिक्षित कर्मचारियों का भी बहुत अभाव है। कार्यालयों पर जाकर भी कार्य संपन्न करवाना अत्यंत कठिन है क्योंकि कार्यालय द्वारा आवेदन स्वीकार ही नहीं किया जाता है। ज्यादातर जगहों पर स्थायी कर्मचारी ही नहीं हैं जिससे इस कानून को विस्तार मिल

सके क्योंकि, अगर आप आगे शिकायत लेकर जायेंगे भी तो कर्मचारी के अभाव का हवाला देकर मामले को समाप्त कर दिया जाता है और ये स्वभाविक भी है कि शिकायत की जितनी लंबी प्रक्रिया है उतने समय तक लगे रहना सामान्य नागरिक के लिए संभव नहीं होता।

बड़ी विफलता यह हुई कि अच्छी सोच और प्रभावी शक्ति होने के बावजूद यह कानून नागरिकों में वह भरोसा कायम नहीं कर सका तथा सरकारी कार्यालयों के कार्य व्यवहार में वह परिवर्तन नहीं ला सका जो इसका प्रमुख लक्ष्य था।

नागरिक भी ऐसे कानूनों की असफलता में बहुत योगदान करते हैं, आसान रास्ता निकालने के प्रयास में रहते हैं भले नियम कानून को दरकिनार करना पड़े, पर उनका लक्ष्य अपना काम करवाना होता है। नागरिकों को ऐसी प्रवृत्तियों से बचना होगा, किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सुचारू संचालन वहाँ के नागरिकों पर बहुत हद तक निर्भर करता है। गरीबी और अशिक्षा का हवाला देकर नागरिकों की जिम्मेदारी न तय किये जाने की प्रवृत्ति से बचना होगा क्योंकि संस्थाओं के सुचारू संचालन में अगर नागरिकों को भागीदार नहीं बनायी जाती तब तक हम बेहतर व्यवस्था की उम्मीद नहीं कर सकते क्योंकि, कितनी भी ईमानदार और सक्षम सरकार हो उसकी क्षमताओं की सीमाएं हैं अत: निगरानी का दायित्त्व जब वही उठाने लगे जिसके लिए यह व्यवस्था है तब निश्चित रूप से ज्यादा सकारात्मक परिणाम निकलेंगे। सरकार और नागरिकों के बेहतर सामंजस्य से ही व्यवस्था को पारदर्शी और जवाबदेह बनाया जा सकता है। सेवा के लाभार्थी अर्थात आम नागरिक में भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता होनी चाहिए। हमने व्यक्तिगत अनुभव में पाया कि ज्यादातर लोग ऐसे किसी कानून से परिचित ही नहीं हैं, जबकि यह अपने आप में नया विचार है जो सरकारी सेवाओं के क्रियान्वयन को नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह नौकरशाही के प्रति पुराना भाव जो लोगों के मानस में बैठ गया है उसे चुनौती देता है। लोकतान्त्रिक देशों में किसी भी कानून की सफलता और असफलता वहाँ के नागरिकों पर बहुत हद तक निर्भर करता है, क्योंकि अगर केवल कानून द्वारा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाया जा सकता तो अब तक ऐसे कानून बना दिए गए होते। सुधार नागरिक और सरकार दोनों के सम्यक प्रयास से ही संभव है। पर लोकतांत्रिक व्यवस्था में हम जनता को ज्यादा दोष नहीं दे सकते वह भी जहां की विशाल आबादी अशिक्षित हो। ऐसे में सरकार की ही जवाबदेही है कि वह व्यवस्था को दुरुस्त करे।

तमाम असफलताओं के बावजूद कुछ सकारात्मक पक्ष भी अवश्य हैं, सबसे प्रमुख ये कि बिहार जैसे राज्य जहाँ गरीबी उच्च स्तर पर है, साक्षरता निम्न स्तर पर है, स्वास्थ्य सेवायें बदहाल है नागरिक अपनी अधिकांश जरूरतों के लिए सरकार पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से निर्भर करते हैं, जहाँ आज भी लोग अधिकारियों को माई-बाप कहते आसानी से पाए जाते हैं और किसी तरह हाथ-पैर जोड़कर अपना काम करा लेने को एक उपलब्धि मानते हैं, ऐसी स्थिति में 'सेवाओं का अधिकार-आधारित कानून' प्रशासनिक सुधार की ऐसी पद्धति है जो निश्चित रूप से उम्मीद की एक किरण है। लेकिन साथ ही यह चिंतनीय विषय है कि यह

कानून जो अपनी प्रकृति में बिल्कुल नई शक्ति और ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता से संपन्न था, अबतक आशा के अनुरूप परिणाम नहीं दे पाया है। सरकारी सेवाओं की कार्यशैली में जो परिवर्तन आए हैं उनमें सूचना क्रांति, सोशल-मीडिया का प्रभाव तथा सरकार द्वारा किए गए अन्य प्रयासों के सामने इस कानून का योगदान अपेक्षाकृत कम दिखता है।

संदर्भ सूची

ऑस्टिन, जी.(1999). *द इंडियन कांस्टीट्यूशन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यूएसए

बोवोर्णवाथन, बी. (2010). मिनोब्रुक 4 इन 2028 : फ्रॉम अमेरिकन मिनोब्रुक टू ग्लोबल मिनोब्रुक. *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू,* 70, एस 64- एस 68. http://www.jstor.org/stable/40984099

बिहार राइट टू पब्लिक सर्विस एक्ट, (2011).

बिहार शासन और प्रशानिक सुधार कार्यक्रम, गेहन मुखर्जी इनोवेशंस फॉर सक्सेसफुल सोसाइटीज. (एन.डी.)

बिहार लोक सेवा नियमावली. (2011) Http://Rtps.bihar.gov.in/Rtps/Act/Rules.pdf; गवर्नमेंट ऑफ बिहार.

https://successfulsocieties.princeton.edu/sites/g/files/toruqf5601/files/Policy_Note_ID115.pdf

केडेन, जी.ई. (2017). *एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म्स* (पी.पी. 145-156). राउटलेज (ओरिजिनल वर्क पब्लिश्ड 1970).

सिटीजन चार्टर - हिस्टोरिकल बैकग्राउंड। डिपार्टमेंट ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म्स - पब्लिक ग्रीवांसेज। एम. ओ.पी.पी.। इंडिया, एन.डी.)

गवर्नेंस- द वर्ल्ड बैंक्स एक्सपीरिएंस. डेवलपमेंट इन प्रैक्टिस वॉशिंगटन, डी.सी.रू वर्ल्ड बैंक ग्रुप. http://documents.worldbank.org/curated/en/711471468765285964/Governance-the-World-Banks-experience

गुड गवर्नेंस इंडेक्स. (2021). Https://Darpg.gov.in/Sites/Default/Files/GGI_2021.Pdf .

लेफ्टवीच, ए (1994ए). गवर्नेंस, द स्टेट एंड द पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपमेंट. *डेवलपमेंट एंड चेंज,* 25(2), 363-386. https://doi.org/10.1111/j.1467-7660.1994.tb00519.x

मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (एम.डी.जी.एस.) - वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन (डबल्यू.एच.ओ.)

रिग्स, एफ.डबल्यू. (1971ए). *फ्रंटियर्स ऑफ डेवलपमेंट* एडमिनिस्ट्रेशन (पी. 'इंट्रोडक्शन'). ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 45-57)
UGC-CARE (Group-I)

गुमशुदा व्यक्ति, उनके परिवार एवं कानून प्रवर्तन परिदृश्य : मध्य प्रदेश के संबंध में एक विश्लेषण

अयूब खान[*] एवं प्रदीप बौहरे[†]

सामान्यत: भारतीय कानून व्यवस्था में लापता होने को जघन्य अपराध नहीं समझा जाता और ऐसी घटनाओं को बहुत कम महत्व दिया जाता है। इस व्यवस्था में 'गुमशुदा' की अस्पष्ट परिभाषा के साथ समय पर गुमशुदा की वापसी का औचित्य तभी समझा जा सकता है जब कानून प्रवर्तन ऐजेंसियाँ उन व्यक्तियों से तथा उन परिवारों से सहानुभूति रखती हों जो अपने गुमशुदा परिजनों को ढूंढने में असमर्थ हैं, चाहे उनके परिवार का सदस्य किसी भी परिस्थिति में (सुविचारित या बिना सोचे-समझे) लापता हुआ हो। प्रस्तुत शोध पत्र गुमशुदा व्यक्तियों के पीछे छूटे परिवारों के करीबी सदस्यों पर पड़ने वाले मनोसामाजिक प्रभावों, उनकी आवश्यकताओं की एक व्यापक समझ विकसित करने के लिए मध्य प्रदेश के संदर्भ में किए गए अध्ययन पर आधारित है। इस अध्ययन

[*]प्रोफेसर समाजशास्त्र, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail: ayub3565@gmail.com
[†]सहायक प्राध्यापक, आजीवन शिक्षा प्रसार एवं समाज कार्य अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.). **E-mail: pradeepbohare.14@gmail.com**

के माध्यम से भारत में कानून प्रवर्तन परिदृश्य तथा व्यक्तियों के गुम होने के कारणों एवं परिस्थितियों को जानने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द - गुम होना, पुलिस व्यवस्था, मनोसामाजिक प्रभाव, गुमशुदा व्यक्ति।

प्रस्तावना (अवधारणात्मक ढांचा)

कोई भी खालीपन, कोई भी रिक्तता उन परिवारों की लाचारी से ज्यादा नहीं है जिनके परिजन गुमशुदा हैं। सामान्यत: भारतीय कानून व्यवस्था में लापता होने को जघन्य अपराध नहीं समझा जाता और ऐसी घटनाओं को बहुत कम महत्व दिया जाता है। इस व्यवस्था में 'गुमशुदा' की अस्पष्ट परिभाषा के साथ समय पर गुमशुदा की वापसी का औचित्य तभी समझा जा सकता है जब कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ उन व्यक्तियों तथा उन परिवारों से सहानुभूति रखती हों जो अपने गुमशुदा परिजनों को ढूंढने में असमर्थ हैं, चाहे उनके परिवार का सदस्य किसी भी परिस्थिति में लापता हुआ हो।

भारत में प्रतिवर्ष अनगिनत लोगों के लापता होने की घटनाएँ प्रकाश में आती है, जिनमें से कुछ व्यक्तियों का ढूंढा जा सकना तथा शेष का लापता रहना सामाजिक लक्षण दर्शाती है, क्योंकि उन अदृश्य पीड़ितों की नियति के संबंध में अनिश्चितता, उनको खोजने की प्रभावशाली व्यवस्था के अभाव के फलस्वरूप एक तो इनका रचनात्मक सामाजिक गतिविधियों में उपयोग नहीं हो पाता। दूसरे गुमशुदा व्यक्तियों के संबंध में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त आंकड़ों में अनेक कमियाँ होती हैं - वे खंडित तस्वीर प्रस्तुत करते हैं - तथा उन्हें वास्तविकता का सटीक संकेतक मानना संदेहास्पद है।

गुमशुदा को परिभाषित करना एक आसान घटना नहीं है। पहली नजर में यह इस इरादे का प्रश्न लगता है कि क्या व्यक्ति अपनी इच्छा से गुमशुदा होना चाहता था? इस परिभाषा में वे लोग शामिल नहीं है जो बिना किसी इरादे के लापता हैं या जिन्हें जबरदस्ती गायब किया गया है अथवा वे किसी मानसिक परिस्थिति के कारण कहीं चले गए हैं। तब प्रश्न यह उठता है कि क्या व्यक्ति का गुम होना एक चुनी हुई या आरोपित स्थिति है? कुछ गुमशुदा किसी भी तरह स्वयं को गुमशुदा नहीं समझते बल्कि वे इसे अन्य स्थान पर नया जीवन जीना मानते हैं। हालांकि ऐसे व्यक्ति उन लोगों की दृष्टि में गुमशुदा होते है जो उन्हें ढूंढ रहे हैं न कि उनकी अपनी दृष्टि में (रोजर्स, 1986) यदि गुमशुदा को परिभाषित करने का अधिकार उन परिवारों को दिया जाए जिन्हें वे छोड़कर जाते हैं, तो उसे वे रास्ते से भटके हुए व्यक्ति के रूप में परिभाषित करते हैं (पायनि, 1995)।

प्रस्तुत अध्ययन में गुम होने को संबंध विच्छेद के रूप में परिभाषित किया गया है, चाहे यह परिभाषा गुमशुदा व्यक्ति द्वारा की गई हो, गुमशुदा व्यक्ति के परिवार द्वारा या किसी अन्य के द्वारा तथा चाहे गुम होना सुविचारित हो या बिना सोचे-समझे। अत: यह अध्ययन गुम होने की उस संकल्पना की ओर अग्रसर करता है जिसमें सातत्य है, जिसमें सोच विचारकर

संबंध तोड़कर जाने वालों से लेकर बिना कुछ सोचे, बिना अपनी इच्छा के चले जाने वाले तक सम्मिलित हैं।

गुम होने के कारण एवं परिस्थितियाँ

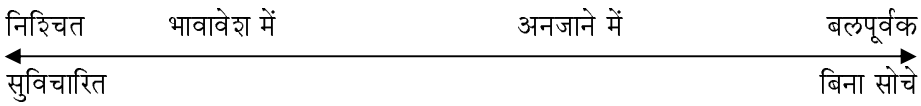

सातत्य के सुविचारित छोर पर वे प्रकरण हैं जिनमें व्यक्ति अपने परिवार को बिना कुछ बताए घर छोड़कर जाते हैं, उनके निर्णय से न केवल पारिवारिक उलझनें पैदा हो जाती है बल्कि आर्थिक परेशानियों के साथ मानसिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ भी बढ़ जाती हैं। सातत्य के दूसरे छोर पर वे लोग हैं जो अपनी इच्छा से नहीं जाते। इनमें वे असुरक्षित लोग शामिल होते हैं जो निरूद्देश्य घूमते रहते हैं, वे लोग भी जो मानसिक तौर पर कहीं खो गए हैं और वे भी जो घायल है; वे व्यक्ति जो अनजाने में अपने ठिकाने के बारे में नहीं बता सके या वे बच्चे जो माता-पिता से विच्छेद के कारण लावारिस हो गए हैं। इस किनारे पर सबसे आगे वे गुमशुदा हैं जिन्हें जबरन घर छोड़ने का मजबूर किया गया है।

निश्चित या अनजाने में लापता हुए लोगों में से वे लोग जो अपने संबंध से थोड़े अलग हो गए हैं, भावावेश की श्रेणी में आते हैं। यहाँ परिवार के लोगों से संबंधों में दरार स्पष्ट नहीं होती और न ही गुमशुदा व्यक्ति अथवा परिवार के किसी सदस्य के नियंत्रण में होती है। इस समूह में वे लोग आ सकते हैं जिनके ज्यादा बाहर रहने के कारण पारिवारिक संबंध कमजोर हो गए हैं या यह उनकी अनित्य जीवन शैली का परिणाम है।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में 'गुमशुदा' व्यक्ति उसे माना गया है जो बिना किसी बाध्यकारी वैधानिक आदेश के दूसरों की उचित प्रत्याशा तथा/अथवा उनके प्रति उत्तरदायित्वों से मुँह मोड़कर, अपहरण, परिवर्तित मनोदशा या स्वैच्छिक निर्णय के फलस्वरूप अपने निवास से लापता है तथा जिसकी कोई जानकारी परिवार अथवा कानून प्रवर्तन एजेंसियों के पास नहीं है और यदि जानकारी है तो वह असंवैधानिक निरोध में है। पिछले डेढ़ दशक में गुमशुदा को तलाशने के प्रयास और उनकी मॉनीटरिंग बढ़ी है, लेकिन यह कोशिश नाबालिग गुमशुदा के संबंध में दिखाई देती है, वयस्क गुमशुदा के बारे में प्रयास अभी भी गंभीर नहीं है तथा गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों के बारे में तो बिल्कुल नहीं।

अत: भारत में सम्पूर्ण वैधानिक ढांचे की पहचान करना तथा गुमशुदा व्यक्तियों के गुम होने के कारणों तथा परिस्थितियों को जानना आवश्यक है ताकि पीछे छूटे परिवारों के करीबी सदस्यों पर पड़ने वाले मनोसामाजिक प्रभावों, उनकी आवश्यकताओं की एक व्यापक समझ विकसित हो सके तथा इस समस्या से समुचित तरीके से निपटा जा सके।

संबंधित साहित्य समीक्षा

पोन्नायन (1992) द्वारा किया गया दिल्ली पुलिस प्रशासन की गुमशुदा व्यक्तियों को ढूंढने की प्रभावशाली व्यवस्था के अंतर्गत गठित मिसिंग पर्सन्स स्क्वाड का विश्लेषणात्मक अध्ययन संभवत: भारत में गुमशुदा व्यक्तियों से संबंधित पहला अध्ययन था। अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्षों में स्थानीय पुलिस में पंजीबद्ध गुमशुदा व्यक्तियों के प्रकरणों का निस्तारण तदर्थ तरीके से करना, स्क्वाड में पदस्थापना को पुलिसकर्मियों द्वारा दण्ड मानना, स्क्वाड को पुलिस की उपेक्षित इकाई समझना था, परिणामत: इच्छित लक्ष्य प्राप्ति कठिन था।

विश्व के विभिन्न देशों में गुमशुदा बच्चों तथा युवाओं पर कुछ अध्ययन अवश्य हुए हैं तथा हो रहे हैं जिनमें से अधिकांश भगोड़े बच्चों पर केन्द्रित हैं। भारत में गुमशुदा बच्चों तथा महिलाओं के अध्ययनों को गति उत्तर प्रदेश के निठारी कांड (2005-2006) के बाद मिली। निठारी कांड में 30 लापता बच्चों के साथ घटित वीभत्स घटना के बाद राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली द्वारा 'ट्रैफिकिंग इन वुमन एण्ड चिल्ड्रन इन इंडिया' विषय पर किए गए विस्तृत अध्ययन के अनुसार भारत में आश्चर्यजनक रूप से प्रत्येक वर्ष 45000 बच्चे लापता होते हैं, जिनमें से 11000 कभी नहीं मिलते। अत: अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि किस प्रकार न ढूंढ पाने वाले व्यक्तियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। अध्ययन से उजागर हुआ कि इन लापता व्यक्तियों को ढूंढने के अवसरों में निरंतर कमी के कारणों में कानून प्रवर्तन एजेंसियों में तालमेल का अभाव, संगठित गिरोह की संलिप्तता प्रमुख है (सेन एण्ड नायर, 2005)। गुमशुदा बच्चों पर किए गए अन्य महत्वपूर्ण अध्ययनों में चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन (2007) की 30 शहरों में 24×7 चलने वाली चाइल्डलाइन की नि:शुल्क दूरभाष सेवा पर प्राप्त फोन कॉल्स पर आधारित अध्ययन तथा बचपन बचाओ आंदोलन (2012) द्वारा सूचना के अधिकार आवेदनों के आधार पर संपादित अध्ययन हैं, जिनसे न केवल गुमशुदा बच्चों की समस्याओं से निपटने के कारणों एवं तरीकों की पहचानने में सहायता मिली बल्कि यह भी स्पष्ट हुआ कि गुमशुदा बच्चों के मामलों में कानून को व्याख्यायित करने तथा लागू करने के साथ-साथ प्रकरण की तफतीश की जिम्मेदारी पुलिस अधिकारी के ज्ञान तथा गुमशुदा बच्चे के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 1988 में पहली बार मिसिंग, एब्डक्ट, रन अवे एण्ड थ्रोन अवे चिल्ड्रन पर एक नेशनल इंसीडेंस स्टडी से गुमशुदा बच्चों से जुड़ी घटनाओं की व्यापक जानकारी एकत्र की गई जिसने इस समस्या को वैधानिक ढंग से समझने का आधार प्रस्तुत किया। निस्मार्ट-1 (पूर्व वर्णित) के अनुभव के 10 साल बाद 1998 में पुन: एक अध्ययन निस्मार्ट-2 का आयोजन यह जानने के लिए किया गया कि प्रत्येक वर्ष औसत कितने बच्चे गुम हो रहे हैं तथा गुमशुदगी के दौरान ऐसे बच्चों का क्या होता है, कितने युवा अपने घरों से भागे तथा पिछले वर्षों में कितने बच्चों या युवाओं का उनके परिवारों ने परित्याग किया। इन दोनों अध्ययनों से प्राप्त जानकारियाँ उन कारकों को पहचानने में मदद करती है जिनमें बच्चे गुमशुदा होने के सर्वाधिक खतरे में होते हैं (हैंसन, 2000)।

बीहल, मिशैल एवं वेड (2003) ने ब्रिटेन में गुमशुदगी से वापस लौटे व्यक्तियों के लापता होने के लिए उत्तरदायी अभिप्रेरकों तथा घर से लापता रहने पर उनके अनुभवों का अन्वेषण किया एवं यह स्पष्ट किया कि किन परिस्थितियों में गुमशुदा अपने घर वापस लौटता है और पीछे छूटे परिवार के सदस्यों से कैसे अपने संबंध पुनर्जीवित करता है।

गुमशुदा बच्चों तथा महिलाओं पर हुए अध्ययनों की तुलना में गुमशुदा वयस्कों एवं गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर शोध साहित्य की कमी है और जो कुछ अध्ययन हुए हैं उनमें भी गुमशुदा व्यक्तियों की जनांकिकीय विशेषताओं को जानने, गुम होने के प्रश्न को परिभाषित करने तथा गुमशुदा व्यक्तियों के प्रकार बताए गए हैं। ये समस्त अध्ययन पुलिस आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित हैं, चाहे वह हिर्शेल एण्ड लैब (1988) का अमेरिकन्स पर किया गया अध्ययन हो या हेन्डर्सन एवं अन्य (2000) का आस्ट्रेलिया में गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों तथा मित्रों पर किया गया अध्ययन।

हालांकि बॉस (2002, 2007) द्वारा गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर किए गए अध्ययनों से कुछ प्रासंगिक अवधारणाएँ विकसित हुईं। उसने ऐसे परिवारों के बारे में विस्तार से लिखा है जो 'अस्पष्ट हानि' भुगतते हैं। चाहे यह हानि परिवार के किसी सदस्य के अचानक गायब हो जाने की वजह से हो और पीछे छूटे परिवारों को यह तक न पता हो कि उसका प्रियजन जीवित भी है अथवा नहीं या ऐसे व्यक्ति के कारण जो शारीरिक रूप से उपस्थित हो लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से अनुपस्थित, भावनात्मक तथा ज्ञानात्मक रूप से अपने आसपास के लोगों के लिए अनुपलब्ध हो।

इंटरनेशनल कमेटी ऑफ द रेड क्रॉस, नेपाल (2009) ने नेपाल में हुए माओवादी राजद्रोह (13 फरवरी, 1996 से 21 नवंबर 2006 तक) के दौरान गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों के अध्ययन का निष्कर्ष था कि गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार तथा उनसे संबंधित व्यक्ति आर्थिक प्रभावों से उबरने के लिए संघर्ष कर रहे थे। वे अपने प्रियजन के लापता होने के भावनात्मक तनाव सहन कर रहे थे। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि उनके संबंधी जीवित हैं या उन्हें मार दिया गया। वे अनेक व्यावहारिक परेशानियों से जूझ रहे थे, जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के दैनिक जीवन को प्रभावित कर रही थीं।

पद्धतिशास्त्र

मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के 37 थानों में वर्ष 2007 से 2015 तक पंजीबद्ध समस्त गुमशुदा व्यक्तियों (जिनमें दस्तयाब तथा अदम दस्तयाब दोनों प्रकार के प्रकरण सम्मिलित हैं) के परिवारों को केन्द्र में रखकर किए गए वृहद अध्ययन का एक उद्देश्य गुम होने के कारणों और परिस्थितियों को जानना तथा कानून प्रवर्तन परिदृश्य का मूल्यांकन करना था। अध्ययन हेतु परिवारों का चयन स्तरीकृत दैव निदर्शन प्रविधि का प्रयोग कर किया गया तथा आधी-अधूरी जानकारी वाले, अस्पष्ट लेखन, अत्यधिक हल्की फोटोकॉपी तथा पुनरावृत्ति वाले प्रकरणों को हटाकर कुल 141 परिवार अध्ययन हेतु उपयुक्त पाए गए। चयनित परिवारों

के वयस्क सदस्यों से गहन साक्षात्कार किए गए, ये वे व्यक्ति थे जो गुमशुदा के प्रकरण से जुड़े थे और जिन्हें प्रकरण के समस्त पहलुओं की जानकारी थी। प्रस्तुत अध्ययन में इन्हें उत्तरदाता या मुखिया कहा गया है। यह सुनिश्चित करने के बाद कि अध्ययन प्रक्रिया चयनित परिवारों के किसी भी व्यक्ति के अधिकारों का हनन नहीं करेगी, तब उस व्यापक तथा संवेदनशील विषय के बारे में जानने के लिए अध्ययन से पूर्व, समस्त परिवारों के मुखियाओं से सहमति ले कर विश्वास दिलाया गया कि उनसे प्राप्त जानकारी गोपनीय रहेगी। उन्हें यह भी स्पष्ट किया गया कि वे अध्ययन के किसी भी स्तर पर स्वयं को अलग कर सकते हैं।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों के अध्ययन हेतु संकलित तथ्यों का अनुकूलतम उपयोग करने एवं अध्ययन में वांछित विश्वसनीयता और वैधता बनाए रखने के लिए (प्रभावकारी त्रिकोणमितीय संभावना को विस्तार देने हेतु) अर्द्ध-संरचनात्मक साक्षात्कार, पूरे परिवार के साथ एक साथ बातचीत तथा अर्द्ध-सहभागी अवलोकन विधियों को उपयोग में लाया गया। गुमशुदा व्यक्तियों के परिजनों के साथ कई-कई बार की बैठकों में बात की गई। किसी एक परिवार के व्यक्ति से बात का सिरा जहाँ छूट गया, वहाँ किसी परिवार के दूसरे व्यक्ति ने जोड़ दिया। इस तरह प्रस्तुत अध्ययन में गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की बात केवल एक परिवार की बात नहीं रह जाती बल्कि समस्त गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की बात बन जाती है। विषय को गहनता से समझने के लिए पुलिस प्रतिक्रिया संबंधी एक साक्षात्कार-दिग्दर्शिका का प्रयोग गुमशुदा व्यक्तियों का पता लगाने, तफ़तीश करने वाले पुलिसकर्मी से लेकर पुलिस अधिकारियों तक के साक्षात्कार में किया गया।

भारत में कानून प्रवर्तन परिदृश्य (गुमशुदा व्यक्ति एवं पुलिस व्यवस्था)

सामान्यत: किसी अपराध की तफ़तीश प्राथमिकी के पंजीयन के साथ आरंभ होती है। एफआईआर (प्रथम सूचना रिपोर्ट) पहले एक संज्ञेय अपराध का अनुमान होती है, परन्तु जब प्रकरण आपराधिक हो जाते हैं तब प्राथमिकी वास्तविक या विशिष्ट कानून की संबंधित धाराओं के तहत दर्ज की जाती है और तदनुसार पुलिस जाँच-पड़ताल शुरु करती है और तब एक व्यक्ति 'गुमशुदा' बन जाता है। जब घर से लापता व्यक्ति की जानकारी पुलिस स्टेशन में दी जाती है तब उसकी प्रविष्टि सामान्य डायरी में की जाती है, कोई एफआईआर पंजीबद्ध नहीं की जाती। हालांकि आंध्र प्रदेश जैसे भी राज्य हैं जहाँ ऐसे प्रकरणों में शून्य प्राथमिकी (ज़ीरो एफआईआर) दर्ज की जाती है। यहाँ शून्य प्राथमिकी का अर्थ बिना किसी अपराध क्रमांक के प्राथमिकी पंजीबद्ध करना है क्योंकि ऐसे प्रकरणों को अपराध नहीं माना जाता। इस प्रकार, शून्य प्राथमिकी तथा सामान्य रोजनामचा में प्रविष्टि दोनों में अग्रिम कार्यवाही या जाँच करने का तरीका समान होता है। पुलिस ऐसी सूचनाओं को पुलिस निरीक्षक (थाना प्रभारी) को देती है और वे इस सूचना को पुलिस अधीक्षक को भेज देते हैं। कभी-कभी पुलिस थाने एवं उनके प्रभारी ऐसी सूचनाएँ अन्य थानों को भी भेजते हैं। सतही स्तर पर, स्थानीय पुलिस अधिकारी गुमशुदा व्यक्तियों की उपलब्ध पहचान संबंधी जानकारी तथा फोटो प्रकाशनार्थ मीडिया में भी भेजते हैं।

'गुमशुदा' को तलाशने के अलग-अलग राज्यों के अपने स्वतंत्र तथा निश्चित तरीके हैं। दिल्ली में गुमशुदा प्रकरणों की जाँच-पड़ताल के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश है कि कम से कम इंस्पेक्टर स्तर के अधिकारी को 16 वर्ष से कम आयु के गुमशुदा प्रकरणों में त्वरित कार्यवाही करना चाहिए एवं एफआईआर की प्रति जल्द से जल्द अपराध शाखा के मिसिंग पर्सन्स स्क्वाड को भेजना चाहिए तथा लापता व्यक्ति का हुलिया, पहने गए कपड़ों, गुम होने का समय तथा स्थान सहित पूर्ण जानकारी के साथ वायरलेस संदेश सभी थानों में प्रेषित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार भारत के सभी पुलिस अधीक्षकों को भी यह संदेश प्राप्त होना चाहिए।

मुबंई महानगर में गुमशुदा की सूचना पुलिस नोटिस के द्वारा प्रसारित की जाती है। इस नोटिस में गुमशुदा व्यक्तियों के अलावा चोरी किए गए वाहन, पुलिस द्वारा ढूंढे गए वाहन तथा लावारिस लाशों संबंधी सूचनाएँ होती है। दिल्ली एवं मुंबई महानगर में गुमशुदा व्यक्तियों को ढूंढने के लिए रंगीन ह्यू एण्ड क्राई नोटिस (अनुसरण सूचना) भेजा जाता है जिसमें गुमशुदा की सम्पूर्ण जानकारी के साथ सूचना देने वाले को दिए जाने वाले इनाम का भी उल्लेख होता है।

सामान्यत: गुमशुदा व्यक्तियों की सूचनाएँ सभी जिलों/संभाग मुख्यालयों से राज्य के पुलिस मुख्यालय में स्थापित मिसिंग पर्सन्स ब्यूरो में भेजी जाती हैं, जो अक्सर राज्य पुलिस की सी.आई.डी. शाखा (अपराध अनुसंधान विभाग) होती है। यह शाखा इस सूचना को राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्डस ब्यूरो, नई दिल्ली को भेजती है जिसे ब्यूरो द्वारा वायरलैस से दूसरे राज्यों के पुलिस मुखियाओं को प्रसारित किया जाता है।

परिणाम

व्यक्तियों के गुम होने के कारण विविध होते हैं। भग्न परिवार तथा सामाजिक संबंधों का कमजोर होना, व्यक्तिगत कारण, संस्थागत कमियां आदि वे परिस्थितियाँ हैं जो किसी व्यक्ति के गुम होने में सहायक होती है। यद्यपि लापता होने में कई स्थानीय समस्याओं के भी प्रमाण मिलते हैं तथापि प्रस्तुत अध्ययन में गुम होने को संबंध-विच्छेद के रूप में परिभाषित किया गया है, चाहे यह संबंध विच्छेद सुविचारित हो या बिना सोचे-समझे।

तालिका 1

गुम होने के कारण एवं परिस्थितियाँ

(साक्षात्कार के समय मुखिया की प्रतिक्रिया पर आधारित)

कारण एवं परिस्थितियाँ	गुमशुदा व्यक्तियों की संख्या	
(अ) निश्चित	पुरुष	महिला
गृह कलह	09	10
प्रेम प्रसंग	-	20
बड़ा आदमी बनने के लिए	04	-
रोजगार की तलाश	13	-
मौज मस्ती	02	-

कारण एवं परिस्थितियाँ	गुमशुदा व्यक्तियों की संख्या	
कर्ज न चुका पाना/ व्यवसाय में नुकसान	10	-
आत्महत्या/गिरफ्तारी या सजा से बचने के लिए	01	01
	39 (50.00)	31 (49.22)
(ब) भावावेश में		
अवसाद/आक्रोश	09	06
घर से जाने के बाद फोन पर न लौटने की सूचना	04	07
	13 (16.67)	13 (20.63)
(स) अनजाने में		
बहला-फुसलाकर/गलतफ़हमी	08	09
धर्मांधता	-	01
दुर्घटना/चोट पहुंचाना	01	-
मंदबुद्धि/मनोविकार/डिमेंशिया	02	01
	11 (14.10)	11 (17.46)
(द) बलपूर्वक		
किसी अपराध का शिकार	12	08
अपहरण	03	-
	15 (19.23)	08 (12.69)
योग	78 (100.00)	63 (100.00)

स्रोत : प्राथमिक तथ्य
कोष्ठकों में लिखे अंक प्रतिशत दर्शाते हैं।

अध्ययन के समय परिवार के मुखिया (उत्तरदाता) द्वारा बताए गए गुम होने के कारणों में एक किनारे पर वे कारण थे जिनमें व्यक्ति सोच-विचार कर घर छोड़ते हैं, इन्हें प्रस्तुत विश्लेषण में 'निश्चित' कहा गया है। किसी तनाव, अवसाद या आक्रोश में घर से जाने वाले तथा जाने के बाद न लौटने की सूचना देने वाले निश्चितता की ओर अग्रसर गुमशुदा को विश्लेषण में 'भावावेश में' जाना कहा गया है। सातत्य के दूसरे किनारे पर बिना सोच-विचार के जाने वाले लोग हैं, जिन्हें अपनी इच्छा के विरूद्ध घर छोड़ना पड़ता है, इनमें वे लोग है जिन्हें बहला-फुसलाकर ले जाया गया या वे पता न बता पाने के कारण या दुर्घटनावश अपने परिवार से अलग हो गए थे, इन्हें विश्लेषण में 'अनजाने में' तथा सबसे किनारे पर वे लोग हैं जिन्हें जबरन घर छोड़ने पर मजबूर किया गया, उन्हें विश्लेषण में 'बलपूर्वक' गुम होने वालों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

तालिका से स्पष्ट है कि गुम होने के कारणों एवं परिस्थितियों में पुरुषों एवं महिलाओं में ज्यादा भेद नहीं है। अध्ययन हेतु उपयुक्त पाए गए 78 गुमशुदा पुरुषों में से निश्चित घर से जाने वाले 50.00 प्रतिशत, भावावेश में जाने वाले 16.67 प्रतिशत थे, जबकि अनजाने में घर से जाने वाले पुरुषों की संख्या 14.10 प्रतिशत एवं बलपूर्वक ले जाए गए व्यक्तियों की संख्या 19.23 प्रतिशत थी। पुरुषों द्वारा निश्चित घर छोड़ने के कारणों में रोजगार की तलाश, कारोबार में अचानक घाटा हो जाना तथा कर्ज न चुका पाना तथा माता-पिता,

पति-पत्नी एवं संतान के झगड़े से उपजा गृह क्लेश मुख्य कारण थे। बड़ा आदमी बनने का सपना पूरा करने, मौज-मस्ती के लिए तथा गिरफ्तारी या सजा से बचने के लिए या आत्महत्या करने के लिए लापता होने जैसे कारण नीचे पायदान पर थे। जबकि भावावेश में घर से जाने के कारणों में लम्बे समय से बाहर रहने के कारण उपजा आक्रोश या उनकी अनित्य जीवन शैली से उपजा अवसाद था। अनजाने में जाने के कारणों में बहला-फुसलाकर ले जाना या गलतफहमी में चला जाना मुख्य कारण था, अन्य कारणों में मंदबुद्धि/डिमेंशिया जैसे मनोविकार तथा दुर्घटना में शिकार होना थे, जबकि बलपूर्वक घर से अलग होने का मुख्य कारण किसी जघन्य अपराघ का शिकार होने का संदेह था तथा अपहरण दूसरा महत्वपूर्ण कारण था।

अध्ययन में शामिल 63 महिलाओं में से लगभग 50.00 प्रतिशत ने सोच विचार कर निश्चित रूप से घर त्यागा, भावावेश में घर छोड़कर जाने वाली महिलाओं की संख्या 20.63 प्रतिशत थी, जबकि अनजाने में 17.46 प्रतिशत महिलाओं को घर से जाना पड़ा तथा 12.69 प्रतिशत महिलाओं के मामले में जबरदस्ती या बहला-फुसलाकर मानव तस्करी जैसे गंभीर अपराध का शिकार होने के कारण परिवार से दूर जाना था। निश्चित रूप से गुम होने के कारणों में प्रेम प्रसंग तथा प्रेम विवाह करना मुख्य कारण था तथा गृह कलह दूसरा कारण था। भावावेश में जाने वाली महिलाओं ने घर से जाने के कोई निशान नहीं छोड़े थे और जाने के बाद वापस न आने का समाचार भिजवा दिया था। हालांकि इनके पास घर छोड़ने का एक विकल्प था, जिसके सहारे वे जीवन बिता सकती थीं तथापि उनका यह भरोसा असमंजस के धागों में उलझा तथा अस्पष्ट था। जबकि अनजाने में घर से जाने के कारणों में मानसिक अस्वस्थता तथा एक धार्मिक आश्रम के प्रति लगाव था तथा बलपुर्वक जाने के कारणों में मानव तस्करी मुख्य कारण थी।

विवेचना

परिजनों के घर-परिवार से लापता होने के कारण विविध एवं परिस्थितियाँ प्राय: जटिल होती है। अध्ययन से स्पष्ट था कि अधिकांश गुमशुदा पुरुषों एवं महिलाओं ने सोच-समझकर घर छोड़ा था, जिसके मूल कारणों में परिवार में संबंधों का बिखराव तथा समस्याओं से पलायन था। कुछ प्रकरणों में विवाह बंधन का टूटना घर से जाने का कारण था जिसकी उम्मीद भी थी, क्योंकि भारतीय परिवारों में यह एक सामान्य घटना है तथा भारतीय समाज में यह सामाजिक स्वीकृति है कि विवाह बंधन से दोनों में से कोई भी सदस्य संबंध तोड़कर जा सकता है। परन्तु जहाँ ऐसा संबंध विच्छेद गुमशुदा होने के लिए किया गया था, वहाँ पीछे छूटा साथी किंकर्तव्यविमूढ़ था। एक पत्नी ने सर्वेक्षण के दौरान बताया कि उसने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी कि उसका जीवनसाथी बिना वाजिब कारण के उसे छोड़कर लापता हो जाएगा।

कुछ माता-पिता पता लग जाने के बाद भी अपने बच्चों से मिलना नहीं चाहते थे, कुछ ने नए सिरे से जीवन शुरु किया था तो कुछ अपने पूर्व के अनुभवों को भूल नहीं पा रहे थे। कुछ युवाओं के साथ उनके माता-पिता/अभिभावकों का विरोध था। ये वो युवा थे जो कुछ सीखना या करना तो नहीं चाहते थे परन्तु अभिभावकों से स्वायत्तता की अपेक्षा करते थे। यद्यपि ऐसे संबंध विच्छेद में परिवार के सभी सदस्यों से संबंध नही टूटते क्योंकि पारिवारिक द्वंद्व में कई बार सभी सहयोगी नहीं होते। इस प्रकार माता-पिता से, जीवनसाथी से, बच्चों से अथवा भाई-बहनों से संबंध विच्छेद प्राय: नई शुरूआत की इच्छा होती है जो गंभीर तथा लंबे समय तक रहने वाली कठिनाइयों की सूचक होती है।

इसी प्रकार, जब तनाव उस बिन्दु तक पहुंच जाता है कि उसे सहन करना अत्यंत कठिन हो जाता है तब लोग लापता हो जाते हैं। यह तनाव सापेक्षिक होता है। कई बार इतनी समस्याएँ हो जाती है कि किसी व्यक्ति को एक ऐसे स्तर पर ले जाती है जहाँ वे बिना कोई निशान छोड़े अचानक गुमशुदा हो जाते हैं। इस प्रकार जाने के पीछे संबंधों को लेकर कठिनाइयाँ, रोजगार के साधन के अभाव और परिवार के जीवनयापन स्तर के बीच समन्वय स्थापित न कर पाने, कारोबार संबंधी परेशानियाँ या वित्तीय संकट होते हैं। एक पत्नी का कथन था कि उनका इस तरह से गायब हो जाना पूरी तरह से अप्रत्याशित था। वे परिवार के लोगों को कुछ बताते नहीं थे। हमें उनके व्यवहार से भी कभी नहीं लगा कि वे किसी मानसिक दबाव से गुजर रहे हैं। ये भी हो सकता है कि वे ये सोचकर हमसे अपना तनाव साझा नहीं करना चाहते हों कि परिवार की परेशानियाँ बढ़ सकती है और बिना कुछ बताए उन्होंने हम लोगों से दूर जाने का फैसला कर लिया हो।

हालांकि व्यवसाय में नुकसान या कर्ज न चुका पाने से उपजा तनाव कई बार व्यक्ति के संकट को इतना घनीभूत कर देता है कि व्यक्ति के पास सिवाय घर छोड़ने के कोई दूसरा विकल्प ही नहीं बचता है। एक परिवार के मुखिया ने बताया कि जवान बेटे के लापता हो जाने के बाद उसके सबसे घनिष्ठ मित्र ने बताया कि बेटा चार दिन से बहुत परेशान लग रहा था, स्पष्ट कुछ नहीं बता रहा था। बस यह कह रहा था कि उससे अपराध हो गया है, पुलिस उसे कभी भी गिरफ्तार कर सकती है। कह रहा था कि वो परिवार के सामने क्या मुँह दिखाएगा? लोगों को पता चलेगा तो वे क्या कहेंगे? अब लगता है, इसी अपराधबोध के कारण उसने घर छोड़ दिया। इसी तरह कई बार व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए भी गायब हो जाते हैं, परन्तु सुसाइड नोट के अभाव में यह स्पष्ट नहीं होता कि उसने आत्महत्या के लिए ही धर छोड़ा है। तथापि कई प्रकरणों में जहाँ लाश या अवशेष मिलते हैं तब सबसे सीधा स्पष्टीकरण आत्महत्या माना जाता है।

भावावेश में घर छोड़कर जाने वाले व्यक्ति प्राय: स्वयं को वास्तविक रूप से गुमशुदा नहीं मानते, क्योंकि इस प्रकार के मामलों में पारिवारिक संबंध पहले से ही खण्डित या कमजोर होते हैं, इसलिए वे परस्पर नहीं मिलते, यहां तक कि फोन पर भी नहीं। इस तरह घर से लापता हो जाना या संबंध न रखने का एक कारण वयस्क युवाओं की एक विशिष्ट

जीवनशैली है जो उनके किसी व्यसन अथवा/और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी होती है एवं उनकी यही अस्थिर जीवनशैली उन्हें परिवार से संबंध न रखने या दूर चले जाने के लिए प्रेरित करती है, जबकि ऐसे व्यक्तियों के परिवार उन्हें गुमशुदा समझते हैं।

अनजाने में लापता होने वाले व्यक्तियों में बच्चे-बूढ़े, मानसिक तथा शारीरिक रूप से अशक्त आदि होते हैं। परिस्थितिवश लापता हुए इन सभी व्यक्तियों को पुलिस अतिसंवेदनशील प्रकरण मानती है। बलपूर्वक घर से लापता रहने की घटनाएँ वयस्कों में दुर्लभ परन्तु बच्चों और युवाओं में अधिक देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में ऐसे प्रकरणों की संख्या निश्चय के साथ घर छोड़ने वालों के बाद सर्वाधिक थी। बच्चों तथा युवाओं के मामलों में अपहृत बच्चों को भीख मांगने के लिए धकेल दिया जाता है या बंधुआ मजदूर बना दिया जाता है, जबकि लड़कियों की नियति देह व्यापार होती है।

प्रस्तुत अध्ययन भारत के कानून प्रवर्तन तंत्र के महत्वपूर्ण घटक पुलिस तक ही सीमित है। गुमशुदा प्रकरणों में पुलिस की प्रतिक्रिया तब आरंभ होती है जब परिजन के शुरूआती प्रयास निष्फल हो जाते हैं। गुमशुदा प्रकरणों में सामान्यत: परिवार पहले कुछ घंटे गुमशुदा का इंतजार करता है, उसके बाद नाते-रिश्तेदारों और दोस्तों के यहां तलाश करता है। उसके बाद भी जब सफलता नहीं मिलती तो परिजन पुलिस थाने पहुंचकर गुमशुदा की सूचना देते हैं, तब पुलिस आरंभिक जानकारी दर्ज करने के बाद गुमशुदा की तलाश शुरू करती है।

गुमशुदा प्रकरण में पुलिस की प्रतिक्रिया वैसी नहीं होती जैसी अन्य संवेदनशील प्रकरणों में होती है क्योंकि प्रारंभिक स्तर पर गुमशुदगी को आपराधिक घटना मानना पुलिस के लिए कठिन होता है। प्राय: पुलिस गुमशुदा की उम्र के आधार पर जाँच शुरू करती है। यदि गुमशुदा नाबालिग होता है तो प्रकरण अपहरण की धाराओं के तहत पंजीबद्ध किया जाता है। यदि शंका गुमशुदा की खरीद-फरोख्त की होती है तो इस तरह के मामले 'एंटी ह्यूमन ट्रैफिकिंग सैल' को सौंप दिए जाते हैं। वयस्क गुमशुदा के मामले में एफआईआर दर्ज कर जाँच शुरू की जाती है। हालांकि ज्यादातर बालिग गुमशुदा के मामले में पुलिस की वैसी सक्रियता नहीं दिखाई देती जैसी उम्मीद गुमशुदा के परिजन करते हैं।

सर्वेक्षण के समय यह तथ्य प्रकाश में आया कि गुमशुदगी की कुछेक घटनाओं में न तो पुलिस द्वारा तफ़तीश की गई थी और न ही प्रकरण पंजीबद्ध किए गए थे। ऐसे गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार के लोग तथा संबंधी यहाँ से वहाँ दौड़-दौड़कर थक चुके थे और उनमें से अधिकांश ने अपने परिजन के लौटने की उम्मीद खो दी थी। कुछ प्रकरण ऐसे भी थे जिनमें परिवार के सदस्य गुमशुदगी के संबंधी सुराग भी दे रहे थे तो भी शिकायतें पुलिस थानों में रख ली गईं थीं, कोई कार्यवाही संपादित नहीं की गई थी।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि भले ही गुमशुदा संबंधी जानकारी राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्डस ब्यूरो द्वारा अन्य राज्यों के अधिकारियों तक पुलिस वायरलैस द्वारा प्रसारित कर दी गई हो, तथापि सूचना फैलने में लगने वाला समय एक बड़ी बाधा था। यह भी सही है कि गुमशुदा व्यक्तियों को तलाशना कानून प्रवर्तन के प्राथमिक क्षेत्रों में नहीं आता तथा गुमशुदा

व्यक्तियों संबंधी सूचनाओं को अनावश्यक देरी से प्रेषित किया जाता है और कार्यवाही में भी देरी की जाती है। अध्ययन में शामिल कुछ पुलिसकर्मियों ने बताया कि इन प्रकरणों की औपचारिक समीक्षा के बाद गहन समीक्षा के लिए सप्ताह में एक दिन निर्धारित है तथा लंबे समय से लापता व्यक्तियों के प्रकरणों की समीक्षा प्रत्येक तीन माह बाद की जाना आवश्यक है। दैनिक समीक्षा सब इंसपेक्टर द्वारा तथा गहन समीक्षा पुलिस अधीक्षक द्वारा किए जाने का प्रावधान है। जबकि वास्तविकता यह है कि पुलिस अधिकारियों द्वारा की जाने वाली साप्ताहिक, मासिक समीक्षा बैठकों में गुमशुदा तथा ढूंढ लिए गए व्यक्तियों की चर्चा तक नहीं की जाती। यहां तक कि पुलिस महानिरीक्षक द्वारा की जाने वाली वार्षिक अपराध समीक्षा में गुमशुदा प्रकरणों का उल्लेख तक नहीं होता। उनके परिवारों की दुर्दशा पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना तो दूर की बात है।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर पड़ने वाले प्रभाव

किसी भी व्यक्ति द्वारा सुविचारित या बिना सोचे-समझे घर छोड़ने के बाद उनके परिवार अनेक प्रकार के अनुभवों तथा प्रभावों का सामना करते है, जिसका विस्तार उनके परिवार के अन्य सदस्यों तक पहुंचता है और उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। परिवार के मुखियाओं (उत्तरदाताओं) ने बताया कि परिजन के लापता हो जाने से परिवार के कुछ लोगों के स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। अध्ययन में सम्मिलित ज्यादातर परिवारों की महिलाओं का स्वास्थ्य गंभीर रूप से प्रभावित हुआ था। किसी के पिता बीमार रहने लगे थे तो कुछ उत्तरदाता स्वयं या उनके परिजन गंभीर अवसाद में चले गए। किसी गुमशुदा की पत्नी बेसुध रहने लगी थी, वहीं एक माँ बेटे की याद में रोते-रोते अंधी हो गई थी। अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह भी बताया कि हर आहट पर अपने पति, भाई, बेटे या बेटी का रास्ता तकने वाली महिलाओं को जब उनकी उम्मीद पूरी होते नहीं दिखाई दीं तो वे याद्दाश्त खोने लगीं थीं - चिड़चिड़ी हो गईं थीं - अवसाद में चली गईं थीं।

परिजन के घर छोड़कर जाने के बाद परिवार के मुखिया का रोजगार सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। वे परिवार सर्वाधिक प्रभावित हुए जिनके परिजन लंबे समय से लापता थे और तलाश करने की जिम्मेदारी उसी पर थी जो परिवार के लिए जीवनयापन के संसाधन जुटा रहा था। ऐसे परिवार भी सामने आए जिनके कमाने वाले ही गुमशुदा हो गए थे। ऐसे परिवारों में आर्थिक संसाधन जुटाने की जिम्मेदारी गृहणियों या बच्चों पर आ गई थी, उनकी जमापूंजी गुमशुदा को ढूंढने में खर्च हो गई थी और उन्हें कर्ज भी लेना पड़ा था।

परिवार के बच्चों की पढ़ाई पर मिला-जुला प्रभाव देखा गया, कुछ परिवारों के बच्चों की पढ़ाई प्रभावित हुई तो कुछ अभिभावकों ने बच्चों की पढ़ाई पर प्रभाव नहीं पड़ने दिया। बच्चों की पढ़ाई पर पड़ने वाले प्रभाव का सापेक्षिक संबंध बच्चे का गुमशुदा से लगाव तथा परिवार के पास उपलब्ध आर्थिक संसाधन से था। कुछ परिवार ऐसे भी थे जिनमें विवाह योग्य युवक-युवतियों का विवाह देरी से हुआ था या उनके ससुराल वालों ने सगाई तोड़ दी थी।

निष्कर्ष

परिवार के किसी भी सदस्य का घर से लापता होना चाहे सोच-समझकर हो या भावावेश में, अनजाने में हो या बलपूर्वक ले जाया गया हो, उसके पीछे छूटे परिवारों पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तार उसके करीबी सदस्यों तक जाता है तथा उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। अध्ययन से स्पष्ट था कि ऐसे परिवारों को मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक स्तर पर सतत संघर्षरत रहना पड़ रहा था, उनकी बातचीत की भाषा ही उनकी आवश्यकताएँ बन गई थीं। अधिकतर परिवार उन परिस्थितियों की बात कर रहे थे जिनमें परिजन घर छोड़कर गया था और उनसे नित नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही थीं। वे न्याय और क्षतिपूर्ति की बात कम कर रहे थे तथा उन्हें कानून प्रवर्तन अधिकरणों से किसी प्रकार की कोई उम्मीद नहीं थी।

संदर्भ सूची

बीहल, एन., मिशैल, एफ. एण्ड वेड जे. (2003) *लॉस्ट फ्रॉम व्यू: मिसिंग पर्सन्स इन द यूके*, ब्रिस्टॉल: द पॉलिसी प्रेस.

बॉस, पॉलिन (2002) ऐम्बीगुअस लॉस: वर्किंग विथ फैमिलीज ऑफ द मिसिंग, *फैमिली प्रोसेस*, वॉल्यूम 41, पेज 14-17

बॉस, पॉलिन (2007) ऐम्बीगुअस लॉस थ्योरी: चैलेन्जेज फॉर स्कॉलर्स एण्ड प्रैक्टिसनर्स, *फैमिली रिलेशंस*, वॉल्यूम 56, पेज 105-111

बचपन बचाओ आंदोलन (2012) *मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ इंडिया*, नई दिल्ली: बी बी ए

चाइल्ड लाइन इंडिया फाउंडेशन (2007) *मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ इंडिया: इश्यूज एण्ड अप्रोचेज-ए चाइल्डलाइन पर्सपेक्टिव*, मुंबई: सीआईएफ

इण्टरनेशनल कमेटी ऑफ द रेड क्रॉस (2009) *फैमिलीज ऑफ मिसिंग पर्सन्स इन नेपाल : ए स्टडी ऑफ देयर नीड्स*, आई सी आर सी, काठमांडु, अप्रैल.

हिर्शेल, जे.डी. एण्ड लैब, एस.पी. (1988) 'हू इज मिसिंग? द रियलिटीज़ ऑफ द मिसिंग पर्सन्स प्रॉब्लम' *जर्नल ऑफ क्रिमिनल जस्टिस*, वॉल्यूम 16, पेज 35-45.

हेन्डर्सन, एम., हेन्डर्सन, पी. एण्ड कियरनन, सी. (2000) *मिसिंग पर्सन्स: इन्सीडेंसस, इश्यूज एण्ड इम्पैक्ट्स, ट्रैन्डस एण्ड इश्यूज इन क्राइम एण्ड क्रिमिनल जस्टिस नं. 144*, केनबरा, आस्ट्रेलिया: आस्ट्रेलियन इंस्टीट्यूट ऑफ क्रिमिनोलॉजी, पेज 1-6.

हैंसन, एल. (2000) सैकंड कॉम्परिहेंसिव स्टडी ऑफ मिसिंग चिल्ड्रन, *जुवनाइल जस्टिस बुलैटिन*, अप्रैल

पायनि, एम. (1995) 'अन्डरस्टैंडिंग 'गोईंग मिसिंग'.: इश्यूज फॉर सोशल वर्क एण्ड सोशल सर्विसस', *ब्रिटिश जर्नल ऑफ सोशल वर्क*, वॉल्यूम 25, पृ. 333-48

पोन्नायन, एन. (1992) एन एनालिटीकल स्टडी ऑफ द मिसिंग पर्सन्स स्क्वाड ऑफ देहली पुलिस एडमिनिस्ट्रेशन *(अनपब्लिश्ड पी-एच.डी. थीसिस)*, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़

रोजर्स, सी. (1986) *ट्रेसिंग मिसिंग पर्सन्स: एन इन्ट्रोडक्सन टू एजेंसीज, मैथड्स एण्ड सोर्सेस इन इंग्लैंड एण्ड वेल्स*, मैनचेस्टर : मैनचेस्टर यूनीवर्सिटी प्रेस.

सेन, शंकर एण्ड नायर, पी.एम. (2005) *ट्रेफिकिंग इन वुमन एण्ड चिल्ड्रन इन इंडिया*, नई दिल्ली: ऑरिएण्ट लौंगमैन

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 58-72)
UGC-CARE (Group-I)

उत्तर प्रदेश की थारू जनजातीय संस्कृति : निरंतरता एवं परिवर्तन

विमल कुमार लहरी*

मानव सभ्यता की यात्रा में मनुष्य ने अपनी दिन प्रतिदिन की भौतिक-अभौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो कुछ भी गढ़ा, वस्तुतः वही उसकी संस्कृति है। एक सभ्य समाज अपनी संस्कृति, परम्परा एवं जीवन से निरन्तर तादात्म्य बनाए रखता है। जनजातीय समाज जिस प्रकार के भौगोलिक वातावरण में रहता आया है उसके अंतर्गत उसने अपनी संस्कृति, परम्परा एवं प्रकृति तत्वों को सहज रूप से सहेजा है। इस संस्कृति संरक्षण के बीच से ही उनकी सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, जो उनकी विशिष्ट पहचान को भी निर्धारित करती है, स्थापित होती है। वर्तमान वैश्वीकरण एवं संचार के युग में थारू जनजाति के लोग भी अपनी स्थानीयता से आगे बढ़कर वृहद् मुख्यधारा के समाज से जुड़ने में सक्षम हुए हैं। इस कारण इनकी सामाजिक संरचना में परिवर्तन से कुछ सांस्कृतिक तत्वों का विलोपन तो कुछेक नए तत्वों का समायोजन घटित हुआ है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य में निवासित थारू जनजाति के सांस्कृतिक तत्वों की निरंतरता एवं उनमें घटित परिवर्तनों को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail: vimalk.lahari1@bhu.ac.in

बीज शब्द - निरंतरता, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, पहचान, वैश्वीकरण, विलोचन, सांस्कृतिक संक्रमण, कृत्रिमता।

परिचय एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

जनजाति शब्द अंग्रेजी के ट्राइब शब्द का हिंदी अनुवाद माना जाता है जिसकी उत्पत्ति स्वयं ट्रायंगल अर्थात त्रिभुज से मानी गई गई। त्रिभुज तीन अंगों को दर्शाता है। पश्चिमी दुनिया में साथ ही साथ हमारे देश में भी जनजाति का जो अर्थ वर्तमान में प्रचलित है उससे इतर अर्थ प्राचीन समय में प्रचलित था। माना जाता है 'नवपाषाण युग में मानव स्थायी ग्रामवासी बने। अब विभिन्न झुंड के लोग स्थायी रूप से किसी न किसी स्थान पर रहने लगे। फिर एक ही झुंड के लोग कई गांवों में जाकर रहने लगे। लेकिन वे सभी लोग एक आम नाम से जाने जाने लगे। इस तरह जनजाति का निर्माण हुआ' (पाण्डेय, 2007)। जनजाति कई जिलों के सम्मिलित रूप से निर्मित एक उच्च राजनीतिक संस्था का प्रतीक थी जिसके माध्यम से किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र विशेष के निवासियों पर नियंत्रण रखा जाता था। निश्चित निवास स्थान से निवासियों यथा जनजातियों का भौगोलिक परिचय होता था। हमारे यहाँ देखा जाए तो यद्यपि भारत कबीले के नाम पर भारत नाम पड़ा ऐसा माना जाता है किन्तु वर्तमान में भी कई स्थानों के नाम वहां निवासरत जनजातियों के नाम पर ही हैं यथा मिजो जनजातियों के नाम पर मिजोरम, नागों के नाम पर नागालैंड एवं त्रिपुरी जनजातियों के नाम पर त्रिपुरा आदि। इसी प्रकार का उदाहरण संथाल परगना से भी समझना चाहिए जो वहां निवासित संथाल जनजातियों से प्रेरित है। इससे इतर दक्षिण में विस्तृत गोंड जनजातियों के नाम पर गोंडवाना लैण्ड बहुप्रचलित क्षेत्र के रूप में जाना जाता है।

सामान्य पश्चिमी विद्वानों एवं भारत के विषय में आधिकारिक रूप से लिखने वाले लेखकों ने जनजाति से तात्पर्य एक निश्चित भौगोलिक सीमा के अंतर्गत निवास करने वाले मानव समूह से लिया है किन्तु विभिन्न अंतर्देशीय व्यापारियों, धर्मगुरुओं, ब्रिटिश प्रशासकों एवं अन्य विषय विशेषज्ञों के द्वारा सामान्य ट्राइब के स्थान पर इससे मिलते जुलते शब्दों को प्रयोग में लाया गया यथा नेटिव, प्रिमिटिव, सिंपल पीपल, लिटिल कम्युनिटी आदि। इनके साथ ही मानवशास्त्रीय साहित्य में हंटिंग ट्राइब, गैदरिंग ट्राइब, एग्रीकल्चर ट्राइब आदि जैसे शब्द मिलते हैं जो जनजातियों के पेशे से संदर्भित होते हैं। इसी प्रकार जब जनजातीय समाज को इकाई मानकर देखा जाता है तब समाजगत विशेषताओं के आधार पर पैट्रिलिनियल ट्राइब, मैट्रिलिनियल ट्राइब, क्रिश्चियन ट्राइब, नॉन-क्रिश्चियन ट्राइब, हिंदुआइज्ड ट्राइब, नॉन-हिंदुआइज्ड ट्राइब, इस्लामाइज्ड ट्राइब जैसे शब्द देखने को मिलते हैं। इन सभी शब्दों से इतर भारतीय सन्दर्भ में स्थानीय मानवशास्त्रीयों के द्वारा ट्राइब शब्द के समानांतर हिंदी में जनजाति, आदिवासी, वनवासी एवं आदिम जैसे शब्दों का प्रयोग बहुतायत मिलता है। इसी भांति भारतीय धर्मग्रंथों में स्थानीय वन्य निवासियों के लिए दास, दस्यु, शुद्र, असुर, कपि,

अनार्य आदि जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है किन्तु धार्मिक साहित्य में आदिवासी या जनजाति शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है।

हमारे देश की जनजाति विषयक विस्तृत एवं वर्गीकृत सूचना प्राप्ति का सर्वप्रथम प्रयास अंग्रेजों के द्वारा किया गया जिसके अंतर्गत सर्वप्रथम 1891 की जनगणना में भारतीय लोगों का सर्वप्रथम व्यवसाय आधारित वर्गीकरण किया गया तथा कृषक-चरवाहा जातियों के तहत ही वन्यजाति के नाम से उपशीर्षक के अंतर्गत इन्हें शामिल किया जिनकी संख्या तत्कालीन समय में लगभग एक करोड़ साठ लाख पाई गयी थी। इसी भांति 1901 की जनसँख्या गणना में इन्हें प्रकृतिवादी, 1921 की जनसँख्या रिपोर्ट में पहाड़ी-वन्य जनजाति तथा 1931 में आदिम जनजाति नाम दिया गया। सन 1941 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें ट्राइब (जनजाति) के रूप में पहचान प्राप्त हुई। पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार जनजाति एक ऐसा मानव समूह अथवा नृजातीय समूह है जो एक निश्चित सीमा के भीतर रहता है तथा जिसकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं अन्य से भिन्न होती हैं। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए मानवशास्त्री वैरियर एल्विन ने हमारे देश में जनजातियों के समुचित विकास एवं उनकी संस्कृति के सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए 'पृथकतावादी नेशनल पार्क थ्योरी' को दिया जिसका घुर्ये जैसे भारतीय समाज वैज्ञानिकों ने यह कह कर विरोध किया कि भारतीय जनजातीय समूह हमसे भिन्न नहीं बल्कि पिछड़े हुए हिन्दू ही हैं। अंग्रेजों ने प्रशासनिक दृष्टिकोण से यहाँ की कुछ जनजातियों को हेडहंटिंग ट्राइब, क्रिमिनल ट्राइब तथा सजा प्राप्त जनजातियों को एक्स-कम्युनिकेटेड ट्राइब के नाम से पुकारा।

भारतीय संविधान में जनजातियों को परिभाषित करने हेतु कोई निश्चित मापदंड नहीं हैं तथापि प्रशासनिक कार्य व्यवहार की दृष्टि से अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 342 में वे समुदाय जो केन्द्रीय सरकार के अनुशंसा के आधार पर भारत के राष्ट्रपति के द्वारा सम्मिलित किए गए हैं अनुसूचित जनजाति माने जाएँगे। सर्वप्रथम अनुसूचित जनजातियों की सूची 1950 में राज्यवार अधिसूचित की गयी तदुपरांत अनेक बार इस सूची में संशोधन हुआ जिसके उपरान्त वर्तमान में 533 के लगभग अनुसूचित जनजातीय समुदाय सूचीबद्ध हैं।

भारत की संसद देश के किसी भी राज्य अथवा केन्द्रशासित प्रदेश के किसी जनजातीय समुदाय को अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल कर सकती है अथवा सूची से बाहर करने की शक्ति रखती है। भारत में किसी भी जनजातीय समुदाय को अनुसूचित जनजाति की सूची में सम्मिलित होने के लिए निम्नलिखित मापदंडों की पूर्ति करना आवश्यक होता है-

1. किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र पर पारंपरिक अधिकार
2. विशिष्ट संस्कृति- भाषा, प्रथा, परंपरा, विश्वास, कला तथा दस्तकारी
3. आदिम अर्थव्यवस्था के आधार पर जीवनयापन
4. शैक्षणिक एवं तकनीकी विकास की कमी

भारतीय संविधान में प्रयुक्त अनुसूचित जनजाति शब्द के संबंध में संविधान सभा में वाद-विवाद भी हुआ था। जयपाल सिंह ने अनुसूचित जनजाति शब्द के स्थान पर आदिवासी शब्द के प्रयोग का पक्ष रखा किन्तु संविधान सभा द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया। संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस विषयक स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि "आदिवासी एक सामान्य अर्थ है, यह किसी भी आरंभिक समुदाय का प्रतीक है। इसका कोई वैधानिक विधिक अर्थ नहीं है दूसरी ओर अनुसूचित जनजाति शब्द का एक निश्चित अर्थ है"। इस प्रकार हमारे देश में जनजातियों के लिए संवैधानिक नाम 'अनुसूचित जनजाति' का प्रयोग होना आरंभ हुआ। इस तरह देखा जाए तो "भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता विविधता में एकता है। यहाँ पर विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। न केवल धर्म बल्कि विभिन्न जातियों, जनजातियों और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के लोग मिलजुलकर भारतीय समाज का निर्माण करते हैं। भारत में एक तरफ लगभग 16 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग रहते हैं, तो दूसरी तरफ 8.6 प्रतिशत जनजातियों के सदस्य निवास करते हैं" (दोषी एवं जैन, 2022)। 8.6 प्रतिशत जनजातियों में थारू जनजाति समुदाय का भी प्रतिनिधित्व है जो अपनी एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान रखता है एवं अपनी एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत के साथ एक लंबी यात्रा से अद्यतन गतिमान है।

साहित्य समीक्षा

अटल, योगेश एवं सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह (2011) की पुस्तक 'आदिवासी भारत' विविध जनजातीय समुदाय का तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में लेखकों ने आदिवासी भारत के परिचयात्मक विश्लेषण के साथ-साथ आदिवासियों की बदलती जनसंख्यात्मक स्थिति का भी विश्लेषण किया है। पुस्तक थारु, टोडा एवं खस जनजातियों की जीवन संस्कृति को भी उल्लेखित करती है। लेखकों द्वारा इस पुस्तक का योगदान हिंदी भाषी छात्रों के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में है। मीणा, हरिराम (2021) की पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' जिसमें आदिवासियों की यात्रा, स्वतंत्रता संग्राम में योगदान, उनकी संस्कृति, उनके विस्थापन की समस्या के साथ अन्य ज्वलंत मुद्दों की गंभीर विवेचना की गयी है। इसका चौथा भाग आदिवासी साहित्य एवं मीडिया बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपादेय भी है। थोरात, सुखदेव (2017) की पुस्तक 'भारत में दलित एक समान नियत की तलाश' दलितों की एक मुकम्मल तस्वीर प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक जहां एक तरफ दलितों की विभिन्न क्षेत्रों में भागीदारी सुनिश्चित ना होना दिखाती है तो वहीं दूसरी तरफ भागीदारी के लिए उपाय भी सुझाती है। श्रीवास्तव, एस.के. (2011) की पुस्तक 'द थारुज-ए स्टडी इन कल्चरल डायनामिक्स' थारू समुदाय का एक व्यापक नृवंशविज्ञानी अध्ययन है। यह अध्ययन अच्छी गुणवत्ता के दो साल के मूल क्षेत्र कार्य पर आधारित है और मानवशास्त्रीय ज्ञान में एक सराहनीय वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है, लेखक ने थारू संस्कृति के मुख्य पहलुओं की पड़ताल की है। हसन, अमीर (1993) ने अपनी पुस्तक 'अफेयर्स ऑफ एन इंडियन ट्राइब द स्टोरी ऑफ माई थारू

रिलेटिव्स' में थारूओं के सभी पहलुओं उनकी जीवन शैली, सामाजिक प्रोफाइल के बारे में बताया गया है, प्रेम जीवन, संगीत और साहित्य, विश्व विचार, धर्म, जंगल, व्यवसाय, अर्थव्यवस्था आदि में उनके संबंध को भी स्पष्ट किया है। प्रवीर, राकेश (2004) की पुस्तक 'थारू जनजाति' कुल 9 अध्यायों में विभक्त है। यह पुस्तक थारू जनजाति की उत्पत्ति एवं विकास से लेकर उनकी उपशाखाएं,पर्व, उत्सव, त्यौहार, देवी-देवता एवं उनकी सांस्कृतिक पहचान के साथ संघर्ष आदि सभी पक्षों का तथ्यपरक वर्णन प्रस्तुत करती है। नम्रता कुमारी (2020) की पुस्तक 'थारू लोक कला की विरासत' थारू जनजातीय पर एक प्रमाणित दस्तावेज है जो उनके जीवन संस्कृति के सभी पक्षों का तथ्यपरक उल्लेख प्रस्तुत करती है। बबीता (2023) की पुस्तक 'थारू एवं बुक्सा जनजाति की कला और संस्कृति' कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। थारू एवं बुक्सा जनजाति की जीवन संस्कृति के सभी पक्षों को यह पुस्तक समाहित करती है।

थारु जनजाति-उत्पत्ति एवं विकास : अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य

थारू जनजातियों की उत्पत्ति एवं उनके देश के विभिन्न भागों में विस्तार विषयक अनेक मत प्राप्त होते हैं। थारुओं में मौजूद वृद्धों के अनुसार वे राजस्थान के थार क्षेत्र से ही सभी जगह गए और वहीं बस गए किन्तु इस मत को हिमालय के तराई क्षेत्र में बसे बौद्धिक रूप से जागरूक थारू नहीं स्वीकारते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि उनके पूर्वज चित्तौड़ से पृथ्वीराज चौहान के साथ भाग कर जंगलों में बसे थे फिर कालान्तर में धीरे-धीरे पूर्वी क्षेत्रों में आकार बस गए। मातृका प्रसाद कोइराला के अनुसार शब्दगत आधार पर थारू शब्द की व्युत्पत्ति 'स्थविर' शब्द से हुई है क्योंकि थारुओं में इसका उच्चारण थोर/थारू ही होता है। मान्यता ऐसी भी है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद धम्म संघ दो शाखाओं में विभाजित हो गया था महासंघवादी एवं स्थविरवादी जिनमें से गौतम बुद्ध के वंशज शाक्यों ने स्थविरवाद को स्वीकार कर लिया जिन्हें कालांतर में स्थविरवादी थारू कहा जाने लगा। इस मत की पुष्टि जनकलाल शर्मा एवं धर्मराज थापा भी करते हैं और थारूओं को शाक्यों का अवशेष मानते हैं जिनमें वो स्थविरवादी परम्परा के तत्व प्रचलित पाते हैं। वर्तमान में भी थारूओं में गौतम बुद्ध को थारू बालक मानने वालों की संख्या बहुतायत है जिससे उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है। एस.के. श्रीवास्तव का मानना है कि "थारु एक मिश्रित मंगोल जाति है जो राजपूत और नेपालियों के अंतर्जातीय विवाहों की उत्पत्ति कही जाती है" (श्रीवास्तव, 2010)। एस.के. श्रीवास्तव के इस तथ्य पर भी भ्रांति बनी हुई है।

अवधेश्वर अरुण थारूओं की पूर्व में विस्तार विषयक मत रखते हुए कहते हैं कि थारू जो कि भारत के मूल निवासी है आर्य जाति से पराजित होने के उपरांत पश्चिम से पूर्व की और बढ़ते गए और हिमालय की तलहटी में उत्तरप्रदेश एवं बिहार राज्य में बस गए। स्थानीय निवासियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध - रक्तमिश्रण की वजह से इनमें अनेक उपशाखाएँ बन गई इस प्रकार थारू जनजातियाँ वर्तमान में एक जाति की बजाए जातियों का

समूह बन चुकी है और वर्तमान रूप मिश्रित रूप है ना कि मौलिक (प्रवीर, 2004)। जाति निर्माण की प्रक्रिया में संस्कृतिकरण आदि की वजह से ये अपनी मौलिक भाषा संस्कृति को भूलकर नव स्थानीय भाषा-संस्कृति को ही व्यवहार में लाने लगे। बिहार के पश्चिम चम्पारण के थरुहट कहे जाने वाले क्षेत्र में थारुओं की कुल 32 उपजातियां हैं। इनमें कोचिला, खस, लालपुरिया, सोलरिया, राना मर्दानिया, कडरिया, मोरंगिया, राजहटिया, रौतार, सुनाहो, चितौनिया, मकोरा, दांग, वर्दिया, लामपुछवा, दोनवार, मलियोर, चौधरी, सिंह, राय, पंजियार आदि प्रमुख हैं। थारूओं के विषय में वर्णित दन्त कथाओं एवं मानव वैज्ञानिक खोजों के उपरांत भी विद्वान उनकी उत्पत्ति, विकास एवं विस्तार क्रम के विषय में एकमत नहीं हो पाए हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य थारू जनजातीय संस्कृति की प्राचीनता एवं निरंतरता के बीच उनकी वैचारिकी, गैर-बराबरी, पृथक धर्म, नृजातीयता, प्रजाति पहचान, वर्ण, पहनावा, भोजन, विवाह, संपत्ति, वधू मूल्य आदि से जुड़े पक्षों का तथ्यपरक विश्लेषण करना है। इसके साथ ही इसमें महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका, सरकारी व गैर-सरकारी योजनाओं के प्रभाव से उनकी जीवन शैली में आए बदलाव तथा बदलती अस्मिता एवं पहचान का अध्ययन किया गया है।

शोध प्रश्न

क्या थारू जनजातियों की मान्यताएँ एवं परंपरा अपनी यात्रा में कमजोर पड़ी हैं एवं आधुनिक मूल्यों के प्रभाव स्वरूप उसकी निरंतरता प्रभावित हुई है? क्या थारू जनजातियों में सामाजिक परिवर्तन की एक राष्ट्रीय प्रक्रिया चल रही है? क्या आज थारू जनजाति समुदाय एकाधिक संस्कृति पर जोर देने लगा है?

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तावित शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य है। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश में थारू जनजाति बड़ी जनसंख्या में निवासरत है।

शोध प्रविधि

समग्र एवं न्यादर्श का चयन

वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश में थारू जनजाति की जनसंख्या 105536 है। जो प्रस्तुत शोध आलेख के समग्र के रूप में है। समग्र के रूप में उत्तर प्रदेश के महाराजगंज जनपद के विविध क्षेत्रों में निवासित थारू जनजाति को सम्मिलित किया गया है। इन क्षेत्रों का विवरण इस प्रकार है - 1. नौतनवां, 2. सोनौली, 3. बिशनपुरवा, 4. पीपराटोला, 5.भगतपुरवा, 6. तरैनी,

7. सेखुवानी, 8. निचलौल, 9. डगरुपुर, 10. दोगहरा, 11. सोनहवां, 12. महुआ, 13. पीपरहिया 14. परसामली।

महराजगंज जनपद के उपरोक्त प्रत्येक क्षेत्रों से 3 युवा पुरुषों, 3 युवा महिलाओं के साथ 3 वृद्ध पुरुषो एवं 3 वृद्ध महिलाओं का चयन दैव निदर्शन की सोद्देश्यपूर्ण प्रणाली द्वारा किया गया है। अत: कुल 168 उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत शोध आलेख को पूर्ण किया गया है।

प्रस्तुत शोध आलेख अनुभवजन्य पद्धति पर आधारित है जिसके अन्तर्गत अन्वेषणात्मक एवं वर्णानात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है। यथासंभव सहभागी अवलोकन को भी प्रयोग में लाया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से तथ्यों का संकलन किया गया है। उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

शोध पत्र की नीति निर्माण एवं सामाज में उपादेयता

थारू जनजाति में हो रहे व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों ने उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को नई दिशा प्रदान की है, जिसके अनुरूप सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों को नीतियां बनानी होंगी। इनके शिक्षा के बढ़ते स्तर ने इस समुदाय को सरकारी नौकरियों एवं अन्य विभिन्न पेशेवर क्षेत्रों की ओर इन्हें उन्मुख किया है, जिससे इनके लिए विशेष प्रावधानों और अवसरों का सृजन आवश्यक है जिससे कि वे अपनी योग्यता-दक्षता के आधार पर सम्मानजनक जीवनयापन कर सकें। उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा आदिवासी समूह होने के कारण थारू जनजाति विकास नीतियों में एक महत्वपूर्ण संदर्भ बन सकती है, क्योंकि यह समुदाय कर्तव्यनिष्ठ, परिश्रमी तथा सांस्कृतिक रूप से भी समृद्ध है। इनके विकास से न केवल सामाजिक समरसता को बल मिलेगा अपितु सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण भी होगा। अत: अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष थारू जनजाति के सर्वांगीण विकास हेतु समावेशी एवं सटीक नीतियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

थारू संस्कृति : निरंतरता एवं परिवर्तन

देखा जाय तो "अनुसूचित जनजाति सामूहिक जीवन शैली का द्योतक है। अत: जनजाति लोग सदैव अपने ही लोगों के बीच रहने को प्रधानता देते हैं जिससे जनजातीय मूल्य एवं संस्कृति यथावत बनी रहे जैसे, स्वाभिमान और सच्चाई जैसे गुण उनकी स्वाभाविक प्रकृति है वैसे ही सांस्कृतिक विरासत उनकी पीढ़ीजनित पूंजी है जो सदा से संजोकर रखी है और जिसको वे किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहते" (मीणा, 2019)। लेकिन आज हम देखें तो "भारत की जनजातियाँ अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के सन्दर्भ में विभिन्न अवस्थाओं में हैं। कुछ जनजातियाँ हिन्दूकरण या ईसाई धर्म स्वीकार कर या किसी अन्य राह द्वारा परिवर्तित हुई है। कुछ जनजातियाँ संक्रमण अवस्था में है, और कुछ बहुत हद

तक अपनी परम्परात्मक जीवन प्रणाली को अपनाए हुए हैं। परिवर्तन के ये परिवेश बताते हैं कि भारत की जनजातियों में विकास की प्रक्रिया असमान रही है" (शर्मा, 2010)।

किसी भी जातीय समाज की संस्कृति को उसकी ऐतिहासिक-सामाजिक पृष्ठभूमि के आईने में ही देखकर समझा जा सकता है। वर्तमान में दुनिया का लगभग प्रत्येक आदिवासी या मुख्यधारा का समाज सामाजिक-आर्थिक विकास के विभिन्न अवस्थाओं में है जहाँ न केवल सांस्कृतिक संक्रमण की अवस्था उत्पन्न हो गयी है बल्कि अधुनातन एवं पुरातन व्यवस्थाओं में चुनाव का द्वंद्व भी प्रत्यक्ष है। अध्ययनगत थारू जनजातीय समाज भी विश्वव्यापी इन घटनाओं से अछूता नहीं रह गया है बल्कि सांस्कृतिक संक्रमण के फलस्वरूप कुछ बाहरी मूल्यों-रीतियों-परम्पराओं को स्वीकारने के साथ अपने समाज के कुछ मूल्यों को त्यागा भी है जो वर्तमान में अप्रासंगिक हो गए हैं। थारूओं की लोक संकृति को उनमें प्रचलित विश्वास, रीति रिवाज एवं प्रचलित मौखिक साहित्य में देखा जा सकता है। आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के फलस्वरूप आधुनिक एवं पश्चिमी मूल्यों की आंधी में भी इन्होने अपने दिन प्रतिदिन के जीवन की शुरुआत से लेकर रात्रि विश्राम तक को अपनी संस्कृति के दायरे में ही व्यवस्थित रखा हुआ है, जो उनके घर-आँगन की बनावट, खेत-खलिहान की फसलों, इनके साज-शृंगार, नृत्य-संगीत, पर्व-त्यौहार आदि में महसूस किया जा सकता है। इनके जीवन के विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीत इनकी सदियों पुरानी जीवन यात्रा को समाहित किए हुए इनके जीवन इतिहास को प्रकट करती हैं। इनमें इनका संघर्ष, जीत एवं हार छुपी है। थारुओं का समृद्ध लोकसाहित्य है, जिसमें लोकगीतों की प्रधानता है। इन गीतों में व्याप्त भावगत समृद्धि और अभिव्यक्तिगत सुन्दरता के कारण ये गीत किसी भी आमजन को अनायास ही आकृष्ठ करते हैं। थारुओं में प्रचलित लोकगीतों में विरहिनी, झमण-झुमर, रासधारी, पूर्वी, रोपनी के गीत, सोहर, विवाह-गीत, वसंत-गीत, चइता-घाटो, बारहमासा एवं चचरा-पल्झावन आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा इनमें प्रचलित लोकनृत्य झमटा, झूमर आदि भी काफी प्रसिद्ध हैं। थारू संस्कृति की सुन्दर झलक उनके घर-आंगन की सजावट-बनावट, महिलाओं के श्रृंगार तथा उनकी कलाओं आदि में मिलती है। थारुओं की वेष-भूषा और रहन-सहन में इनकी संस्कृति मुखरित होती है।

थारू समुदाय : लोकगीत एवं नृत्य

प्रकृति के बीच रचे-बसे थारुओं का सम्पूर्ण जीवन सांस्कृतिक विशेषताओं से परिपूर्ण है। यही इनकी पहचान भी है जो इन्हें अन्य समाज-समुदाय से अलग विशिष्टता प्रदान करती है। थरुहट क्षेत्र में हल चलाते समय, खासकर बरसात के मौसम में, पुरुष अत्यंत रस ले-ले कर बिरहिनी गीत गाते हैं। जब आसमान में बादल घिरे हों, क्षितिज की ओर से घटाओं का पहाड़ ऊपर की ओर उठता आ रहा हो और बरसाती हवा लहर मार रही हो तो ऐसे समय जब थारू हलवाहे बिरहिनी गीतों में अपने उल्लास को उड़ेल कर गाना प्रारंभ करते हैं तो वातावरण में एक अजीब मादकता फैल जाती है। इसी भांति थारू महिलाएं 'झमण' गीत गाती

हैं। इन्हें समूह में ही गाया जाता है। महिलाएं गोलाकार रूप में खड़ी हो घूम-घूमकर, आगे-पीछे कदमताल करती हुई झूम-झूम कर ताली बजा कर झमण के स्वर हवा में उड़ेलती हैं। ताली बजा कर गीत गाने की इस पद्धति को 'झमण पारना' कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में पंक्तिबद्ध होकर, एक-दूसरे का हाथ में हाथ मिला कर बिना ताली बजाए भी झमण गाया जाता है। झमण गीत सामान्यत: वर्षा ऋतु में ही गाए जाते हैं। धान की रोपाई करके खेत से लौटते समय थारू महिलाएं झमण गीत गाती है। वे झुंड की झुंड, हाथ में हाथ मिला कर पंक्तिबद्ध हो झमण गीतों के स्वर से दिशाओं को मस्त बनाती हुई घर की ओर जाती हैं। जिस दिन किसी थारू परिवार की रोपनी समाप्त होती है, उस दिन यदि वह चाहेगा, तो गांव की युवतियां उसके दरवाजे पर एकत्र होकर झमण गीतों को पारती (गाती) है। जिउतिया व्रत के समय भी गुमाश्ता के दरवाजे पर झमण गीत गाने का रिवाज है। कभी-कभी गर्मी के मौसम में चांदनी रात्री में लुत्फ उठाने के लिए भी थारू महिलाएं झमण गीत गाती हैं।

इस क्षेत्र के नाच-मंडली वाले 'रासधारी' गीत गाते हैं। वे अपने ढंग से नाच-गा कर इन गीतों का संबंध कृष्णलीला या रासलीला से जोड़ते हुए बताते हैं। संभवत: कृष्णलीला या रासलीला से संबंधित होने की वजह से ही ये गीत 'रासधारी' कहलाते हैं। अधिकांश 'रासधारी' गीतों में कृष्ण और गोपियों का संकेत किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। थरुहट क्षेत्रों में विवाह समारोह में शकुन, नेवता, माटी-कोड़ाई, माँड़वे के श्रृंगार, बारात सजाना, बारात दरवाजे लगना, द्वारपूजा, धुरछक का पानी, वर का आंगन में आगमन, हल्दी चढ़ाना, नहछूत, भतवान, बेटी की विदाई आदि रस्मों पर आधारित विवाह-गीत वर्तमान में भी गाए जाते हैं, जो आधुनिकता के बीच परम्परा की छाप छोड़ते हैं। थारू महिलाऐं भी बारातों में वर पक्ष की ओर से बारात करने जाती हैं और बैलगाड़ी/वाहन आदि में बैठ कर रास्ते भर विवाह से संबंधित गीतों को गाती हैं जिससे बारात काफी पारंपरिक एवं उल्लासपूर्ण लगने लगती है। बेटी की विदाई के गीत थरुहट में भी अत्यंत कारुणिक होते हैं, जैसे "किबाबा का रोअले गगन बढ़ि गइले, माता रोवेली छव मास हे..."

इन लोकगीतों के अलावा थारूओं में 'झमटा' नृत्य अत्यंत लोकप्रिय है। थारू नवयुवतियां रमणियां जब कभी दिन-प्रतिदिन के कार्यों से अवकाश पाती हैं अथवा फसल तैयार होने के अवसर पर झमटा नृत्य करती हैं। रंग-बिरंगी साड़ियों पहनी हुई, मांग में सिन्दूर लगाए थारू महिलाएं नृत्य स्थल पर जमा होती हैं। इन नृत्यों को देखने वाले रसिक थारू पुरुष भी जुटते हैं। गोलाकार खड़े होकर थारू महिलाएं झमटा नृत्य करती हैं। इस क्षेत्र में इसे 'झमटा पारना' कहा जाता है। कई हाथों की तालियों और कदमों की लयबद्धता से झमटा जैसे कि झमक उठता है। रोपनी की समाप्ति हो या धान की कटाई के बाद का समय या यूँ कहें चैन की रातें, पर्व-त्योहार हो या शादी-विवाह की धूमधाम, थारूओं में खुशी के प्रत्येक मौके पर झमटा का आयोजन अनिवार्य सा माना जाता है। गाजे-बाजे, ढोल-मर्जीरे आदि किसी विशेष ताम-झाम, प्रबंध आदि की आवश्यकता 'झमटा' के लिए नहीं होती। सजी-संवरी पन्द्रह-बीस महिलाएं/युवतियां वृत्ताकार खड़ी हो जाती है और कदमों की लयबद्धता एवं तालियों के ताल

के साथ झमटा के बोल किसी पहाड़ी झरने की मानिंद फूट पड़ते हैं। आमतौर पर झमटा पारने के दौरान औरतों के दो दल वृत्ताकार खड़े होकर एक-दूसरे से गीतों के माध्यम से सवाल-जवाब करते हैं, यथा-

कवन जइहें हाजीपुर, कबन जइहें पटना,
से कबन जइहें बेतिया नोकरिया बाबा जइहें हाजीपर,
भइया जइहें पटना से सइयां जइहें बेतिया नोकरिया...

(कुमारी, 2020)

सांस्कृतिक निरंतरता किसी संस्कृति की ऐतिहासिक परम्पराओं आदि को सुरक्षित-संरक्षित करने एवं उन्हें यथेष्ट सांस्कृतिक तत्वों के साथ भविष्य में ले जाने की क्षमता है, जो किसी निश्चित मानव समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को भी निर्धारित करती है। सांस्कृतिक पहचान किसी समुदाय विशेष की ना केवल आत्मप्रतिष्ठा का विषय है बल्कि उनके मनोबल का भी सूचक बनता है। थारू समुदाय के विषय में जब इन तथ्यों के अंतर्गत हम विचार करते हैं तो हमें सांस्कृतिक संक्रमण, संस्कृतिकरण आदि प्रक्रियाओं के अंतर्गत इनके दिन प्रतिदिन के जीवन एवं सामाजिक पर्यावरण में हुए आधुनिकीकरण के प्रभावोनुरूप परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, जो सामान्यरूप से इनकी बोली, पहनावा, खानपान, यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग वैचारिक परिवर्तन आदि में देखा जा सकता है।

नृत्य परंपरा की यात्रा को हम देखे तो नृत्य की परम्परा आदिम युग से ही चली आ रही हैं। जब से आदिम मानव ने अपने भावों को अंग को संचालन द्वारा प्रकट करने का प्रयास किया, तभी से नृत्यकला का सूत्रपात हुआ। भाषा के विकास से पूर्व आदिम मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए सांकेतिक भाषा का उपयोग करता था। जैसे-जैसे वह सभ्यता की ओर पग बढ़ाने लगा, उसकी यह कला निखरती चली गयी। संकेतों का स्थान मुद्राओं ने ले लिया और वह अपने भावों को अंग-प्रत्यंगों के विविध संचालन के द्वारा व्यक्त करने लगा। इस अंग-संचालन में प्रकृति उसकी सहायक रही। उसी के विभिन्न अंगों एवं क्रिया-कलापों से उसने लय तथा भंगिमाएँ सीखीं। मन्द समीर से झूमने वाली लताओं एवं पौधों ने उसको अभिनय की शिक्षा दी। वन के विविध पशुओं की मुद्राओं का उसने अनुकरण किया। भावाभिव्यक्ति के लिए इसी प्रकार का अंग-संचालन करने पर नृत्यकला उत्पन्न हुई (शुक्ल, 2012)। मन में भाव पैदा होने पर शरीर की किसी-न-किसी क्रिया में साकार हो उठता है और इसी से अभिनय का सूत्रपात होता है। वैदिक युग में नृत्यकला जनता के मनोरंजन का माध्यम थी। नृत्य पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों के द्वारा किया जाता था और सभी जन इसमें भाग ले सकते थे। नृत्य खुले प्रांगण में हुआ करते थे- नृत्यमतो अमृता (ऋग्वेद 5.33.61)।

इस तरह देखा जाये तो जनजातीय समुदाय का परम्परागत गीत-संगीत एवं नृत्य पर भी हस्तक्षेप रहा है जिसमें मुख्य रूप से इनके लोक नाटकों को देखा जाता है। नृत्य इनके जीवन का आधार रहा है। थारू जनजातीय समुदाय में महिला एवं पुरुष का साथ में मिलकर नृत्य करने की परंपरा जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। थारु लोक नाट्य में झमटों नृत्य,

झमरा नृत्य, रासधारी नृत्य, जोगिया नृत्य, कठधोरी नृत्य एवं लौबड़ा नृत्य के साथ अन्य नृत्य प्रचलन में है। लेकिन इधर कुछ दशकों से देखें तो इन नृत्यों की निरन्तरता थारू जनजातियों के बीच कुछ कमजोर पड़ी है। इनका प्राचीन स्वरूप भी बदला है। इस तथ्य को अधिकांश उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है। इस संदर्भ में उत्तरदाताओं ने यह भी स्वीकार किया कि इस नृत्य को विशेष अवसरों पर बाहर से लोगों को बुलाकर नृत्य कराते हैं और कुछ क्षेत्र के लोग भी शामिल होते हैं। "थारु महिलाएं नृत्य के दौरान सिर पर उढनिया, जूड़ा, शरीर के अन्य अंगों पर अंगिया, चोला, हरवा, सांकर, कठुला, बैकड़ा, टांगों में घघरीया, खंडवा, घुँघरू एवं पैर में देशी जूता-चप्पल, बिछिया, फूल, पाजेब आदि धारण करती हैं, वहीं नृत्य के दौरान पुरुष सिर पर सफेद टोपी, शरीर पर कुर्ता, झागिया, गमछा, पैंट एवं टांगों में लंगोटी, नालदार पायजामा तथा पैर में देशी जूता-चप्पल पहनते हैं" (बबीता, 2023)। नृत्य के दौरान ये सभी वस्त्र एवं आभूषण महत्वपूर्ण होते हैं। नृत्य एवं पहनावे के संदर्भ में साक्षात्कार से जो तथ्य प्राप्त हुए उसमें इधर कुछ दशकों से थारू समुदाय की परंपरागत नृत्य शैली की वैचारिकी कमजोर पड़ी है।

थारू समुदाय लोकगीतों के माध्यम से अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते हैं। आज भी उत्तर प्रदेश का थारू समुदाय लोकगीतों के माध्यम से अपनी पहचान को गतिमान किए हुये हैं। थारू लोकगीतों में विद्यापति, उमापति, कृष्णदास के साथ-साथ परमानंद एवं नन्दी पति के गीतों के उल्लेख मिलते हैं। इसके साथ-साथ थारू लोकगीतों में संत परम्परा के तत्व भी पाये जाते हैं। यह जनजातीय समुदाय मौसमी गीत के साथ-साथ बारहमासा, भेलकुटी, जगसारी, पचरा, चहका, घुमा, चैता, बरसाती, कजरी, विहगारा, भैरवी, निर्गुण, पराती आदि जैसे गीतों के साथ-साथ विविध संस्कारों के अवसर पर भी कुछ गीत गाये जाते हैं। इन लोकगीतों की निरन्तरता एवं परिवर्तन पर थारू समुदाय से जो तथ्य प्राप्त हुए उसमें बहुतायत गीत, संगीत एवं नृत्य के स्वरूप कुछ हद तक बदले हैं तो वहीं कुछ उसी रूप में भी स्वीकार किये जा रहे हैं। अतएव अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश का थारू समुदाय गीत, संगीत एवं नृत्य में निरंतरता के साथ-साथ परिवर्तन को भी स्वीकार कर रहा है।

थारू जनजातीय समुदाय में उत्तराधिकार को लेकर महिलाओं की सत्ता सम्बन्धी प्रभाव बड़े स्तर पर रहा है,जैसा कि उत्पत्ति में इनका संदर्भ मिलता है। वहीं इस जनजातियों में गुमास्ता का प्रचलन रहा है। गुमास्ता प्रथा अन्तर्गत गाँव के मुखिया को बहुत सारे अधिकार प्राप्त थे। सामाजिक व्यवस्था के निर्धारण में इनका महत्वपवूर्ण हस्तक्षेप रहता था या हम यू कहेंगे वर्तमान राज्य स्वरूप का आधार स्तम्भ रहा है। आज हम इन दोनों तथ्यों का मूल्यांकन करें तो साक्षात्कार के आधार पर जो तथ्य प्राप्त होते हैं, उसमें महिला अधिकारों एवं गुमास्ता प्रथा में बड़े स्तर पर गिरावट आयी है। इस तथ्य को 80 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है।

विविध पर्व, उत्सव एवं त्योहार थारू समुदाय की जीवन संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वर्षभर यह समुदाय विभिन्न पर्व और त्यौहारों से घिरा हुआ होता

है। मकर संक्रांति के अवसर पर इस समुदाय के लोग खिचड़ी के साथ मछली का भी सेवन करते हैं। उत्तर प्रदेश के महाराजगंज, लखीमपुर खीरी, बलरामपुर के साथ-साथ नेपाल के थारू समुदाय इन अवसरों को बड़े ही प्रतिबद्धता के साथ मनाते हैं। इसके अलावा ये लोग अन्थाई, तीज, ज्योतियाँ माई पूजा, गडेरिया, छठ पूजा, एकादशी, दीवाली, दशहरा, होली, आषाढ़, नागपंचमी, अन्न चतुर्दशी, बड़का छूटवार जैसे पर्वों को बड़े स्तर पर मनाते हैं। हाँ इतना जरूर है कि इसमें कुछ पर्व एवं त्यौहारों की स्थिति कमजोर पड़ी है तो कुछ जैसे - छठ पूजा इनके बीच एक वृहद परम्परा का रूप धारण कर चुकी हैं। इस तथ्य को चयनित उत्तरदाता स्वीकार करते हैं।

थारू समुदाय : आवासीय संरचना

बहुतायत आदिवासी गांवों में निवास करते हैं। परंतु उनके आकार और चरित्र में काफी भिन्नता है (एलविन, 2011)। उत्तर प्रदेश के थारू समुदाय के आवासीय संरचना को देखें तो इनके बीच आवासों की संरचना काफी बदली है। इनके प्रारम्भिक स्वरूपों में हम देखें तो इनके बहुतायत आवास झोपड़ी के रूप में बने होते हैं, जो प्राय: घास-फूस, लकड़ी, मिट्टी एवं बाँस से बने होते हैं तो वहीं कुछ खपरैल के भी आवास दृष्टिगोचर होते हैं। जंगली पेड़-पौधों को काटकर उनका उपयोग ये लोग अपने घरों में करते हैं। लेकिन इधर कुछ दशक में इनके बीच ईंट द्वारा निर्मित पक्के आवास भी देखें जा सकते हैं। इनकी परम्परागत आवासों की संरचना देखें तो इधर एक-दो दशकों के बीच इनकी आवासगत संरचना काफी कुछ बदली है। कुछ थारू समुदाय के लोग आधुनिक मकानों- ईंट, रेत, पत्थरों एवं सीमेन्ट, सरियां निर्मित आवासों में रह रहे हैं। इनके बीच आवासीय संरचना में बड़ा परिवर्तन है। नये मकान में प्रवेश से पहले गृह-पूजन करते हैं तथा बीच-बीच में ये लोग मरम्मत का भी कार्य करते हैं। इनके घरों के दरवाजे बहुतायत पूर्व की तरफ होते हैं तथा प्रवेश द्वार पूर्व या पश्चिम की तरफ होता है। घर के अन्दर ही भण्डारण के लिए कमरा (कक्ष) बनाते हैं। साथ ही घर के चारदीवारी के अन्दर पानी के लिए कुँआं खोदते हैं और अपने घरों को काफी साफ-सुथरा रखते हैं। साथ ही विविध देवी-देवताओं के चित्रों को लगाते हैं। इस तरह देखा जाये तो इनकी आवासीय संरचना में काफी बदलाव आ चुका है। घास-फूस, छप्परों तथा लकड़ी से बने मकानों की जगह आज ईंट-सीमेण्ट निर्मित मकान बड़े स्तर पर देखे जा सकते हैं। स्वच्छता के दृष्टिकोण से "थारुओं के घर चाहे अमीर के हों या गरीब के, बेहद साफ-सुथरे होते हैं" (कुमारी, 2023)। साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाताओं के बीच इन सभी पक्षों की स्वीकारोक्ति बड़े स्तर पर हुई है। अतएव कहा जा सकता है कि इनकी आवासीय संरचना की निरन्तरता आधुनिक मूल्यों की स्वीकारोक्ति के कारण प्रभावित हुई है। ये पक्ष भौतिक रूप में दिखाई दे रहे हैं।

जनजातीय समुदाय के बीच आभूषण धारण करने की प्राचीन परम्परा रही है जिसमें वे जंगली पत्थरों, समुद्री शंखों, सुन्दर पक्षियों के पंखों का शुरूआती इतिहास देखने को मिलता है। इसके बाद शरीर के विविध अंगों पर गोदना गोदवाने की परम्परा देखी जा सकती

है। थारू महिलाएं आभूषण प्रेमी रही हैं। थारू महिलाओं के इतिहास को हम देखें तो ये अपने आपको राजपूत वंशजों से जोड़कर देखती हैं। आज भी ये महिलाएं बड़े स्तर पर आभूषण धारण कर रही हैं। लेकिन उनमें आर्टिफिशियल ज्यादा हैं। हाँ सोने-चाँदी के भी आभूषण भी धारण कर रही हैं। गोदना को लेकर थारू समाज में एक परम्परागत कहावत चली आ रही है - "कुछो संगे ना जाई, गोदना संगे जाई"। आज ये कहावत थारू समाज में अब इतिहास की बात रह गयी है। लेकिन आज इस तरह के दृष्टान्त कम देखने को मिलते हैं।

थारू समुदाय के बीच यदि हम सभ्यागत संसाधन की बात करें तो इस समुदाय के बीच बड़ा तबका परम्परागत संसाधनों की बजाय आधुनिक संसाधनों का उपयोग कर रहा है जिसमें उनके बीच, सुन्दर ईंट निर्मित मकान खिड़की दरवाजे सहितएवं उसकी सजावट, कार, बाईक, साईकिल, ट्रैक्टर, मोटर, बस आदि की उपस्थिति देखी जा सकती है। वहीं इनके बीच हस्तकरघा उद्योग, पत्थर, कम्प्रेशर मशीन, गुड़ उद्योग आदि देखे जा सकते हैं तो दूसरी तरफ ये काफी आधुनिक ढंग से वस्त्रों को भी धारण कर रहे हैं। लेकिन अभी भी थारू समुदाय का एक बड़ा हिस्सा परंपरागत संसाधनों को अपनी जीवन संस्कृति में शामिल कर रहा है।

थारू समुदाय : शिक्षा एवं रोजगार

जनजातीय समुदाय की शैक्षणिक यात्रा का मूल्यांकन करें तो दृष्टिगोचर होता है कि आदिवासियों के मध्य सामान्य एवं अनौपचारिक तथा कौशल उन्नयन जनित शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है। पहले इसकी प्रकृति अनौपचारिक के साथ-साथ व्यवाहरिक थी। अनौपचारिक विशुद्धत: स्थानीय वातावरण को ध्यान में रखकर दी जाती थी। इस प्रकार की शिक्षा अनुभव पर आधारित थी। थारू जनजातियों के बीच उनके शिक्षा का स्तर देखें तो स्वतंत्रता के बाद प्रथम जनगणना में इनकी साक्षरता दर काफी निम्न रही है। लेकिन वर्तमान जनगणना के आधार पर इनकी साक्षरता का दर बड़े स्तर पर बड़ी है। परिणाम स्वरूप शैक्षणिक समृद्धि के कारण यह समुदाय कला, मानविकी एवं चिकित्सा के साथ-साथ अभियांत्रिकी के क्षेत्र में भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस तरह इनकी शैक्षिक निरन्तरता बड़े स्तर पर बढ़ी है। इसके आधार पर यह समुदाय सरकारी एवं गैर-सरकारी क्षेत्रों में नौकरी कर रहे हैं, तो वहीं कुछ थारू अपने परम्परागत कार्यों में लगे हैं जैसे - थारू महिलायें जंगलों से पौधों एवं उसके तनों तथा पत्तियों को लाकर उसे डलवा, झाड़ू एवं अन्य भौतिक संसाधनों का निर्माण करती हैं। इसके अलावा शिक्षित महिलाएं कढ़ाई, बुनाई एवं सिलाई कार्यों में संलग्न हैं। थारू पुरुष पत्ता, प्लेट, रस्सी निर्माण, कागज उद्योग, खनिज उद्योग, हर्बल उद्योग, पेयजल निर्माण, दुग्ध उद्योग, फल-फूल उद्योग, फिल्म उद्योग, पर्यटन उद्योग जैसे कार्यों में भी संलग्न हैं। इसके साथ-साथ पुरुष एवं महिलायें छोटे-छोटे समूह बनाकर आर्थिक उपादान में संलग्न हैं। ये सभी तथ्य इस बात को दृष्टिगत करते हैं कि शैक्षणिक गतिशीतलता के कारण थारू समुदाय का शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र में बड़े स्तर पर हस्तक्षेप सुनिश्चित हुआ है।

समापन-अवलोकन

प्रस्तुत शोध आलेख थारू जनजातियों की जीवन, संस्कृति एवं दिन-प्रतिदिन की घटनाओं पर आधारित है। थारू जनजातीय समुदाय की उत्पत्ति एवं विकास को लेकर ढेर सारी किवदन्तियाँ प्रचलित हैं, लेकिन जो प्रमुख किवदन्तियाँ आधार बनती हैं उसमें इस समुदाय की महिलायें राजपूताने घराने से सम्बन्धित हैं। थारू जनजातीय समुदाय अपनी परम्परागत संस्कृति के साथ तो कुछ परिवर्तन के साथ जीवन को गति दे रहा है। शिक्षा के साथ-साथ सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों में इनका हस्तक्षेप बढ़ा है। सभ्यतागत संसाधनों को लेकर यह जनजातीय समुदाय काफी समृद्ध हुआ है। इनके पर्व एवं त्यौहार कुछ परम्परागत हैं तो कुछ हिन्दूकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होकर परिवर्तित दृष्टिगोचर होते हैं। वस्त्र और आभूषण को लेकर यह समुदाय काफी आधुनिक हुआ है। आज थारू समुदाय को परम्परागत आभूषणों के साथ आधुनिकी और आर्टिफिशियल आभूषणों को भी धारण करते देखा जा सकता है। इनके बीच प्रचलित गीत-संगीत एवं नृत्य परम्परा में निरन्तरता एवं परिवर्तन को देखा जा सकता है। निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि थारू जनजातीय समुदाय अपनी परंपरागत संस्कृति के साथ परिवर्तन को भी स्वीकार कर रहा है। अतएव अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि थारू जनजातीय समुदाय अपनी सांस्कृतिक निरंतरता के साथ-साथ परिवर्तन को स्वीकार करते हुये अपनी सांस्कृतिक पूंजी का विस्तार कर रहा है।

संदर्भ

अटल, योगेश एवं यतीन्द्र सिंह सिसोदिया (2011): *आदिवासी भारत*, गवत पब्लिकेशंस, जयपुर

एलविन, वेरियर (2011): *जनजातीय मिथक - उड़िया आदिवासियों की कहानियाँ*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 13

बर्बीता (2023): *थारू एवं बुक्सा जनजाति की कला एवं संस्कृति*, कलमकार पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ. 149

चौधरी, एस.एन., मनीष मिश्रा एवं मनोज शर्मा (2013): *आदिवासी ग्रामों में टिकाऊ विकास का यथार्थ*, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 189

दोषी, एस.एल. एवं पी.सी. जैन (2022): *जनजातीय समाजशास्त्र*, गवत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. 80

हसन, अमीर (1993): *अफेयर्स ऑफ एन इंडियन ट्राइब द स्टोरी ऑफ माई थारू रिलेटिव्स*, बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली

कुमारी, नम्रता (2020): *थारू लोककला की विरासत*, भारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 131

कुमारी, नम्रता (2023): *थारू जनजाति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जनजीवन (निरंतरता एवं परिवर्तन)*, भारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 161

कॉक्स, थामस (1990): लैंड राइट एंड एथनिक कनफ्लिक्ट इन नेपाल, *इकोनामिक एंड पोलिटिकल वीकली*, वॉल्यूम 25, नं. 24/25, पृ. 1318-1320

मीणा, हरिराम (2021): *आदिवासी दुनिया*, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

मीणा, मंगल चंद (2019): *भारत का जनजातीय इतिहास*, गवत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. 13

पाण्डेय, गया (2007): *भारतीय जनजातीय संस्कृति*, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 5

प्रवीर, राकेश (2004): *थारू जनजाति*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ. 3

शर्मा, के.एल. (2010): *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन*, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. 169

शुक्ल, हीरालाल (2012): *आदिवासी संस्कृति*, संगीत एवं नृत्य, बी.आर. रिदम्स, नई दिल्ली, पृ. 51

श्रीवास्तव, एस.के. (2010): *थारू लोकगीत*, कला प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 11

श्रीवास्तव, एस.के. (2011): *द थारुज - ए स्टडी इन कल्चरल डायनामिक्स*, कला प्रकाशन, वाराणसी

थोरात, सुखदेव (2017): *भारत में दलित एक समान नियत की तलाश*, सेज़ इंडिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 73-82)
UGC-CARE (Group-I)

समसामयिक भारत में नगरीकरण की नीतियों का पर्यावरणीय प्रभाव

प्रकाश सिंह[*] एवं प्रदीप कुमार शर्मा[†]

शहरी नियोजन अनिवार्य रूप से शहरों में भूमि का उपयोग और विकास की योजना बनाने से संबंधित है। शहरों के व्यवस्थागत नियोजन एवं प्रबंधन के लिए प्राय: नई नीतियों की आवश्यकता होती रही है। अधिकांश नगर नियोजन विधानों में विकास को केवल एक भौतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। शहरी विकास से संबंधित योजनाओं को या इससे संबंधित सामग्री को शहरों की आवश्यकतानुसार परिभाषित किया जाना चाहिए। 74वें संविधान संशोधन में यह निर्धारित किया गया है कि राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को तैयार करने के लिए राज्यों को अनुदान देना चाहिए तथा नगर पालिकाओं को यथाशक्ति प्रदान करनी चाहिए ताकि यह सामाजिक तथा आर्थिक विकास की यथोचित योजना तैयार कर सकें। विकास की मूल धारणा अर्थात शहरी विकास की योजना में आर्थिक विकास, समावेशी विकास और पर्यावरणीय स्थिरता को सामान्यत: स्पष्ट रूप से शामिल नहीं किया गया है। इसलिए

[*]शोध छात्र, विकास अध्ययन केन्द्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: singhprakash15@gmail.com
[†]समन्वयक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, विकास अध्ययन केन्द्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.).
E-mail: pradeepksharmaaua@gmail.com

विकास की रणनीति विकसित करने के संदर्भ में शहरी नियोजन और चुनौतियों का अध्ययन एवं शोध उपयोगी है।

बीज शब्द - शहरीकरण, नगरीय योजनाएँ, पर्यावरण, सतत विकास।

शहरीकरण की अवधारणा

भारत मुख्यत: गाँवों का देश है,यहाँ बहुतायत में जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, अतएव गाँव की हरी-भूमि को बचाये रखने के लिए यथोचित उपाय होने चाहिए ताकि शहरों के फैलाव को गाँवों की तरफ बढ़ने से रोका जा सके। महात्मा गाँधी के द्वारा बार-बार दोहराई जाने वाली कहावत ने स्वतंत्रता के बाद की अवधि के शुरूआती वर्षों के दौरान शहरों के विकास पर दृष्टिकोण को निर्देशित किया। महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक 'मेरा जीवन मेरा संदेश में लिखा है - "मैं शहरों के विकास को एक बुरी चीज मानता हूँ जो मानवजाति और दुनिया के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है, इंग्लैंड के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है और निश्चित रूप से भारत के लिए भी दुर्भाग्यपूर्ण है। अंग्रेजों ने अपने शहरों के माध्यम से भारत का शोषण किया है। शहरों ने गाँवों का शोषण किया है। गाँवों का खून वह सीमेंट के समान है जिनसे शहरों की इमारत बनती है। मैं चाहता हूँ कि वो रक्तधमनियाँ एक बार फिर गाँवों को सींचें" (चक्रधर, 2014)। औपनिवेशिक सत्ता द्वारा या देशी पूँजीपतियों द्वारा शोषण के प्रतीक के रूप में शहरों की धारणा को राजनीतिक प्रवचन के व्यापक स्पेक्ट्रम में स्वीकृति मिले।

नगरीकरण की नीतियाँ

नगरों का सुनियोजित तरीके से प्रबंधन एवं नियोजन करने के लिए नीतियों की आवश्यकता प्राय: महसूस की गयी है, अत: बढ़ती हुई आबादी के मद्देनजर नित नयी नीतियों की आवश्यकता है जो कि उपलब्ध शहरी भू-भाग के नीति-नियोजित ढंग से अनुकूलतम उपयोग को बढ़ावा दें।

तत्कालीन योजना आयोग द्वारा तैयार की गई पंचवर्षीय योजनाओं में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए नीतिगत दिशानिर्देश योजना प्राथमिकताएँ और निवेश के पैटर्न शामिल थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) ने कृषि, सिंचाई और बिजली को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। विभाजन के कारण विस्थापित हुए लोगों के लिए आवास को भी महत्व दिया गया था। शहरों का बेतरतीब विकास और बस्तियों सहित आवास योजनाएँ शहरों की निराशानजक स्थिति को दर्शाते रहे थे (नीति आयोग, 2021)।

टाउन एंड कंट्री प्लानिंग रिपोर्ट के अनुसार "भारत के अधिकांश शहर बेतरतीब ढंग से विकसित हुए हैं। ज्यादातर मलिन बस्तियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है, यह बस्तियाँ अधिक भीड़ वाले, खराब हवादार, मिट्टी की झोपड़ियाँ जिनमें अक्सर मूलभूत चीजों का अभाव, जैसे स्वच्छ, पानी और प्रकाश की सुविधाओं की कमी देखी गयी है। ऐसी बस्तियाँ विशेष रूप से बड़े औधोगिक शहरों जैसे कानपुर, कोलकाता इत्यादि में देखी गई हैं। राज्य या

नगरपालिका अधिकारियों द्वारा निर्माण गतिविधि पर अपर्याप्त नियंत्रण के कारण यह स्थितियाँ विकसित हुई हैं (तुम्बे, 2016)।

तालिका 1
नगरीकरण की प्रवृत्ति (1961-2011)

जनगणना वर्ष	शहरी आबादी (मिलियन्स में)	कुल आबादी में शहरी आबादी का प्रतिशत	वार्षिक प्रतिपादक शहरी वृद्धि दर
1961	78.94	17.97	निरंक
1971	109.11	19.91	3.23
1981	159.46	23.34	3.79
1991	217.18	25.72	3.09
2001	286.12	27.86	2.75
2011	377.1	31.16	2.76

स्रोत : भगत, 2011

तालिका 1 में शहरी आबादी में 1961 में 78 मिलियन से 2011 में 377 मिलियन की वृद्धि हुई है, जो पाँच दशकों में 31.16 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। शहरी आबादी में यह वृद्धि गंभीर चिंता का विषय है।

अक्सर ऐसा पाया गया है कि स्थानीय अधिकारी आमतौर पर भवन तथा स्वच्छता से जुड़े उप-नियमों को लागू करने के प्रति उदासीन रहे हैं। विकास कार्य की अनुमति देने के लिए ऐसे नियम एवं संसाधन बहुत कम हैं जो कि मूर्त रूप से संसाधनों एवं नियमों को आवंटित एवं लागू कर सकें। यह उल्लेखनीय है कि समस्या को हमेशा नियमों के खराब प्रवर्तन के परिणामस्वरूप देखा गया था, न कि शहरी भूमि और सेवाओं के विस्तार की आवश्यकता के रूप में। दिलचस्प रूप से इसी तरह के दृष्किोण छठवीं पंचवर्षीय योजना तक जारी रहे (नीति आयोग, 2021)।

इसलिए एक उचित शहरी विकास दृष्टिकोण में दो घटक होने चाहिए। पहला भौतिक और निवेश योजना के बीच समन्वयता तथा दूसरा क्षेत्रीय एवं उप-क्षेत्रीय शहरी विकास योजनाओं को तैयार करना ताकि पहले को संभव बनाया जा सके। औधोगिक स्थापन नीति, क्षेत्रीय और शहरी नियोजन को बनाये रखने के लिए बनाई जानी चाहिए (भगत, 2011)।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990) के दौरान, छोटे और मध्यम शहरों के आसपास के क्षेत्रों में निजी औद्योगिक निवेश को व्यवस्थित करने के लिए एक ठोस प्रयास किया गया ताकि जनसंख्या का प्रवाह महानगरों में जाने से इनकी ओर मोड़ा जा सके। सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश पर भी यह सिद्धांत लागू किया गया (शिवारामकृष्णन्, कुन्डु एवं सिंह, 2007)।

इन निष्कर्षों के बावजूद आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-1997) ने छोटे और मध्यम शहरों की महत्ता पहचानी और इनके विकास पर विशेष जोर दिया जो कि गाँव और बड़े शहरों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में काम करते हैं (कामथ एवं जकारिया, 2015)। शहरों के संतुलित वितरण के उद्देश्य को समझते हुए, शहरों के विकास को न केवल स्थान के वितरण के संदर्भ में अपितु उसके आकार वर्ग को भी महत्वपूर्ण समझा गया; जैसा कि छोटे और मध्यम शहर एक महत्वपूर्ण आकर्षण के केंद्र के तौर पर कार्य करते हैं; जैसा कि आर्थिक अवसरों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, साथ ही साथ न केवल गाँवों से बल्कि शहरी क्षेत्रों से बड़े शहरों में आने वाले संभावित प्रवासियों के लिए भी कर सकते हैं। छोटे और मध्यम शहरों के प्रवास को अवशोषित करने और बड़े शहरों के आकार को सीमित करने में मदद करने की धारणा सातवीं पंचवर्षीय योजना के बाद से बनी हुई है (शिवारामकृष्णन्, कुन्डु एवं सिंह, 2007)। हालाँकि, छोटे और मध्यम शहरों के लिए शहरी बुनियादी ढांचा विकास योजना के अपने वर्तमान संस्करण में बड़े शहरों के विकास को रोकने के उद्देश्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। इस योजना के तहत बुनियादी ढांचे की लागत का 60 से 90 प्रतिशत राजसहायता केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है। आश्चयर्यजनक रूप से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-14) का मध्यावधि मूल्यांकन इसकी पुष्टि करता है कि छोटे शहरों के स्वस्थ विकास से मेट्रो शहरों पर दवाब कम होगा जो कि पहले से ही जनसंख्या दबाव को झेल रहे हैं (कामथ एवं जकारिया, 2015)।

नीति आयोग के उद्देश्य

1 जनवरी 2015 को, नीति आयोग ने भारत के तत्कालीन योजना आयोग का स्थान लिया। 2017 में प्रकाशित नीति आयोग के तीन वर्षीय एक्शन एजेन्डा (2017-20) में यह उल्लेख किया है कि शहरों का खराब प्रबंधन आवासीय एवं वाणिज्यिक स्थानों की कमी को उत्पन्न करता है तथा साथ ही साथ बस्तियों, हरियाली का अभाव, बुनियादी ढाँचे पर दबाव, वायु प्रदूषण, ठोस अपशिष्टों का निराकरण तथा अन्य मुद्दों को जन्म देता है। इसलिए भारत को और अधिक मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है ताकि भारत के शहरों को 21वीं सदी के लिए तैयार किया जा सके। इसके अलावा स्थानिक नियोजन होना चाहिए ताकि महानगरीय नगरपालिका वार्ड स्तर के विकासात्मक आवश्यकताओं को एक साथ पूरा किया जा सके। एजेंडा दस्तावेज, यह बताता है कि भारतीय शहरों को अपने नगरपालिका कर्मचारियों की क्षमता में सुधार करने की आवश्यकता है ताकि वह प्रशासनिक दक्षता को प्राप्त करने में सक्षम बनें। अपनी 'नए भारत के लिये रणनीति (2018) में' नीति आयोग ने कई क्षेत्रों में विशिष्ट बाधाओं का उल्लेख किया है (नीति आयोग, 2021)।

इनमें शामिल हैं - शहरी स्थानीय निकायों में अपर्याप्त क्षमता, बड़े पैमाने पर आवास परियोजनाओं को तैयार और डिजाइन करने के लिए आधुनिकता की कमी। इसी प्रकार यह

दस्ताजवेज 41 अलग-अलग क्षेत्रों की पहचान करता है जिन्हें लागू करने या अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

शहरी नियोजन के सिद्धांत (नीति आयोग)

शहरीकरण की प्रक्रिया एवं शहरों की दृश्य समस्याओं को देखते हुए, कुछ सिद्धांत परिणामस्वरूप सामने आए हैं जो कि भारत में शहरी नियोजन का मार्गदर्शन करते प्रतीत होते हैं।

(क) आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान शहरीकरण अपरिहार्य है। हालांकि बड़े (प्राइमेट) शहरों का विकास वांछनीय नहीं है। इस तरह के विकास को पहले छोटे और मध्यम शहरों को बढ़ावा देकर और दूसरे शहर के क्षेत्रों के भीतर नए शहरों या काउंटर-मैग्नेट विकसित करके सीमित करने की आवश्यकता है।

(ख) ऐसे प्रयासों के बावजूद, जब बड़े शहरों का विकास जारी हो, तब मिश्रित उपयोग, उच्च घनत्व वाले आंतरिक-शहरी क्षेत्रों की निरंतर वृद्धि वांछनीय नहीं है। इस तरह के विकास को अधिकतम घनत्व और फर्श क्षेत्र अनुपात जैसे नियमों द्वारा नियंत्रित करने की आवश्यकता है और नए विकास की योजना आत्मनिर्भर क्षेत्रों के रूप में बनाई जानी चाहिए।

(ग) भूमि और अचल संपत्ति बाजार ऐसी योजनाओं का पालन करें।

विभिन्न उपयोगों के लिए भूमि का आवंटन, घनत्व के माध्यम से विकास की तीव्रता एवं फर्श क्षेत्र अनुपात (एफ.ए.आर.) 'स्वास्थ एवं सुरक्षा' की दृष्टि से विचारों पर सैद्धांतिक रूप से निर्धारित और उचित रहा है। भूमि और अचल संपत्ति बाजारों पर ऐसी योजनाओं और विनियमों के प्रभाव पर शायद ही कभी विचार किया गया है। नतीजतन, भूमि का उप-इष्टतम उपयोग किया जाता है और आवास स्थान की अपर्याप्त खपत होती है। आमतौर पर यह माना जाता है कि मलिन बस्तियाँ है, लेकिन तथ्य यह है कि वे 'ग्रे हाउसिंग मार्केट' की अभिव्यक्ति है जो पारंपरिक योजनाओं और नियमों का परिणाम है (तुम्बे, 2016)।

भूमि नीति

भारत में शहरी नियोजन काफी हद तक भूमि के विकास से संबंधित है। इसलिए यह संक्षेप में विचार करना प्रासंगिक होगा कि भूमि और अचल संपत्ति के बारे में धारणा कैसे विकसित हुई है। भारतीय संविधान ने शुरू में 'संपत्ति के अधिग्रहण, धारण और निपटान को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी थी'। परिणामस्वरूप जब भूमि का अनिवार्य रूप से अधिग्रहधण किया जाना था तो 'बाजार मूल्य पर मुआवजा देय था'। इसके बाद, मुआवजे की अवधि को 'राशि' शब्द से बदल दिया गया। इस विचारधारा की परिणति शहरी भूमि (सीलिंग एंड रेगुलेशन) अधिनियम 1976 के अधिनियम में हुई जिसने एक मामूली राशि का भुगतान करके खाली शहरी भूमि के राष्ट्रीयकरण का प्रयास किया (भगत, 2011)।

शहरी भूमि नीति की पहली अभिव्यक्ति 1965 में भारत सरकार द्वारा नियुक्त शहरी भूमि नीति समिति (स्वास्थ्य मंत्रालय) द्वारा प्रस्ताावित की गयी थी। समिति ने निम्नलिखित भूमि नीति उद्देश्यों को स्पष्ट किया -

1. शहरी भूमि का इष्टतम सामाजिक उपयोग प्राप्त करना।
2. लोक प्राधिकरणों एवं व्यक्ति दोनों ही को पर्याप्त मात्रा में सही समय पर और उचित मूल्य पर भूमि उपलब्ध कराना।
3. भूमि विकास, आवास और निर्माण के क्षेत्र में सहकारी सामुदायिक प्रयास और वास्तविक व्यक्तिगत बिल्डरों को प्रोत्साहित करना।
4. कुछ निजी हाथों में भूमि के स्वामित्व को रोकने के लिए और विशेष रूप से शहरी समाज के गरीब और वंचित वर्गों के हितों की रक्षा के लिए।

शहरी भूमि नीति को अगर सही तरीके से या सही मायनों में लागू किया जाए तो उसके अच्छे परिणाम देखने को मिल सकते हैं परंतु कुछ निहित हितों के लिए इसका उपयोग निरंतर गिरावट को दर्शाता है जिससे उपलब्ध भूमि का दोहन वर्तमान में देखने को मिलता है, जिससे पर्यावरण को भी खतरा उत्पन्न हुआ है। नगरीकरण की गलत नीतियों के कारण या उनमें पर्यावरणीय संबंधित नियमों की अनदेखी करना हो या इसको अनचाहे रूप से लागू करना दोनों ही परिस्थिति में पर्यावरण को नुकसान पहुँचेगा। जब भी नगरीकरण की बात होती है तो उसके साथ उसके घटकों की भी बात स्पष्ट रूप से होनी चाहिए चाहे वह जल हो, उस भूमि पर उपलब्ध जैव-विविधता, पर्यावरण या उस भू-भाग पर पड़ने वाला दबाव, या फिर ठोस-तरल अपशिष्ट एवं जल-मल हानिकारक अवयव या चाहे जलवायु परिवर्तन, इन सभी का समग्र रूप से विचार करके उपलब्ध भू-भाग का अनुकूलतम उपयोग किया जाना चाहिए।

सतत विकास की संकल्पलना

सतत विकास की संकल्पलना का वास्तविक विकास 1987 में, 'हमारा साझा भविष्य' नाम से रिपोर्ट जिसे 'द ब्रंटलैंड रिपोर्ट' के नाम से भी जाना जाता है, के आने के बाद हुआ एवं तभी से इस शब्द का व्याापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा। संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित आयोग ने विकास के लिए परिवर्तन हेतु वैश्विक प्रारूप का प्रस्ताव पेश किया। इस रिपोर्ट ने मनावता के लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए पुरानी समस्याओं पर नये तरीके से विचार करने तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं समन्वय पर बल दिया। इस आयोग का औपचारिक नाम 'पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग' था। इस आयोग ने मानव पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षय या खराब होती स्थिति तथा सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उस क्षय के परिणाम की ओर ध्यानाकृष्ट किया था। आयोग की स्थापना करते समय संयुक्त राष्ट्र महासभा ने विशिष्ट रूप से दो विचारों पर विशेष बल दिया था (रजिस्ट्रार जनरल, 1993)।

1. पर्यावरण, अर्थव्यवस्था तथा लोगों की भलाई अत्यधिक अंतर्संबंधित है।
2. सतत विकास के लिए वैश्विक स्तर पर सहयोग आवश्यक है।

पर्यावरण एवं विकास

20वीं शताब्दी को आमतौर पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास तथा आर्थिक वृद्धि की दृष्टि से उन्नत शताब्दी माना जाता है। हालाँकि यह शताब्दी विकास के साथ-साथ पर्यावरण में काफी गिरावट भी दिखाती है क्योंकि इस दौरान पृथ्वी पर उपस्थित संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया, चाहे संसाधन नवीकरणीय हो या अनवीकरणीय। यह दोहन मानव के सामूहिक जीवन शैली में सुधार एवं विकास के नाम पर हुआ है। जिसमें नगरीकरण एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक साबित हुआ है। परंतु वर्तमान विकासवादी दृष्टिकोण पर्यावरण की रक्षा के लिए उतना गंभीर नहीं है जितना होना चाहिए। आज के दौर में वन्य जीवों और इंसानों के बीच टकराव बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण में असंतुलन गलत नीतियों के कारण हुआ है (गुप्ता एवं वास्टाग, 2020)।

इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए 'सतत या धारणीय विकास' की संकल्पना की गई। 'धारणीय विकास' सतत विकास की ऐसी प्रक्रिया हैं जो आने वाली पीढ़ियों के हितों से समझौता किये बिना वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

विकास एवं सतत विकास के लक्ष्य

विकास का परिमाणात्मक पहलू आर्थिक समृद्धि से है, जो औद्योगिकीकरण के साथ ही शुरू हो गया था। औद्योगिकीकरण के साथ प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा दोहन शुरू हो गया। भूमि से मानव समाज ने अपार खनिज संपदा निकालकर धरती का दोहन किया है। वृक्षों को काट-काट कर धरती को काफी नुकसान पहुँचाया है। विकास के क्रम में हमने वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास को उजाड़ कर उन्हें बेघर कर दिया है। नदियाँ अब नाले का रूप ले चुकी हैं तथा उसका अमृत जल विष बन गया है। जिसके कारण उसमे रहने वाले जलीय जीव मर रहे हैं। विकास को बढ़ावा देने के लिए भूमि में लगातार रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से भूमि बंजर होती जा रही है। इन्हीं समस्याओं के समाधान स्वरूप सतत धारणीय विकास की आवश्यकता विकसित हुई (गुप्ता एवं वास्टाग, 2020)।

सतत विकास लक्ष्य यह बताता है कि लक्ष्य-11 एवं सतत शहर और समुदाय, लक्ष्य-7 जो कि 2030 तक प्राप्त करने पर जोर देता है, विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों, वृद्ध व्यक्तियों और विकलांग व्यक्तियों के लिए सुरक्षित, समावेशी, सुलभ, हरे और सार्वजनिक स्थानों तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना। शहरों में रहने वाले सभी लोगों के लिए, खुले और प्राकृतिक स्थान उनकी भलाई और व्यक्तिगत संतुष्टि की भावना को बेहतर बनाने का अवसर प्रदान करते हैं। कुछ लाभों में हमारी शारीरिक और भावनात्मक भलाई में सुधार, हमारे नेटवर्क को मजबूत करना, और हमारे शहरों और आस-पड़ोस को रहने और

काम करने के लिए अधिक आकर्षक स्थान बनाना शामिल है। एसडीजी-3 लक्ष्य 11.7 से अच्छे स्वास्थ्य और कल्याण में सहायता मिलेगी। शहर के तापमान को कम करके और शहरों को अधिक ऊर्जा कुशल बनाकर ग्रीन स्पेस को बढ़ावा देकर एसडीजी-7 सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा प्राप्त करने में भी मदद कर सकते हैं (https://sdgs.un.org/goals)।

शहरी क्षेत्र के विकास पर शहरी नीतियों का प्रभाव

मानव गतिविधि, हालाँकि, संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित एसडीजी के साथ परस्पर भूमि उपयोग का विरोधाभास उत्पन्न करती है। वैज्ञानिकों और राजनेताओं के लिए मुख्य चुनौती यह है कि पर्यावरण पर मानवीय गतिविधियों के नकारात्मक प्रभावों को कम करना तथा उनसे प्राप्त आर्थिक और सामाजिक लाभों को सुरक्षित रखना। मानव गतिविधि से जुड़े मुख्य खतरों में से एक भूमि की खपत है। सामान्यत: इसको 'भूमि आवरण के प्राकृतिक से कृत्रिम में परिवर्तन' के तौर पर देखा या समझा जा सकता है (नीति आयोग, 2021)।

शहरी क्षेत्रों का प्रगतिशील विस्तार और मानव बस्तियों का बढ़ता प्रसार (अक्सर शहरी फैलाव के रूप में परिभाषित) आसपास की प्राकृतिक भूमि पर, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की सीलिंग होती है। शहरों के निर्माण में इमारतों और सड़कों के लिए डामर या काँक्रीट जैसी कृत्रिम सामग्रियों से पूरे शहरीकृत क्षेत्र को कवर किया जाना तथा उद्यान, पार्क और अन्य हरे-भरे स्थान जो कि खुली सतह के साथ होने चाहिए उनमें भी एक अभेद्य सतह का निर्माण करना, केवल उसकी सुंदरता एवं सुगमता के लिए। यूरोप में अभेद्यता को मिट्टी के क्षरण का सबसे महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। इससे बाढ़ के जोखिम में वृद्धि शामिल है, ग्लोबल वार्मिंग में योगदान, और जैव-विविधता संरक्षण के खतरे का प्रतिनिधित्व करना है (प्रकाश एवं शिमराह, 2023)।

नगरीकरण की व्यवस्था के दौरान एक खास तरह की चिंता उत्पन्न होती है जो यह है कि एक नगर उस उपजाऊ भूमि या प्राकृतिक और अर्धप्राकृतिक क्षेत्रों से आच्छादित जगह पर होता है जहाँ जैव-विविधता पहले से ही मौजूद होती है तथा वहाँ पर निर्माण करके अप्राकृतिक ढंग से बनावटी हरे-भरे क्षेत्रों को विकसित किया जाता है, इस प्रकार शहरी विस्तार और फैलाव एक साथ क्रमिक और व्यवस्थित परिदृश्यों विक्षोभ में योगदान करते हैं (रजिस्ट्रार जनरल, 1993)। नतीजतन, मिट्टी के सीलिंग के परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य तत्वों से मिट्टी अलग हो जाती है; जिसका प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रभाव अमिट होता है, वास्तव में, यह संभावित रूप से मिट्टी या भूमि की कार्यक्षमता या उपयोगिता को पूर्ण हानि या हानि को निर्धारित करता है (तुम्बे, 2016)।

इसके अलावा, भूमि और अन्य पारिस्थितिकी तंत्र के बीच अलगाव भूमि की कार्यक्षमता को इस हद तक कम कर सकता है कि कार्यात्मक हानियाँ तो आंशिक या कुल अपरिवर्तनीय भी हो सकती है। यदि कार्यक्षमता नष्ट हो जाये तो कार्बन सिंक के रूप में कार्य करने के लिए भूदृश्यों की क्षमता भी समाप्त हो जाती है। इसके अलावा, शहरी क्षेत्र गर्म लहरों

और शुष्क जलवायु से अधिक प्रभावित होते हैं, क्योंकि आसपास के वातावरण में वाष्पीकरण होता है जिससे पारिस्थितिकी तंत्र अधिक खंडित हो जाते हैं, परिणामस्वरूप यह वातावरण कई प्रजातियों के लिए खतरा उत्पन्न करता है और इस प्रकार जैव-विविधता को भी नुकसान पहुँचता है। इसलिए भूमि का तर्कसंगत उपयोग एवं मिट्टी का संरक्षण बहुत उच्च पर्यावरणीय कारक माना जाना चाहिए। इनका यथोचित उपयोग न करने से न केवल भूमि अपितु आसपास के पूरे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचता है। इन कारणों से, इसे हर भू-उपयोग योजना और डिजाइन में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य होना चाहिए (प्रकाश एवं शिमराह, 2023)।

निष्कर्ष

जैसा कि हमारी पृथ्वी 1:3 के अनुपात (जल-थल) में बँटी हुई है उसी प्रकार नगरीकरण का भी अनुपात है जो कि कुछ 3:30:60 के अनुपात में बटा हुआ है। यहाँ 3 प्रतिशत यह दर्शाता है कि उपलब्ध भू-भाग 30 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या का आधार है तथा 60 प्रतिशत जी.डी.पी. इसके द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जनसंख्या एवं क्षेत्रफल के आधार पर शहरी क्षेत्रों का विस्तार तीव्र एवं समावेशीय विकास के उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए। शहरों के विकास को रोकने के लिए किसी भी सार्वजनिक नीति के साधनों की आवश्यकता नहीं है, इसका मतलब छोटे शहरों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। जरूरी सेवाएं जैसे सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, स्थानीय सड़के, प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवायें शहर के आकार के समान निरपेक्ष रूप से उपलब्ध कराई जानी चाहिए। हालांकि,यह पूरी तरह से प्रवास को बंद नहीं कर सकता परन्तु कुछ हद तक रोक जरूर सकता है और ऐसा भी नहीं है कि यह एक आदर्श शहर के दर्जे को दर्शाये (नीति आयोग, 2021)।

यद्यपि आर्थिक विकास के लिए घनत्व और पैमाना आवश्यक है लेकिन यह संसाधनों के आवंटन (भूमि) के जैसी बाहव्यताओं को जन्म दे सकते हैं। शहरी नियोजन को अपना ध्यान ऐसे बाहरी प्रभावों के प्रबंधन पर लगाना चाहिए न कि सीधे घनत्व को नियंत्रित करने पर। बाहव्यताओं के प्रबंधन के लिए मूल्य निर्धारण एक विकल्प हो सकता है। भूमि और संपत्ति के अधिकारों की गड़बडी को सुलझाया जाना चाहिए। अवैध कब्जा करने वालों पर सख्त कार्यवाही और वास्तविक अधिकारियों को मान्यता दी जानी चाहिए।

सड़कों, स्कूलों, स्वास्थ्य सुविधाओं, पार्कों और खेल के मैदानों जैसे सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए पर्याप्त, भूमि प्राप्त करना शहरी नियोजन की मुख्य चुनौती होती है जिसके लिए अनिवार्य अधिग्रहण की शक्तियों का उपयोग, टाउन प्लानिंग योजनाओं के रूप में भूमि पुनर्समायोजन या उपयोग और उपविभाजन के रूपांतरण की शर्तों का उपयोग इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक रूप से किया जा सकता है।

संक्षेप में, भारत में शहरी नियोजन के लिए नया प्रतिमान समशिष्ट आर्थिक नीतियों, पर्यावरण हितकारी तथा समावेशीय विकास के अनुरूप होना चाहिए। शहर के आकार के वितरण को 'सुधार' करने का प्रयास छोड़ना होगा। स्थानीय स्तर पर हस्तक्षेपों को 'अच्छे शहर' के सिद्धांतों द्वारा नहीं बल्कि बाहव्यताओं को नियंत्रित करने की आवश्यकता द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए (गुप्ता एवं वास्टाग, 2020)। यह शहरों के विस्तार और उच्च घनत्व को बनाये रखने के लिए आक्रामक रूप से बुनियादी ढाँचा प्रदान करने की आवश्यकता को नकारने के लिए नहीं है। बुनियादी ढाँचे में निवेश के लिए वित्तीय संसाधनों के सृजन को रियल स्टेट विकास से भी जोड़ा जा सकता है। वास्तव में, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तथा भविष्य के नीतिगत आख्यान का उद्देश्य प्रतिस्पर्धी रहने योग्य और विश्वसनीय शहरों को बढ़ावा देना, जिससे हरे-भरे क्षेत्रों का समान रूप से संरक्षण एवं विकास शहरी नियोजन अभ्यास में वास्तव में परिलक्षित हो (तुम्बे, 2016)।

संदर्भ

भगत, आर.बी. (2011): इमर्जिंग पैटर्न ऑफ अर्बनाइजेशन इन इंडिया, *इकोनॉमिक एवं पॉलिटिकल वीकली* XIVI(34), पृ. 10-12।

चक्रधर, अशोक. (2014): *गाँधी : मेरा जीवन ही मेरा संदेश*, कैंपफायर ग्राफिक नोवल्स, भारत।

गुप्ता, जी.एस. एवं वास्टाग, जी. (2020): *सस्टेनेबल डेवलेपमेंट एण्ड रेलवेंस ऑफ एन्सिएंट विजडम*।

कामथ, एल. और जकारिया, वाई. (2015): इम्पैक्ट ऑफ जेएनएनयूआरएम एण्ड यूआईडीएसएसएमटी/ आईएचएसडीपी प्रोग्राम्स ऑन इन्फ्रास्ट्रक्चर एण्ड गवर्नन्स आउटकम्स इन इंडियन सिटीस/ टाउन्स, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज।

नीति, आयोग. (2021): *इंप्रूविंग अर्बन प्लानिंग कैपिसिटी इंडिया* (फाइनल रिपोर्ट), सितंबर, नई दिल्ली।

प्रकाश, टी. और शिमराह, टी. (2023): अ रिव्यू ऑन सॉइल कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन इन डिफरेंट लैंड यूज एंड लैंड कवर, *इकोलॉजी एनवायरनमेंटल कंजर्वेशन*, 29, एस332-एस340।

शिवागमकृष्णन्, के.सी., कुंडू, ए. और सिंह, बी.एन. (2007): *बुकलेट : अर्बनाइजेशन इन इंडिया*, ओ.यू. पी. कैटेलॉग,ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, एडिशन 2।

सेंसेज ऑफ इंडिया, इमर्जिंग अर्बनाइजेशन ट्रेंड इन इंडिया, *ओकेजनल पेपर नंबर 1* ऑफ 1993, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली (https://sdgs.un.org/goals)

तुम्बे, चिन्मय. (2016): *अर्बनाइजेशन, डेमोग्राफिक चेंज एंड अर्बन डेवलेपमेंट इन इंडिया*, रेफरेंस नंबर सी-35205-आइएनसी-1 (इंटरनेशनल डेवलेपमेंट सैंटर, 2016)।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 83-97)
UGC-CARE (Group-I)

समग्र शिक्षा योजना में नामांकन, धारण एवं अवरोधन का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुनील कुमार दूबे[*] एवं रश्मि श्रीवास्तव[†]

समग्र शिक्षा योजना भारत सरकार द्वारा संचालित विद्यालयी शिक्षा योजना है, जिसका उद्देश्य 6 से 14 वर्ष की आयु के विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। विद्यालय में विद्यार्थियों के नामांकन एवं धारण को प्राप्त करना और अवरोधन को दूर करना इस योजना का महत्वपूर्ण पहलू है। नामांकन एवं धारण का अर्थ है किसी लक्षित आयु वर्ग के विद्यार्थियों को विद्यालयों में नामांकित करना। विद्यालय में अवरोधन का मुख्य कारक जैसे गरीबी, बाल श्रम, लिंग भेदभाव, सामाजिक रीति-रिवाज और विकलांगता है। इस अवरोधन को दूर करने के लिए सरकार, शिक्षाविदों, गैर-सरकारी संगठनों और समुदायों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है। समग्र शिक्षा योजना ने भारत में शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है। नामांकन दर में वृद्धि और अवरोधों में कमी आई

[*]सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, ब्रह्मस्थान, कटनी (म.प्र.)
E-mail: sunil333dubey@gmail.com
[†]सहायक आचार्या, शैक्षिक अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, पुर्वी चम्पारण (बिहार). **E-mail: rashmisrivastava@mgcub.ac.in**

है। शोधार्थी ने अन्वेषणात्मक विधि का उपयोग करके असम्भाव्य प्रतिदर्शन विधि के माध्यम से 30 विद्यालय के 30 प्रधानाचार्य से आँकड़ों का संकलन किया और पाया कि विद्यालय में समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद विद्यालयों में विद्यार्थियों का नामांकन एवं धारण बढ़ा है और अवरोधन में कमी आयी है। प्रस्तुत शोध आलेख में समग्र शिक्षा योजना में नामांकन, धारण एवं अवरोधन का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द - नामांकन, धारण, समग्र शिक्षा योजना एवं शैक्षिक वातावरण।

प्रस्तावना

समग्र शिक्षा योजना, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2017) द्वारा प्री-नर्सरी से कक्षा-12 तक की विद्यालय शिक्षा से संबंधित एक एकीकृत योजना है समग्र शिक्षा योजना से पूर्व केंद्र सरकार की तीन योजनाएँ थी - 1. सर्व शिक्षा अभियान, 2. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान तथा 3. शिक्षक शिक्षा संस्थान पृथक-पृथक रूप में कार्य करती थी जिसके कारण इन योजनाओं द्वारा संचालित कार्यों में पुनरावृति हो रही थी। अत: भारत सरकार ने इन तीनों योजनाओं को सम्मिलित रूप से विद्यालय शिक्षा के लिए एक एकीकृत योजना के अंतर्गत रखा जिसका नाम 'समग्र शिक्षा योजना' है। समग्र शिक्षा योजना का मुख्य लक्ष्य विद्यालय शिक्षा में सुधार कर इसकी गुणवत्ता को बढ़ाना है। यह योजना प्री-स्कूल से लेकर उच्च माध्यमिक अर्थात प्री-नर्सरी से कक्षा-12 तक विद्यालय को निरंतरता के रूप में मानती है। "प्राथमिक शिक्षा के संख्यात्मक एवं गुणात्मक विकास के साथ समाज के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों, बाल श्रमिकों, सड़कों पर जीवन जीने वाले विद्यार्थियों, प्राकृतिक दृष्टि से कठिन परिस्थितियों में रहने वाले विद्यार्थियों को और 9 वर्ष से अधिक आयु के स्कूल ना जाने वाले विद्यार्थियों के लिए बनाई गई इसके साथ ही विद्यालय में विद्यार्थियों के नामांकन, धारण एवं अवरोधन को सुधारना था" (सर्व शिक्षा अभियान, 2001)। "भारत की विद्यालयी शिक्षा में प्रचलित पाठ्यचर्या का संवर्धन करते हुए विद्यालय के पाठ्यक्रम का निर्माण उसकी सामाजिक उपयोगिता के अनुरूप किया जाए एवं कक्षा में शिक्षण करते समय शिक्षक पाठ्यक्रम को दैनिक जीवन से जोड़ते हुए पढ़ाए जिससे विद्यार्थियों का विद्यालय आने में मन लगे" (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2005)। "शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए भारत सरकार ने संविधान में 86वाँ संविधान संशोधन-2002 करते हुए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया जिसमें 6 से 14 वर्ष तक के सभी विद्यार्थियों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मिलेगी" (शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009)।

शोध का महत्व एवं आवश्यकता

विद्यालय में नामांकन एवं धारण करना विद्यार्थियों के शिक्षा अधिकार को पूरा करने के लिए आवश्यक है। विद्यार्थियों के समग्र विकास और राष्ट्र के विकास के लिए सभी का शिक्षित होना आवश्यक है। सरकार, समुदाय और अभिभावकों को मिलकर प्रयास करना

चाहिए कि सभी बच्चे नामांकित हों और नियमित रूप से विद्यालय जाएं जिससे विद्यालय में अवरोधन ना हो। उत्तर-प्रदेश राज्य में शैक्षिक रूप से समग्र शिक्षा योजना लागू हुए 6 वर्ष बीत चुके हैं। विद्यालय शिक्षा के अंतर्गत समग्र शिक्षा योजना के संदर्भ में नामांकन, धारण एवं अवरोधन का आकलन किया जाना प्रासंगिक है।

शोध प्रश्न

समग्र शिक्षा योजना के आरम्भ होने से पूर्व एवं क्रियान्वयन होने के पश्चात् हितधारकों किस प्रकार से विद्यार्थियों के नामांकन, धारण एवं अवरोधन को बढ़ा रहे थे?

शोध उद्देश्य

समग्र शिक्षा योजना के आरम्भ होने से पूर्व एवं क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों के नामांकन, धारण एवं अवरोधन पर हितधारकों के मतों का अध्ययन करना।

संबंधित साहित्य समीक्षा

सनाढ्य (2000) ने 'प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में शैक्षिक परियोजनाओं की भूमिका' विषय पर अध्ययन किया। उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि का उपयोग करते हुए इलाहबाद जिले के 10 विद्यालयों के 20 शिक्षक, 20 अविभावकों, 20 विद्यालय प्रबंधन समिति सदस्यों से स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से आँकड़ों का संकलन करते हुए निष्कर्ष पर पहुचें कि विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की सहायता से एवं शिक्षकों और विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों द्वारा चलाये गये जागरूकता अभियान से विद्यार्थियों के नामांकन एवं धारण में वृद्धि हुई है।

सिंह (2006) ने 'उत्तर प्रदेश में जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना द्वारा पोषित एवं अपोषित प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों की बुद्धि, उपलब्धि, नामांकन एवं धारण दर का तुलनात्मक अध्ययन' किया और पाया कि जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना द्वारा संचालित सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के बालक एवं बालिकाओं की मानसिक योग्यता गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के बालक एवं बालिकाओं से अधिक है। जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना द्वारा संचालित सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के बालिकाओं के धारण गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के बालिकाओं से कम है। बालिकाओं के कम धारण के पीछे माता-पिता या अभिभावकों की उदासीनता है।

सचदेवा (2016) ने 'ए स्टडी आफ इंपैक्ट राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान इन इंवॉल्वमेंट एंड पेरेंट्स सेटिस्फेक्शन इन रुरल स्कूल ऑफ सुदेरबानी' विषय पर अध्ययन किया और पाया कि माध्यमिक विद्यालयों में छात्र एवं छात्राओं के नामांकन में अंतर है। छात्रों का नामांकन छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। माध्यमिक विद्यालयों में छात्र एवं छात्राओं के अवरोधन में अंतर नहीं है, अर्थात जो भी विद्यार्थी विद्यालय में नामांकन लेते हैं वह विद्यालयी शिक्षा पूरा कर रहे हैं।

पेथ एवं अन्य (2019) ने अपने शोध पत्र 'केस एंड सलूशन ऑफ स्कूल ड्रॉपआउट: ए केस स्टडी इन सेकेंडरी स्कूल ऑफ कांपोंग स्पू प्रोविंसेस कम्बोडिया' में गुणात्मक शोध के अंतर्गत केस स्टडी के माध्यम से पाया कि विद्यालयों में भौतिक संसाधनों की कमी, विद्यालयी पाठ्यक्रम की दैनिक जीवन से व्यवहारिकता की कमी एवं माता-पिता के कम जागरूक होने से, माता-पिता के वित्तीय हालत अच्छे न होने के कारणों से कंपोंग स्पू प्रांत के विद्यार्थी स्कूल छोड़ते हैं। विद्यालयों में भौतिक संसाधनों जैसे - विद्यालयी कक्षा-कक्षा का निर्माण, कक्षा-कक्ष का हवादार होना एवं पाठ्यक्रम को दैनिक जीवन से जोड़कर शिक्षा प्रदान करना, विद्यालय के द्वारा समाज में जागरूकता फैलाना एवं सरकार द्वारा विद्यालयी शिक्षा के प्रति अधिक सचेत होने से एवं शिक्षा को रोजगारपरक बनांने से विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति लगाव होगा जिससे विद्यार्थी विद्यालय में नामांकन लेने के पश्चात शिक्षा पूरी करेगें।

नबी (2020) ने अपने शोध पत्र 'ए स्टडी ऑफ राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान स्कीम इन डिस्टिक पुलवामा ऑफ जम्मू एंड कश्मीर' विषय पर अध्ययन किया और पाया कि पुलवामा जिले के विद्यालयों में अनेक सुविधायें जैसे - विद्यालयी कक्षा-कक्ष, पीने योग्य पानी की सुविधा, पुस्तकालय, विज्ञान प्रयोगशाला और खेल के मैदान की सुविधा है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत संचालित माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षणिक वर्ष 2015-2019 में विद्यार्थियों के नामांकन एवं धारण में सुधार हुआ है जिसमे लड़कियों के नामांकन एवं धारण में 52.22 प्रतिशत तक की वृद्धि एवं लडकों के नामांकन एवं धारण में 47.78 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

प्रदत्तों का संकलन

प्रस्तुत शोध अध्ययन में तथ्यों के संकलन के लिए उत्तर-प्रदेश राज्य के विन्ध्याचल मंडल के तीन जिले जिसमें मिर्जापुर जिले के 10 विद्यालय के 10 प्रधानाचार्य, सोनभद्र जिले के 10 विद्यालय के 10 प्रधानाचार्य एवं संत रविदास नगर भदोही जिले के 10 विद्यालय के 10 प्रधानाचार्य से अर्द्ध संरचित साक्षात्कार विधि का उपयोग करके आँकड़ों का संकलन किया गया है। विद्यालय के शैक्षिक सुविधाओं से संबंधित प्राप्त आँकड़ों को निम्नलिखित सांख्यिकी विधियों के माध्यम से दर्शाया गया है। विद्यालय के प्रधानाचार्यों से प्राप्त आँकड़ों की सामान्य आवृत्ति प्रतिशत ज्ञात करते हुए विश्लेषण किया गया है। विद्यालय के प्रधानाचार्यों से प्राप्त आँकड़ों को भी सामान्य आवृत्ति प्रतिशत ज्ञात करने के बाद तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

संबंधित प्रदत्तों का विश्लेषण तथा परिणामों का निर्वचन अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है -

1. समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों का नामांकन किस प्रकार का था?

तालिका 1

समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के नामांकन की स्थिति के उप विषय का प्रतिशत

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के नामांकन के उप प्रसंग की विषय स्थिति	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	छात्राओं का नामांकन	10.00
2.	नामांकन के माह	6.66
3.	अभिभावकों की इच्छा	23.33
4.	औसत नामांकन	40.00
5.	उम्र बाधा	3.33
6.	गृह कार्य	10.00
7.	दैनिक आजीविका	6.66

तालिका 1 से स्पष्ट है कि विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने अपने साक्षात्कार में बताया कि समग्र शिक्षा योजना के प्रारंभ होने से पूर्व बालकों का नामांकन बालिकाओं के नामांकन से काफी अधिक था बालिकाओं के नामांकन में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालिकाओं का नामांकन कराने के लिए लगातार प्रयास किया जाता था लेकिन यह प्रयास अत्यधिक सफल नहीं हो पा रहा था। माता-पिता/अभिभावक अपनी इच्छा एवं सुविधा के अनुसार संबंधित विद्यालय में बालक एवं बालिकाओं का नामांकन करवाते थे। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने अपने साक्षात्कार में बताया कि शिक्षा-सत्र को जुलाई माह से परिवर्तित कर अप्रैल माह कर दिया गया है फिर भी अधिकतर नामांकन माह जुलाई में ही होता था इससे नामांकन में कमी आती थी जब शोधार्थी ने पूछा कि नामांकन में कमी का कारण क्या था तब प्रधानाचार्यों ने बताया कि सरकार के आदेशानुसार जुलाई माह में नामांकन की प्रक्रिया को बंद कर देना पड़ता था। विद्यालय के 23.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि माता-पिता/अभिभावकों का मानना था कि सरकारी विद्यालयों में पढ़ाई-लिखाई अच्छी नहीं होती है इसलिए यह नामांकन माता-पिता/अभिभावक के इच्छा पर निर्भर था। विद्यालय के 40 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने से पहले विद्यार्थियों का नामांकन औसत था। 3.33 प्रतिशत प्रधानाचार्य ने बताया कि नामांकन की उम्र निर्धारित नहीं होने के वजह से विद्यालय में अपने हिसाब से उम्र निर्धारित कर लिया जाता था जिसकी वजह से विद्यार्थियों का कक्षाओं में नामांकन नहीं हो पा रहा था कोई बच्चा छोटी उम्र में या बड़ी उम्र में नामांकन के लिए आता था तो शिक्षकों के विवेक पर निर्भर था कि बच्चे को नामांकित किया जाए या नहीं। 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय के शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को गृह कार्य करने के लिए दिया जाता था तो कुछ विद्यार्थी गृह कार्य नहीं करते थे तो उनको शारीरिक दंड दिया जाता था जिसको देखकर विद्यार्थियों में यह

धारणा बन गयी थी की सरकारी विद्यालय के शिक्षक गृह कार्य नहीं करने पर बहुत मारते है इसलिए विद्यार्थी नामांकन करवाने से डरते थे। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय गाँव में होने की वजह से पिछड़े वर्ग के बच्चे दैनिक आजीविका के कार्यों जैसे - रोटी, कपड़ा एवं मकान की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे रहते थे इससे नामांकन प्रभावित होता था।

2. समग्र शिक्षा योजना का क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों का नामांकन किस प्रकार से है?

तालिका 2
समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात्
विद्यार्थियों के नामांकन प्रतिशत की स्थिति

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों के नामांकन की स्थिति	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	उम्र आधारित नामांकन	10.00
2.	रैली का आयोजन	6.66
3.	शिक्षा का महत्व	10.00
4.	विद्यालय की भूमिका	13.33
5.	लिंग असमानता	10.00
6.	समावेशी शिक्षा	6.66
7.	सरकार की भूमिका	20.00
8.	गोष्टी का आयोजन	6.66
9.	नामांकन मेला	6.66
10.	पूर्व कीतरह नामांकन	10.00

तालिका 2 से स्पष्ट है कि समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के पश्चात विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में विद्यार्थियों के नामांकन की उम्र निर्धारित किया गया है जिससे कोई भी विद्यालय किसी भी विद्यार्थी के माता-पिता/ अभिभावकों को उम्र के आधार पर नामांकन करने से मना नहीं कर पाते है अब नामांकन आधार कार्ड पर अंकित आयु के आधार पर किया जाने लगा है जिससे नामांकन बढ़ा है। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यार्थियों को नामांकित करने के लिए विद्यालय के द्वारा रैली निकाली जाती है, माता-पिता/अभिभावकों से बातचीत की जाती है, जिससे नामांकन बढ़ा है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यार्थियों के नामांकन में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है समाज के अंतिम छोर पर बैठे व्यक्ति भी शिक्षा के महत्व को समझ रहे हैं तथा विद्यालय के 13.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में विद्यार्थियों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है यथा - बैग, भोजन, गणवेश तथा चिकित्सकीय जांच, जो नामांकन के लिए प्रेरित कर रही है

और बालकों के साथ-साथ बालिकाओं के नामांकन भी लगातार बढ़ रहे हैं। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि समग्र शिक्षा योजना का क्रियान्वयन होने के पश्चात लिंग असमानता को दूर किया गया जिससे बालिकाएं शिक्षा पर अधिक ध्यान दे रही हैं साथ ही बालिकाओं के माता-पिता/अभिभावक को शिक्षा के महत्व और उसका दायित्व बताया जाता है जिससे बालिकाओं का नामांकन अधिक हो रहा है। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि वर्तमान समय में शिक्षा समावेशी होने की वजह से दिव्यांग विद्यार्थियों का विद्यालय के प्रति लगाव बढ़ा है जिससे नामांकन में वृद्धि हुई है। विद्यालय के 20 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि नामांकन का आधार सार्वभौमीकरण है। सार्वभौमीकरण शैक्षिक कार्यक्रमों की वजह से विद्यार्थियों की भागीदारी बढ़ रही है स्कूल में पर्याप्त मात्रा में सुविधाएं उपलब्ध हैं, जैसे - दोपहर का भोजन, पानी, शौचालय, खेल की सामग्री, योग्य शिक्षक एवं उपयुक्त शैक्षिक वातावरण की वजह से बच्चे विद्यालय में नामांकित हो रहे हैं। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में नामांकन के लिए गोष्ठी का आयोजन करते है जिसमें विद्यालय के समीप गाँव के सभी लोगों को बुलाकर शिक्षा के महत्व को बताया जाता है जिससे विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि हो रही है। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में नामांकन बढ़ाने के लिए नामांकन मेला का आयोजन अप्रैल माह में आयोजित करते है एवं बाल संसद के सदस्यों की सहायता से पोस्टर पर शैक्षिक उपदेश लिखकर गाँव का भ्रमण करते है जिससे विद्यार्थियों के माता-पिता/अभिभावक नामांकन करवाने के लिए विद्यालय आते है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में नामांकन पूर्व की तरह ही है।

परिणाम : शोधार्थी ने साक्षात्कार के बाद पाया कि समग्र शिक्षा योजना के पूर्व में संचालित सर्व शिक्षा अभियान के समय विद्यार्थियों के नामांकन में विभिन्न कारणों जैसे - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालिकाओं का नामांकन कम होते थे, नामांकन के माह बदल जाने की वजह से भी नामांकन में कमी हो रही थी, माता-पिता/ अभिभावकों की इच्छा पर नामांकन निर्भर था। समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद विद्यार्थियों के नामांकन को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा अथक प्रयास किया जाने लगा जिससे प्रधानाचार्यों ने आधार कार्ड/जन्म प्रमाण पत्र पर अंकित उम्र को ध्यान में रखकर विद्यार्थियों का नामांकन करने लगे है साथ ही साथ नामांकन बढ़ाने के लिए रैली का आयोजन करते हुए विद्यार्थियों के माता-पिता/अभिभावकों को शिक्षा के प्रति जागरूक किया जाने लगे जिससे नामांकन में वृद्धि होने लगी। इस परिणाम का समर्थन सनाढ्य (2000) के शोध कार्य से होता है कि शैक्षिक कार्यक्रमों की सहायता से विद्यालय में शैक्षिक वातावरण को समृद्ध बनाते हुए और प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों द्वारा चलाये गये जागरूकता अभियान से विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि हुई है। सरकार द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर समावेशी कक्षा-कक्ष, पुस्तकालय, खेल सामग्री, एवं दिव्यांग विद्यार्थियों को आने-जाने के लिए

व्हीलचेयर के साथ ही साथ समावेशी शिक्षा को बढ़ावा दिया जाने लगा है जिससे विद्यालय में दिव्यांग विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि हुई है। विद्यालय में भौतिक सुविधायें जैसे - विद्यालयी कक्षा-कक्ष, पीने योग्य पानी की सुविधा, शौचालय,पुस्तकालय, विज्ञान प्रयोगशाला, खेल सामग्री और खेल के मैदान की सुविधा जब से विद्यालय में आयी है तब से विद्यालय में विद्यार्थियों के नामांकन में भी वृद्धि हुई है इस परिणाम का समर्थन नबी (2020) के शोध कार्य से होती है कि विद्यालय में भौतिक सुविधा, जैसे - शौचालय, पीने योग्य पानी, पुस्तकालय एवं प्रयोगशाला होने पर विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि हो रही है।

3. समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के धारण किस प्रकार का था?

तालिका 3

समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के धारण की स्थिति का प्रतिशत

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के धारण के उप प्रसंग का विषय	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	आजीविका	23.33
2.	सामान्य धारण	6.66
3.	शिक्षा का प्रभाव	20.00
4.	शैक्षिक वातावरण	13.33
5.	विद्यालय प्रबन्धन समिति	6.66
6.	लिंग भेद/सामाजिक बुराई	10.00
7.	जातीय असमानता	20.00

तालिका 3 से स्पष्ट है कि विद्यालय के 33.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने अपने साक्षात्कार में बताया कि समग्र शिक्षा से पूर्व विद्यार्थियों में यह आम धारणा थी कि शिक्षा उनके दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती है और शिक्षा का तत्कालिक प्रभाव नहीं मिलता है शिक्षा केवल नौकरी हेतु ही आवश्यक है और यह नौकरी वालों के लिए है इसलिए बच्चे आजीविका की व्यवस्था करते थे और विद्यालय में बहुत कम आते थे। 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की सामान्य धारणा थी कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी नौकरी के लिए घर के बाहर ही जाना पड़ेगा तो क्यों न अभी से लग जाए। 20 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि शिक्षा का प्रभाव कक्षा में पास होकर अगली कक्षा में प्रवेश करना है शिक्षा व्यापक रूप से विद्यार्थियों को आत्म-निर्भर नहीं बना पा रही थी। 13.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय के शिक्षक नियमित रूप से शिक्षण कौशल के माध्यम से शिक्षण नहीं कर रहे थे जिससे शैक्षिक वातावरण स्थापित नहीं हो पा रहा था इसलिए भी बच्चे पढ़ने में रुचि नहीं ले रहे थे और विद्यालय प्रतिदिन नहीं आते थे। 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय प्रबंधन समिति का सहयोग कम मिल रहा है। 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में लिंग भेद किया जाता था बालिकाओं का नामांकन तो करवाया जाता था लेकिन उन्हें प्रतिदिन

विद्यालय नहीं भेजते थे। 20 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि समग्र शिक्षा योजना प्रारंभ होने से पूर्व विद्यार्थियों में परस्पर जात-पात के साथ ही साथ धार्मिक भेदभाव एवं छुआछूत की भावना थोड़ी बहुत थी इससे विद्यार्थी आपस में सामाजिक रूप से अलग रहते थे और खेलते समय भी यह ध्यान रखते थे कि हमारे वर्ग का ही विद्यार्थी हमारे साथ खेले इसकी वजह से विद्यालय में विद्यार्थियों के धारण की कमी थी।

4. समग्र शिक्षा योजना का क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों का धारण किस प्रकार से है?

तालिका 4

समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों के धारण की स्थिति

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात विद्यार्थियों के धारण के उप प्रसंग का विषय	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	नवीन शिक्षण विधि	13.33
2.	शिक्षण सहायक सामग्री	10.00
3.	खेल आधारित शिक्षा	10.00
4.	विद्यालय वातावरण	6.66
5.	पाठ्य सहगामीक्रियाएं	20.00
6.	तकनीकी आधारित शिक्षण	10.00
7.	औसत धारण	10.00
8.	समुदाय की भूमिका	20.00

तालिका 4 से स्पष्ट है कि समग्र शिक्षा योजना लागू होने के पश्चात विद्यालय के 13.33 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि कक्षा में नवीन शिक्षण विधि जैसे - कक्षा में गणित सहायक सामग्री, विज्ञान सहायक सामग्री एवं सामाजिक विज्ञान विषय में नाटक, भ्रमण विधि, वाद-विवाद, चर्चा-परिचर्चा एवं शोध के प्रयोग से पाठ्यक्रम को आसानी से पढ़ाया जाने लगा जिससे विद्यार्थियों को पढ़ने में आनन्द आने लगा और बच्चे कक्षा में रुकने लगे। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विधालय में शिक्षक शिक्षण करते समय शिक्षण सहायक सामग्री जैसे- पोस्टर, ग्लोब, विज्ञान को समझने के लिए गिलास में पानी का प्रयोग करके कक्षा-कक्ष का संचालन करने लगे जिससे विद्यालय में विद्यार्थियों का धारण होने लगा। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में कुछ बच्चे ऐसे है जो कक्षा में शिक्षण के समय सीख नहीं पाते है या सीखने में कठिनाई होती है ऐसे विद्यार्थियों को खेल विधि के माध्यम से पढ़ाने का कार्य किया जाने लगा जिससे विद्यार्थियों का मन पढ़ाई में लगने लगा और प्रतिदिन विद्यालय आने लगे है। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय का भौतिक परिवेश काफी सुंदर बनाया गया तथा विद्यालय में कई प्रकार की सुविधाओं जैसे- हवादार

कक्षा-कक्ष, बैठने की व्यवस्था, पानी एवं शौचालय की व्यवस्था को बढ़ाया गया जिससे विद्यार्थियों की धारण में परिवर्तन हुआ तथा विद्यालय आने के प्रति उनका आकर्षण बढ़ा है। विद्यालय के 20 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में हम सभी मिलकर पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर पाठ्य सहगामी क्रियाओं जैसे - वाद-विवाद प्रतियोगिता, नुक्कड़ नाटक, निबन्ध प्रतियोगिता, नृत्य प्रतियोगिता एवं भाषण प्रतियोगिता के माध्यम से विद्यालय में विद्यार्थियों को संलग्न करने का कार्य किया जाने लगा जिससे बच्चे विद्यालय में सक्रिय भूमिका निभाने लगे है एवं विद्यालय प्रतिदिन आने लगे। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद विद्यालय में तकनीकी शिक्षण को बढ़ावा मिला है विद्यालय में टेलीविजन आने के बाद शिक्षक भी फिल्म के माध्यम से शिक्षण करने लगे है जिससे विद्यालय में बच्चे प्रतिदिन आने लगे है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में अभी भी धारण औसत है जब जानना चाहा कि आप लोगो के प्रयास करने के बावजूद धारण क्यों नहीं बढ़ रहा है तब प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि माता-पिता/अभिभावक अभी भी शिक्षा के प्रति उदासीन है जिससे धारण नहीं बढ़ पा रहा है। विद्यालय के 20 प्रतिशत प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय प्रबंधन समिति एवं बाल संसद के सदस्यों के साथ समुदाय में भ्रमण करते हुए लोगो को जागरूक करते है तब समुदाय के लोग भी साथ में भ्रमण करने लगते है और लोगों से आग्रह करते है कि अपने विद्यार्थियों को प्रतिदिन विद्यालय भेजे।

परिणाम : शोधार्थी ने साक्षात्कार के बाद पाया कि समग्र शिक्षा योजना के पूर्व में संचालित सर्व शिक्षा अभियान के समय विद्यार्थियों के धारण में कमी थी इसके पीछे विभिन्न कारण जैसे - दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आजीविका की व्यवस्था करते थे जिससे विद्यालय में बहुत कम आते थे, माता-पिता/अभिभावकों के वित्तीय हालात अच्छी ना होने की वजह से विद्यार्थियों में यह सामान्य धारणा थी कि सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी रोजगार के लिए घर के बाहर ही जाना पड़ेगा इसलिए रोजगार के लिए आस-पास में लग जाते थे जिससे प्रतिदिन विद्यालय नहीं आते थे इस परिणाम का समर्थन पेथ एवं अन्य (2019) के शोध कार्य से होती है कि माता-पिता/अभिभावकों के कम जागरूक होने से, माता-पिता/अभिभावक के वित्तीय हालत अच्छे न होने के कारणों से विद्यार्थी स्कूल छोड़ते हैं। विद्यार्थियों को ऐसा लगता था कि शैक्षिक वातावरण उनके लिए उपयुक्त नहीं है एवं विद्यालयी शिक्षा का प्रभाव विद्यार्थी एवं उनके माता-पिता/अभिभावकों को प्रभावित नहीं कर पा रही थी इसके साथ ही लिंग भेद की वजह से बालिकायें प्रतिदिन विद्यालय नहीं आती थी इसके पीछे का कारण बालिकाओं के माता-पिता/अभिभावकों का शिक्षा के प्रति जागरूक ना होना था इस परिणाम का समर्थन सिंह (2006) के शोध कार्य से होती है कि बालिकाओं के माता-पिता/अभिभावकों में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं है इसलिए अपनी बालिकाओं को प्रतिदिन विद्यालय नहीं भेजते।

समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों को विद्यालय में नवाचार करने की स्वतन्त्रता मिल गयी तब विद्यार्थियों के धारण को बढ़ाने के लिए प्रधानाचार्यों ने शिक्षकों के साथ मिलकर कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में पाठ्यक्रम को नवीन शिक्षण विधि अपनाकर शिक्षण करने लगे, विद्यालयी पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से जोड़कर शिक्षण सहायक सामग्री का निर्माण स्वयं एवं विद्यार्थियों के साथ मिलकर करना, शिक्षा को रोजगारपरक बनाना जिससे विद्यार्थी प्रतिदिन विद्यालय आये इस परिणाम का समर्थन पेथ एवं अन्य (2019) के शोध कार्य से होती है कि विद्यालयी पाठ्यक्रम को दैनिक जीवन से जोड़कर शिक्षा प्रदान करना, सरकार द्वारा विद्यालयी शिक्षा के प्रति अधिक सचेत होने से एवं शिक्षा को रोजगारपरक बनाने से विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति लगाव बढ़ेगा जिससे विद्यार्थी विद्यालय में प्रतिदिन आयेगें। समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद विद्यालय के भौतिक सुविधाएँ जैसे - विद्यालय में हवादार कक्षा-कक्ष का निर्माण, तकनीकी रूप से सुसज्जित कक्षा-कक्ष, पीने योग्य साफ पानी की सुविधा, पुस्तकालय, सामाजिक विज्ञान प्रयोगशाला, विज्ञान प्रयोगशाला, कौशल युक्त सामग्री, खेल सामग्री और खेल के मैदान की सुविधा एवं विद्यालयी गतिविधि को मजबूत करते हुए रोजगार के लिए रोजगारपरक शिक्षा का प्रावधान किया गया है जिससे विद्यालय में विद्यार्थियों के धारण में वृद्धि हो रही है इस परिणाम का समर्थन नबी (2020) के शोध कार्य से होती है कि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए अनेक सुविधायें जैसे - विद्यालय में हवादार कक्षा-कक्ष का निर्माण, तकनीकी रूप से सुसज्जित कक्षा-कक्ष, पीने योग्य साफ पानी की सुविधा, शौचालय, पुस्तकालय की सुविधा अगर विद्यार्थियों को मिले तो धारण में वृद्धि हो सकती है।

5. समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के अवरोधन किस प्रकार का था?

तालिका 5

समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के अवरोधन के कारण

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यार्थियों के अवरोधन के कारण	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	कृषि कार्य	23.33
2.	उदासीन/कमजोर छात्र	10.00
3.	औसत	6.66
4.	बालिकाओं की शिक्षा	23.33
5.	शौचालय/पानी की व्यवस्था	6.66
6.	सामाजिक रूढ़िवादीता	20.00
7.	अभिभावकीय उदासीनता	10.00

तालिका 5 से स्पष्ट है कि विद्यालय के 23.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने अपने साक्षात्कार में बताया कि विद्यालय में कुछ विद्यार्थी घर में हो रहे कृषि कार्य की वजह से प्रतिदिन

नहीं आते थे जब शोधार्थी ने पूछा कि आप माता-पिता/अभिभावक से विद्यालय प्रतिदिन आने के लिए क्यों नहीं कहते थे तब बताया कि माता-पिता/अभिभावक अपने काम में सहयोग लेने के लिए विद्यार्थियों को रोक लेते थे। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय में कुछ विद्यार्थी ऐसे भी थे जो शिक्षा के प्रति उदासीन थे साथ ही साथ पढ़ने में भी कमजोर थे इनके लिए शिक्षकों एवं विद्यालय प्रबंधन समिति से बात करके क्रिया आधारित शिक्षा देने का प्रयास किया जाता था लेकिन कुछ बच्चे अवरोधित हो ही जाते थे। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि विद्यालय में विद्यार्थियों का अवरोधन औसत था। विद्यालय के 23.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने कहा की बालिकाओं का नामांकन तो किसी प्रकार से माता-पिता/अभिभावक करा देते थे लेकिन प्रतिदिन विद्यालय नहीं भेजते थे। विद्यालय के 6.66 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने विद्यालय में पानी एवं शौचालय की उचित व्यवस्था नहीं होने पर भी कुछ बच्चे प्रतिदिन विद्यालय नहीं आते थे फलस्वरूप वे अपने कक्षा-कक्ष की प्रक्रिया पूरी नहीं कर पाते थे। जब शोधार्थी द्वारा जानना चाहा तब प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि बच्चे होशियार होते थे जिसकी वजह से अवरोधित नहीं होते थे। कुछ विद्यालय गाँव में होने से सामाजिक रूढ़िवादिता से ग्रसित थे। जब ऐसे विद्यालय के प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों से साक्षात्कार लिया गया तब 20 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि आदिवासी जगह में विद्यालय स्थापित होने की वजह से दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले वस्तुओं को इकट्ठा करना जैसे - जंगलों से लकड़ियों को इकट्ठा करना, जंगल में पशुओं को चारा के लिए ले जाना एवं अपने ही समाज के लोगो में रहना शामिल है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों ने बताया कि माता-पिता/अभिभावक स्वयं शिक्षित नहीं होने के कारण अपने विद्यार्थियों को भी विद्यालय ज्ञान से दूर रखते हुए घरेलु कार्यों को अधिक महत्व देते थे जिसकी वजह से बच्चे प्रतिदिन विद्यालय नहीं आते थे और अपनी ही कक्षा में अवरोधित हो जाते थे।

6. समग्र शिक्षा योजना का क्रियान्वयन होने के पश्चात् विद्यार्थियों का अवरोधन किस प्रकार से है?

तालिका 6
समग्र शिक्षा योजना का क्रियान्वयन होने के पश्चात्
विद्यार्थियों का अवरोधन की स्थिति

क्र. सं.	समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात विद्यार्थियों के अवरोधन के उप प्रसंग का विषय	आवृत्ति (प्रतिशत में)
1.	कृषि कार्य	13.33
2.	माता-पिता/अभिभावक जागरूकता	10.00
3.	मध्याह्न भोजन	13.33
4.	शिक्षण कौशल	10.00
5.	क्रियात्मक अनुसन्धान	23.33
6.	अतिरिक्त कक्षा का संचालन	20.00
7.	अवरोधन नहीं है	10.00

तालिका 6 से स्पष्ट है कि समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन होने के पश्चात विद्यालय के 13.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि छात्र छात्राओं के माता-पिता/अभिभावक अपने विद्यार्थियों को विद्यालय ज्ञान से अधिक कृषि कार्य में लगाने लगे, विद्यार्थी प्रतिदिन विद्यालय में आने में असमर्थ हो जाते थे जिससे उनकी कक्षा में सहभागिता कम होने लगी उनकी पढ़ाई प्रभावित होने लगी, तब प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने विद्यार्थियों के माता-पिता/अभिभावकों से मिलकर वर्तमान समय में शिक्षा के महत्व को बताया जिससे अब अवरोधन में सुधार होने लगा है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि शिक्षा में अवरोधन का मुख्य कारण विद्यार्थियों के माता-पिता/ अभिभावकों की आर्थिक कमजोरी है जिसके कारण उनकी पूर्ति हेतु विद्यार्थियों से कृषि कार्य एवं मजदूरी आदि काम में सहयोग लिया जाता है जिससे वह अपनी कक्षा में फेल हो जाता था लेकिन समग्र शिक्षा योजना लागू होने के बाद विद्यार्थियों को ऐसी व्यवस्था दी गई है कि वह अपने घर के काम भी कर ले और विद्यालय भी प्रतिदिन आ जाए जिसकी वजह से कक्षा में कोई अवरोधन नहीं है। विद्यालय के 13.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में गरीब तबके के विद्यार्थी पढ़ते-लिखते है जिनके पास खाने-पीने की व्यवस्था की कमी होती है मध्याह्न भोजन में मीनू के अनुसार विद्यालय में भोजन की व्यवस्था होने लगी जिससे विद्यार्थी प्रतिदिन विद्यालय आने लगे जिससे अवरोधन दूर होने लगा। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में अगर कोई बच्चा कमजोर है या उसको शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में रुचि नहीं है तो उसको शिक्षक द्वारा शिक्षण कौशल की नई तकनीकों से जिसे खेल के माध्यम से, आईसीटी के माध्यम से पढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे कि वह अगले कक्षा में प्रवेश कर जाए। विद्यालय के 23.33 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि बच्चे अगर न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो पा रहे है तब हम सभी मिलकर क्रियात्मक अनुसंधान के द्वारा यह जानने का प्रयास करते हैं कि कमी कहाँ है। विद्यालय के 20 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि बच्चे अगर न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो पा रहे है तब हम सभी मिलकर यह जानने का प्रयास करते है कि कमी कहा है उस कमी का पता लगाकर विद्यार्थियों के लिए अतिरिक्त कक्षा-कक्ष का संचालन करके उपचारात्मक शिक्षण शिक्षकों के द्वारा किया जा रहा है जिससे अवरोधन अब नहीं है। विद्यालय के 10 प्रतिशत प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों ने बताया कि विद्यालय में भौतिक सुविधाओं, प्रशिक्षित शिक्षकों, बाल केन्द्रित शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा को शामिल करने के कारण अब विद्यालय में किसी भी प्रकार का अवरोधन नहीं है।

परिणाम : शोधार्थी ने साक्षात्कार के बाद पाया कि विद्यालय में विद्यार्थियों के अवरोधन विभिन्न कारणों जैसे- विद्यार्थी कृषि कार्य की वजह से विद्यालय प्रतिदिन नहीं आते इस वजह से अपनी कक्षा में अवरोधित हो जाते थे, विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति उदासीनता बच्चे अवरोधित हो जाते थे, सामाजिक रूढ़िवादिता से ग्रसित बालिकाओं के माता-पिता/ अभिभावक बालिकाओं का नामांकन तो किसी प्रकार से करा देते थे लेकिन प्रतिदिन

विद्यालय नहीं भेजते थे जिसकी वजह से बालिकाएं अपनी कक्षा में अवरोधित हो जाती थी इसके पीछे की वजह माता-पिता/अभिभावक स्वयं शिक्षित नहीं होने के कारण शिक्षा के महत्व को नहीं समझते थे इसलिए अपने विद्यार्थियों को भी विद्यालय ज्ञान से दूर रखते हुए घरेलू कार्यों को अधिक महत्व देते थे जिसकी वजह से बच्चे प्रतिदिन विद्यालय नहीं आते थे और अपनी ही कक्षा में अवरोधित हो जाते थे इस परिणाम का समर्थन पेथ एवं अन्य (2019) के शोध कार्य से होती है कि कि माता-पिता/अभिभावक शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं होते थे जिससे अपने विद्यार्थियों को प्रतिदिन विद्यालय नहीं भेजते थे जिससे विद्यार्थी कक्षा में अवरोधित हो जाते थे। आदिवासी विद्यार्थी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं को इकट्ठा करने की वजह से प्रतिदिन विद्यालय नहीं आ पाते थे जिसकी वजह से अपनी कक्षा में अवरोधित हो जाते थे। समग्र शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के बाद विद्यार्थियों के अवरोधन दूर करने के लिए प्रधानाचार्य, शिक्षक एवं विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों के साथ मिलकर विद्याथियों एवं विद्यार्थियों के माता-पिता/अभिभावकों को शिक्षा के प्रति जागरूक करने लगे साथ ही साथ विद्यालय में भौतिक व्यवस्था जैसे - कक्षा-कक्ष का निर्माण, समावेशी कक्षा, तकनीकी कक्षा, शौचालय की व्यवस्था, पीने योग्य पानी की व्यवस्था, बिजली की व्यवस्था, रोजगार की शिक्षा के लिए कौशल युक्त शिक्षा, प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा शिक्षण एवं विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से जोड़कर शिक्षकों द्वारा शिक्षण करने से विद्यालयों में अब अवरोधन नहीं है इस परिणाम का समर्थन पेथ एवं अन्य (2019)के शोध कार्य से होता है कि भौतिक संसाधनों जैसे- विद्यालयी कक्षा-कक्षा का निर्माण, प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति, विद्यालयी पाठ्यक्रम को दैनिक जीवन से जोड़कर शिक्षा प्रदान करना, विद्यालय के द्वारा समाज में जागरूकता फैलाना एवं सरकार द्वारा विद्यालयी शिक्षा के प्रति अधिक सचेत होने से एवं शिक्षा को रोजगारपरक बनाने से विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति लगाव होगा जिससे विद्यार्थी विद्यालय में नामांकन लेने के पश्चात प्रतिदिन विद्यालय आयेंगे जिससे विद्यार्थी अपनी कक्षा में अवरोधित नहीं होगें।

निष्कर्ष

समग्र शिक्षा योजना और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मध्य समन्वयक बनाना आवश्यक है। विद्यालय और सरकार मिलकर शिक्षाविदों, गैर-सरकारी संगठनों और समुदायों के बीच सहयोग की नियमित निगरानी और मूल्यांकन करने के साथ-साथ विद्यालय में नामांकन एवं धारण के लिए रैली निकलना, नामांकन मेला का आयोजन करना एवं गाँव में प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ माता-पिता/अभिभावकों को शिक्षा के महत्व के बताने से विद्यालयों में विद्यार्थियों का नामांकन एवं धारण बढ़ा है इसके साथ ही शिक्षकों द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में नवाचार एवं प्रयोग के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं और जागरूकता अभियानों को मजबूत करने से विद्यालय में अवरोधन दूर हुआ है। नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों, कार्यान्वयन कर्ताओं और समुदाय के सदस्यों के लिए मूल्यवान

अंतर्दृष्टि प्रदान करने से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में समग्र शिक्षा योजना में निर्धारित लक्ष्य नामांकन एवं धारण को प्राप्त किया जा सकता है और अवरोधन को दूर करके विद्यालय के शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता हैं।

संदर्भ

एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट. (2020). पंद्रहवीं एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट. http://img.asercentre.org/docs/ASER%202020/ASER%202020%20REPORT/aser2020nationalpressrelease_hindi.pdf

एन.सी.ई.आर.टी. (2009). *पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्.

भारत सरकार. (2017). *समग्र शिक्षा योजना उद्धरित.* https://www.samagra-shiksha-abhiyan-portal-mhrd/

भारत सरकार. (2020). *समग्र शिक्षा योजना उद्धरित.* https://www.education.gov.in.

नबी, एन. (दिसम्बर, 2020). ए स्टडी ऑफ राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान स्कीम इन डिस्ट्रिक्ट पुलवामा ऑफ जम्मू एंड कश्मीर. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स,* 8(12). 3101-3106.

पेथ, केर्डटिप, और सभी; (जुलाई, 2019) केस एंड सलूशन ऑफ स्कूल ड्रॉपआउट: ए केस स्टडी इन लोअर सेकेंडरी स्कूल ऑफ कांपोंग स्पू प्रोविंसेस, कंबोडिया. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट एंड अप्लाइड साइंस,* 5(7). 98-102.

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय. (2014). *राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय वार्षिक रिपोर्ट.* नयी दिल्ली: श्री अरविन्द मार्ग.

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्. (2014). *रिकोग्निशन नार्मस एंड प्रोसिजर्स - रेग्युलेशन 2014.* नयी दिल्ली: एन.सी.टी.ई.

सिंह, एस.के. (2006). उत्तर प्रदेश में जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना द्वारा पोषित एवं पोषित प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों की बुद्धि उपलब्धि एवं नामांकन दर का तुलनात्मक अध्ययन. (*पीएचडी शिक्षाशास्त्र,* वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल यूनिवर्सिटी, जौनपुर, उत्तरप्रदेश). https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/171203

सनाढ्य, ए. (2000). प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिक करण में सचित्र योजनाओं की भूमिका, (*एम.एड. लघु शोध प्रबंध* शिक्षा विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर).

सचदेवा, पी. (दिसंबर, 2016). ए स्टडी आफ इंपैक्ट राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान इन इंवॉल्वमेंट एंड प्रेजेंट सेटिस्फेक्शन रूलर स्कूल ऑफ सुंदरबानी. *इन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड सोशल साइंस,* 3(7-12). 237-242.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 98-113)
UGC-CARE (Group-I)

प्रदूषण की सामाजिकी : गंगा नदी के किनारे के शहर और उसका समाज - कानपुर का संदर्भ

विकास कुमार*

प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य इस बात की पड़ताल करना है कि क्या जल प्रदूषण की समस्या अकादमिक जगत में एक अवधारणा या सैद्धांतिकी के रूप में अपनी जगह बना पायी है? क्या इस सैद्धांतिकी निर्माण में शहरों की भी अपनी कोई भूमिका रही है जिसे अब तक अनदेखा किया जाता रहा है?

परिचय

वर्तमान समय में भारत की नदियां और अलग-अलग जल स्रोत प्रदूषण की चपेट में है जो एक निश्चित समय अंतराल में घटित प्रक्रिया का प्रतिफल है। जल स्रोतों और नदियों को प्रदूषित करने वाले कारकों में एक प्रमुख कारक शहरों की नदियों के समीप बसावट जो एक समय में शहरों का प्रमुख मापदंड हुआ करता था।[1] उदाहरण के लिए, कानपुर, जिसका भूत और वर्तमान भारत के एक प्रमुख औद्योगिक केंद्र के रूप में जाना जाता है जो भारत की

*सहायक प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. **E-mail: vikaskumarsingh523@gmail.com**

सबसे बड़ी नदी गंगा के तट पर बसने वाले प्रमुख शहरों में से एक है।[2] गंगा नदी कानपुर जिले की उत्तर-पूर्वी तथा पूर्वी सीमा के समीप बहती है जो इस शहर के लिए प्रमुख जल स्रोत की केंद्र है। लेकिन गंगा से जोड़ कर बनायी गयी नहरें जाड़ो के दिनों में गंगा का बहुतायत पानी खींच लेती है जिससे कानपुर में पानी का संकट उठ खड़ा हो जाता है[3] और शेष पानी में शहर के सीवेज और औद्यौगिक कचरे को सीधे प्रवाहित कर दिया जाता है[4] जिससे गंगा नदी और उसकी सहायक नदियां[5] और क्षेत्र में मौजूद दूसरे जल स्रोत पूरी तरह से प्रदूषण की चपेट में आ गये है जिससे नदी और उससे जुड़े समाज और उनका इतिहास, परंपरा, कला और संस्कृति जैसे तमाम आधारभूतों पर समाप्ति का खतरा मंडरा रहा है जो समाज के लिए चिंतनीय है।

एक शहर के रूप में कानपुर का इतिहास और उसका विस्तार समय के साथ-साथ कई मायने में बनता और बिगड़ता रहा है जिससे शहर की सीमाओं और उसकी बसावट के भूगोल में निरंतर परिवर्तन देखने को मिला है। कानपुर संयुक्त प्रान्त के दोआब के अधोभाग में अवस्थित एक जिला है जो अपने पूर्ण आकार में असम चतुभुर्ज की भांति दिखायी देता है। जो उत्तर-पूर्व (गंगा पार) अवध के हरदोई और उन्नाव के जिले से सटा है वही दक्षिण में यमुनापार हमीरपुर और जालौन के जिले से लगा हुआ है। साथ ही दक्षिण पूर्व में फतेहपुर जिले की खजूहा तहसील और पश्चिम और पश्चिम-उत्तर में इटावा जिले के औरैया तहसील तथा फर्रुखाबाद की तिर्वा और कन्नौज तहसील से सटा हुआ है। इस शहर का समस्त भूभाग गंगा द्वारा लायी गई मिट्टी के बिछाव से हुआ है। जो इस क्षेत्र के खेती और अलग-अलग पैदावार के लिए उत्पादन में कई वर्षों से महत्वपूर्ण भूमिका में रही है जो इस क्षेत्र में जीविका की प्रमुख स्रोत थी। लेकिन अंग्रेजों द्वारा अपनी छावनी बसाने के साथ-साथ कारखाना खोलने के निर्णय ने कानपुर में व्यावसायिक गतिविधियों में बढ़ोतरी की और शहर में जगह-जगह दुकानें और समान रखने के लिए गोदामों का निर्माण बड़ी संख्या में कराया गया जिसके परिणामस्वरूप कानपुर में कृषि कार्य बहुत दिनों तक प्राथमिक क्षेत्र बनकर नहीं रह पाया और उसकी जगह व्यावसायिक और औद्योगिक गतिविधियों ने ले लिया (त्रिपाठी एवं अरोड़ा, 1940)। जब वर्ष 2018-19 में मेरे द्वारा कानपुर में फील्डवर्क किया गया उस समय कानपुर की व्यवसायिक गतिविधियों पर चर्चा के समय एक व्यक्ति ने यह कहा कि इस देश में जितनी भी महँगी गाड़ियाँ चलती है उसका सबसे पहला शोरूम कानपुर में खुलता है या फिर कोई भी नयी गाड़ी सबसे पहले कानपुर में ही बुक और खरीदी जाती है। यह वाकया इस शहर की व्यवसायिक और औद्योगिक गतिविधियों को प्रदर्शित करने के लिए एक जरूरी साक्ष्य है।

इस पूरे शहरी और औद्योगिक विकास की सबसे दिलचस्प बात यह थी कि कानपुर नगर की आबादी तीन ओर से छावनी से घिरी थी[6] और बहुत हद तक आज भी वैसा ही है जिस कारण शहरी विकास का पहिया केवल एक ही दिशा में घूम रहा था जिससे शहरी बसावट और औद्योगिक कारखाने एक निश्चित भू-क्षेत्र में ही जमा हो गये। लेकिन कानपुर के औद्योगिक विकास को वास्तविक गति 1857 की क्रांति के बाद मिली जिसने नये-नये

औद्योगिक कारखानों की नींव रखी जिसमें चमड़े का कारखाना (हार्नेस फैक्ट्री), सूती मिल (एलगिन मिल) की स्थापना की गई साथ ही कानपुर के आस-पास के क्षेत्रों से, जैसे लखनऊ, मिर्जापुर, फर्रुखाबाद आदि से बड़ी संख्या में मजदूर और व्यापारी यहाँ रोजगार और व्यापार की तलाश में आने लगे या फिर यही पर बस गये जिससे उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के प्रारंभ में शहरी आबादी में गुणात्मक वृद्धि देखी गई। यह गुणात्मक वृद्धि केवल कानपुर तक सीमित नहीं रही और इसका असर पूरे प्रदेश में मजदूरों के भारी-भरकम भीड़ के रूप में दिखाई देने लगी। इस घटनाचक्र को पंजीकृत फैक्टरियों की संख्या और औसत दैनिक कार्यरत श्रमिकों की संख्या के माध्यम से समझ सकते है जो कानपुर सहित प्रदेश के दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों की स्थिति को बयान करते हैं।

तालिका 1

कानपुर में फैक्टरियाँ और कार्यरत श्रमिक

वर्ष	फैक्टरियों की संख्या	औसत दैनिक कार्यरत श्रमिक
1910	220	50,849
1925	276	78,942
1940	578	1,79,735
1955	1,678	2,09,674
1959-60	2,287	2,53,134

स्रोत : ए.एन. अग्रवाला, 'उत्तर प्रदेश' इन टी.एन. कपूर (संपा), इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट इन द स्टेट ऑफ इंडिया, दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर, 1967।

नगर की बढ़ती आबादी को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा नगरीय सुधार के लिए कई तरह के प्रयास किए गये जिसमें तत्कालीन कलेक्टर डब्ल्यू. एस. हालसी. का विशेष योगदान रहा।[7] शहरों से सबंधित कार्यों का जिम्मा स्थानीय सरकार (म्युनिसिपल कमीशन) को सौपा गया। जिसमें शहरों की साफ-सफाई प्रमुख कार्य था। बाद में सामुदायिक सुविधाओं और सेवाओं की पूर्ति की जिम्मेदारी म्युनिसिपल कमीशन को दी गई जिसमें जल आपूर्ति, सीवरेज, जल निकासी, प्राथमिक शिक्षा, सड़कों और गलियों, पार्क और खेल के मैदान आदि शामिल है। इन प्रमुख कार्यों के अलावा भवन निर्माण, गोदामों और कारखानों के लिए निर्माण संबंधित उपनियमों को बनाने और उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी म्युनिसिपल कमीशन को ही सौपी गयी (हॉवर्ड स्पोडेक, 2013)।

उतरोत्तर में आधुनिक तंत्र ने जल निकासी व्यवस्था में अहम बदलाव किया है, अब कंपनी मालिकों के द्वारा प्रदूषित कचरों को बड़े-बड़े बोरवेल के जरिये सीधे जमीन के कोख में बहाया जाता है जो धीरे-धीरे रिसते हुए नदी प्रवाह या फिर भूजल का हिस्सा बन जाता है (विकास कुमार, 2019)। निकासी की इस विधि ने जल के विभिन्न स्त्रोतों को व्यापक पैमाने पर प्रदूषित किया है जिसके कारण भू-प्रदूषण का दायरा पहले से काफी अधिक बढ़ गया है। ऐसा नहीं है कि जल निकासी के आज के बंदोबस्त स्वतंत्रता से पहले नहीं थे या उसका

प्रयोग नहीं किया जाता था बल्कि प्रदूषित जल निकासी के लिए किये गए तरह-तरह के इंतजाम या बंदोबस्त औपनिवेशिक समय में भी काफी प्रचलित थे जिसका जिक्र ऑकलैंड कोल्विन ने अपने लेख में विस्तारपूर्वक किया है (ऑकलैंड कोल्विन, 1894)। लेकिन लम्बे समय तक प्रदूषण संबंधी विषयों पर बहुत विस्तार से चर्चा नहीं हो पाने के कारण प्रदूषण की समस्या अकादमिक जगत में बहस-मुबाहिसों का हिस्सा नहीं बन पायी जिसका खामियाजा यह हुआ कि इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया।

इकीसवीं सदी के पहले दशक में प्रकाशित पुस्तकों और लेखों ने भले ही प्रदूषण की समस्या को प्रमुखता से उजागर करना प्रारंभ किया है लेकिन इससे समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विभीषिका और उसकी व्यापकता बहुत अधिक है। प्रदूषण संबंधी साहित्यों में मोटे तौर पर भारत के प्रमुख शहरी क्षेत्रों (खासकर औपनिवेशिक शासन द्वारा बसाये गये महानगरों) में होने वाले जल संकट और प्रदूषण की समस्या को रेखांकित किया जाता रहा है। लेकिन इन प्रमुख महानगरों से इतर गंगा के मैदानी क्षेत्रों में बसने वाले शहर अभी भी प्रदूषण सबंधी साहित्यों का मुख्य केंद्र नहीं बन पाये है।

जबकि शहरी और पर्यावरण (इसमें प्रदूषण भी शामिल है) से सबंधित विषयों से जुड़े देश और दुनिया के इतिहासकारों,समाजशास्त्रियों और राजनीतिक विचारकों ने इस क्षेत्र में कुछ जरूरी हस्तेक्षप जरूर किया है लेकिन अभी भी यह विषय किशोरावस्था से आगे नहीं बढ़ पाया है। इस विषय क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों और नागरिक समाजों के द्वारा भले ही सरकारों (इसमें राज्य सरकार भी शामिल है) को प्रदूषण की समस्या के निदान के लिए बनायी गई उनकी नीतियों के लिए टोका टोकी किया गया लेकिन इसके बावजूद सरकारों द्वारा किसी भी तरह का कोइ ठोस कदम नहीं उठाया गया या फिर जो भी कदम इस दिशा में उठाये गयें है वह सभी प्रयास नाकाफी मालूम पड़ते है जिससे समस्या की विकरालता काफी बढ़ गयी है।[8] इसलिए समकालीन समय में प्रदूषण और उससे जुड़े पहलुओं पर बात करने की जरुरत है।

प्रदूषण : एक अवधारणा और उसकी सैद्धांतिक निर्मिति

वर्तमान समय में प्रदूषण और उससे जुड़ी समस्याएं आज की हकीकत है जिसे दशकों पहले तक सीमित दायरे में रखकर परिभाषित किया जाता रहा और इससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं को किसी एक क्षेत्र या देश तक सीमित करके देखा और समझा गया। लेकिन वर्तमान समय में प्रदूषण की समस्या अपनी सभी सीमाओं और बाधाओं को लांघकर वैश्विक पटल पर 'गंभीर समस्याओं' के सूची में अव्वल पायदान पर है। जिससे आज के समय में दुनिया का कोई भी देश अछूता नहीं है भले ही उसने इससे मुक्ति के कितने ही उपाय किये हो। प्रदूषण की अवधारणा और उसकी सैद्धांतिकी को समझने से पहले प्रदूषण से जुड़े कुछ मूलभूत सवालों को टटोलना जरुरी है जैसे कि प्रदूषण से आप क्या समझते है और इसका विचार आया कहाँ से? क्या समाज और राज्य के द्वारा किसी परिभाषा का निर्माण किया गया है जिसके जरिये हम प्रदूषण के अर्थ को सरलता से समझ सके? इसी भाग में इस

बात को भी समझने की कोशिश करेंगे की किस प्रकार जल प्रदूषण की समस्या अकादमिक क्षेत्र में एक अवधारणा के रूप में अपनी जगह बना पायी। आखिर में, आज के समय में प्रदूषण और उसकी सैद्धांतिकी को समझना हमारे लिए महत्त्वपूर्ण क्यों है? लेख के इस हिस्से में इन सभी सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश करेंगे।

जल प्रदूषण शब्द से परिचय वर्तमान समाज के लिए नया हो सकता है खासकर की आधुनिक समाज के लिए, लेकिन 'साफ माथे के समाज के' लिए नया नहीं है (मिश्र, 1993)। जो एक समय में देश के कोने-कोने में अपने जल स्रोतों का रखरखाव बहुत व्यवस्थित और सहज ढंग से करता था। वैसे तो प्रदूषण का आगमन मानव की उत्पत्ति और उसके इतिहास के क्रम से जोड़कर देखा जा सकता है लेकिन उस समय प्रदूषण का अर्थ सीधे-साधे अर्थों में अशुद्धता का पूरक था और आज की तरह रासायनिक पदार्थो के द्वारा जल के गुण को परिवर्तित करने से नहीं था। जल की शुद्धता को बनाये रखने के लिए समाज समय-समय पर स्थानीय उपलब्धता को ध्यान में रखकर उपाय खोजता और उसे प्रयोग में लाता।[9] मानव के प्रारंभिक इतिहास पर गौर करे तो पायेंगे कि मानव ने अपने जीवन यात्रा का शुभारंभ ही जल स्रोतों और प्रकृति के संपर्क में रहते हुए किया है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रकृति पर रहा, इसमें भी खासकर जल स्रोतों के ऊपर जो मानवीय क्रियाकलाप की प्रारंभिक भूमि हुआ करती थी और आज भी जस की तस बनी हुई है। मानव आज भी अपने जीवन निर्वाह के लिए पूरी तरह से जल स्रोतों पर ही आश्रित है और कल भी था जिसका प्रयोग वह अन्न उगाने, भोजन पकाने, दिशा मैदान करने और वस्त्रों तथा बर्तनों को धोने के लिए जरूरी समझता था और वर्तमान समय में इन सभी क्रियाओं को रासायनिक घटकों की मदद से करता आ रहा है जिसमें जल का प्रयोग बढ़ गया है जो समाज और सरकार दोनों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है।

पारंपरिक और गांधीवादी चिंतक मानते है कि आधुनिकता से पूर्व मानव का प्रकृति के साथ अत्यंत सघन संबंध होने के बाद भी प्रकृति पर उसका नकारात्मक प्रभाव बहुत ही सीमित था। लेकिन बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक विकास और वैज्ञानिक अन्वेषणों के कारण मनुष्यों के कार्यविधि और कार्यो को संपन्न करने के तौर-तरीको में परिवर्तन के कारण जल प्रदूषण के स्रोतों में भी बढ़ोतरी हुई। इसके बावजूद भी जल प्रदूषण की व्यापकता बहुत सीमित और प्रभावपूर्ण नहीं थी। इसी कारण 19वी शताब्दी के प्रारंभ तक समाज और राज्य के द्वारा प्रदूषण को गंभीर समस्या के रूप में स्वीकार नहीं किया गया, खासकर तीसरी दुनिया के देशों में, जहां औद्योगिक और शहरी गतिविधियाँ पश्चिम के देशों की तुलना में अपने प्रारंभिक अवस्था में थी। लेकिन औपनिवेशिक शासन के आगमन और उनकी औद्योगिक और शहरीकरण की नीतियों के कारण प्रदूषण निर्माण की प्रक्रिया को गति मिली। उदाहरण के लिए, अंग्रेजों द्वारा भारत के अलग-अलग शहरों में छावनियों और औद्योगिक शहरों, मजदूरों के लिए कॉलोनियों का निर्माण कराया गया लेकिन कॉलोनियों की संख्या सीमित होने और मजदूरों की संख्या अधिक होने के कारण प्रदूषण और महामारी अलग-अलग रूपों में सामने

आई। डेविड अर्नोल्ड का मानना है कि 'प्रदूषण' शब्द का प्रयोग 1850 के बाद से स्वच्छता और पर्यावरण अवधारणा के संदर्भ में प्रयोग होना शुरू हुआ। इसके बाद यह शब्द भारत के शहरी केन्द्रों के लिए बनायी जाने वाली स्वच्छता नीतियों में प्रयोग होने लगा (डेविड, 2013)।

19वीं शताब्दी के पांचवे दशक के बाद बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक विकास और आर्थिक गतिविधियों के कारण प्रदूषण के नये-नये स्रोत दृश्यमान हो चुके थे खासकर जल स्रोतों के संदर्भ में जिसके सम्पर्क में आने से पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य और प्रकृति जगत को व्यापक क्षरण होना प्रारंभ हुआ। जिससे समाज और जनमानस के बीच इस आम धारणा को मजबूती मिली कि पश्चिम देशों सहित विश्व के अन्य देशों (जिसमे भारत भी शामिल है) में प्रदूषण की उत्पत्ति का आवश्यक कारण औद्योगिक क्षेत्रों का अत्यधिक और असंतुलित विस्तार है। इन औद्योगिक गतिविधियों से निकलने वाले रासायनिक और अपशिष्ट पदार्थों के निपटान करने की जिम्मेदारी औपनिवेशिक समय से ही नगरपालिका और स्थानीय सरकारों के कंधों पर दी गई थी लेकिन उनके पास तत्कालीन किसी भी तरह की उचित व्यवस्था न होने के कारण इस समस्या को रोक पाने में असफल साबित हुई।

भारत में प्रदूषण की विकरालता और उसके प्रभाव को सबसे पहले शहरी क्षेत्रों खासकर औपनिवेशिक शहरों में सार्वजनिक स्वास्थ्य से सबंधित समस्या के रूप में अनुभव किया गया जिसमे मुख्य रूप से हैजा, आंत्र ज्वर, तपेदिक और जल जनित रोग प्रभावी भूमिका में थे जिन्होंने लम्बे समय तक लोगों के स्वास्थ्य और जीवन को नुकसान पहुँचाया। लेकिन इस समस्या का स्वरुप बहुआयामी और जटिल होने के कारण इसे एकल विधि से हल करना वर्तमान समय में चुनौतीपूर्ण मालूम पड़ता है जिस कारण प्रदूषण की समस्या अलग-अलग रूपों में आज भी हमारे बीच उपस्थित है (लाईबर, 1970)।

हालांकि 20वीं सदी के आठवें दशक के प्रारंभिक वर्षो में वैश्विक स्तर पर प्रदूषण की गंभीरता को समझते हुए एक पहल 'स्टॉकहोम सम्मलेन' के रूप में की गई लेकिन इस प्रयास को भागीदार देशों से सामूहिक बल नहीं मिल पाने के कारण यह सम्मलेन बहुत प्रभावी नहीं रहा और भागीदार देशों में मुद्दों को लेकर सदस्य देशों के बीच सहमति नहीं बन पायी उसमे उत्तर और दक्षिण के देशों के अपने -अपने हितों और प्राथमिकताओ को लेकर टकराव है। अभी तक पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को लेकर स्थापित प्रतिमान काफी हद तक उत्तर के देशों और कुछ हद तक दक्षिण के अभिजात वर्ग के पक्ष में स्थापित है। जो कई तरह की पूर्वाग्रह और भ्रांतियों को जन्म देती है जिसका असर समाज के ऊपर एक नयी तरह की समझ और चिंतन के रूप में हुआ। जैसे, पहली, तीसरी दुनिया के देशों को 'विकास' की जरूरत है और वे प्रकृति और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं की रक्षा करने की विलासिता को नहीं भोग सकते है। दूसरी, पहली से ही संबंधित है, जिसमें यह कहा गया है कि गरीब पारिस्थितिक समाधान का स्रोत नहीं हो सकते हैं, बल्कि वे केवल पर्यावरणीय समस्याओं का स्रोत हैं (वंदना शिवा, 1991)। इस समझ और चिंतन ने एक ऐसे ज्ञान को आगे बढ़ाया जिसकी पहचान एक समय 'प्रकृति के संरक्षण' के रूप में होती थी उन्हें ही उसे नष्ट करने का दोषी के रूप में तब्दील कर

दिया, खासकर के विकासशील देशों के जनमानस को जिनकी सभ्यता प्रारंभ से ही प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर चलने पर आधारित थी (ग्रोव, 1998)। इस पूरी प्रक्रिया को हम चंद्रन, दामोदरन, सकारिया, पडेल और विटसकी के हवाले से समझ सकते है जिन्होंने अपने अध्यायों में इस पूरी घटना की पहचान की है। इसमें इन्होंने बताया है कि कैसे जंगलों से सबंध रखने वाला समाज अपने 'देशज ज्ञान' जो वर्षों से उनके द्वारा अनुभवों के आधार पर अर्जित किया गया उसे एक झटके में पर्यावरण संरक्षण के लिए निराधार मान कर खत्म करने की सोची समझी साजिश की गयी जिसमें औपनिवेशिक शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी।

स्वतंत्रता के बाद के दूसरे दशक में भारत सरकार द्वारा वैश्विक प्रभाव और देश में पर्यावरण संरक्षण के बचाव को लेकर उठ रही आवाजों के कारण प्रदूषण जैसी समस्या के लिए नीति और नियमों का निर्माण किया गया जिससे प्रदूषण और उसके अलग-अलग प्रकारों को नियंत्रित किया जा सके। जिसके लिए, व्यापक अर्थो में एक परिभाषा को निर्मित किया गया। जो इस प्रकार है -

'प्रदूषण, पानी का ऐसा संदूषण है जो भौतिक, रासायनिक या जैविक पदार्थों के द्वारा तैयार या परिवर्तित होता है या फिर सीवेज या व्यापारिक बहि:स्राव, किसी अन्य तरल, गैसीय या ठोस पदार्थ का पानी में (चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से) विलय होने से भी इस तरह का संदूषण तैयार होता है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य और या जानवरों या पौधों या जलीय जीवों के जीवन और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आम तौर पर इस संदूषण का प्रयोग घरेलू, वाणिज्यिक, औद्योगिक, कृषि या अन्य वैध उपयोगों के लिए किया जाता है हालांकि पानी में प्रदूषण की मात्रा अत्यधिक होने पर इसका प्रयोग नहीं किया जाता'।

यद्यपि इस परिभाषा के द्वारा राज्य एक विस्तृत यंत्र का निर्माण करता है जो इस समस्या से निजात पाने के लिए काम करेगा। लेकिन परिभाषित जटिलता के कारण इसको लागू करने वाली इकाइयाँ (केंद्र, राज्य और स्थानीय शासन) समन्वित तरीके से समस्या पर नियंत्रण नहीं कर पायी और उसे कई तरह की मुश्किलों का समाना करना पड़ा। इसके अलावा, दूसरी ओर इसके (प्रदूषण) रोकथाम के लिए बनाया गया तंत्र और उसकी कार्यप्रणाली को लेकर केंद्र और राज्य की विभिन्न इकाइयों में सर्वसहमति नहीं बन पाई है। हालांकि सरकारी पक्ष ने प्रदूषण की सैद्धांतिकी को निर्मित करने में और अकादमिक क्षेत्र में इसकी मौजूदगी को दर्ज कराने में समाज के बाद अपनी शुरूआती भूमिका निभाई है जो कि एक दिलचस्प घटना थी। प्रदूषण की अवधारणा को गढ़ने में जहां एक ओर समाज और राज्य ने अपनी भूमिका निभाई, वही दूसरी तरफ देश और दुनिया में घट रही घटनाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा जिसने प्रदूषण की सैद्धांतिकी को विस्तृत तरीके से निर्मित किया, जिसे सिलसिलेवार तरीके से समझने की जरुरत है। पहला, राचेल कार्सन की अगुवाई में तैयार की गयी 'साइलेंट स्प्रिंग' की रिपोर्ट जिसने मानव समाज को प्रकृति में आ रहे बदलावों के बारे में सोचने और समझने के लिए मजबूर किया और इस बात का यकीन दिलवाया कि मानव द्वारा किये जाने वाले सभी प्रयोगों का प्रभाव प्रकृति को नुकसान पहुंचाने के रूप में पड़

रहा है जिसके बारे में सतत सोचने की जरुरत है (कार्सन, 1963)। दूसरा, भारत सरकार के द्वारा 1974 में बनाया गया 'वाटर एक्ट' - 'जिसका मकसद भारत के सभी जल स्रोतों का प्रदूषण से बचाव और रोकथाम, और साथ ही देश में जल की स्वास्थ्यपरकता को बनाए रखना या बहाल करना'- जो भारत में जल प्रदूषण के रोकथाम को लेकर एक तरह का नया प्रयास था जिसने लोगों और राज्य की सरकारों को प्रदूषण की विभीषिका को जानने और समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (द वाटर (प्रिवेंशन एंड कंट्रोल ऑफ पोल्लुशन) एक्ट, 1974)। तीसरा, 1984 का भोपाल गैस त्रासदी (हजारिका, 1987)। इस घटना ने समाज को अपने दैनिक कार्यो में केमिकल्स के बढ़ते दायरे को समझने और जानने की दृष्टि दी जो इससे पहले तक इस विचार का समर्थक था कि केमिकल्स के बिना मानव जीवन धरती पर सफल नहीं हो सकता। चौथा, न्यायालय के द्वारा छोटे-छोटे अंतरालो पर दिया गया निर्णय खासकर जनहित याचिकाओ के तर्ज पर। जिसने समाज में पर्यावरण को लेकर गंभीरता का रक्तसंचार किया और राज्य को अपने अलग-अलग हथकंडो के द्वारा पर्यावरण को पहुँचाये जाने वाले नुकसान के प्रति सचेत किया और सरकार द्वारा लिए गये निर्णयों पर पुन: सोचने के लिए मजबूर किया (नूरानी,1989)। जिसमें 1986 का 'एम.सी. मेहता बनाम केंद्र सरकार' का प्रकरण भी शामिल है। जो गंगा और उसकी दूसरी सहायक नदियों में बढ़ रहे प्रदूषण को ध्यान में रख सर्वोच्य न्यायालय में याचिका दायर की गयी जिसने राज्य सरकार द्वारा किए जा रहे राहत कार्यों की पोल खोल दी और समाज के सामने राज्य एक नया चेहरा प्रस्तुत किया। आखिर में, समाज हितधारणी संस्थाएं, जैसे, 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट', जिसने समाज को प्रकृति के बारे में सोचने, अपनी समझ बनाने और उसके बचाव के लिए निर्मित की गई विधियों के लिए आवश्यक सामग्री मुहैया कराने का सफल प्रयास किया (अ सिटीजन रिपोर्ट, 1982, 1985)।

प्रदूषण और कानपुर : एक शहरी परिप्रेक्ष्य

किसी भी राष्ट्र के इतिहास का बुनियादी ढांचा उसके स्थानीय इतिहास के द्वारा ही तैयार होता है जो एक लम्बी यात्रा के गुणनफल का परिणाम है जिसके लिए उसे कई अलग-अलग पड़ावों और चौराहों पर ठहर कर गुजरना पड़ता है। जिसका प्रस्थान बिंदु स्पष्ट रूप से गांव है जो आगे चलकर शहर में परिवर्तित होता है और राष्ट्र की इबारत में अपनी भूमिका निभाता है। इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि गाँवों की राष्ट्र की प्रगति में कोई विशेष भूमिका नहीं होती। इसी कड़ी में हम कानपुर के इतिहास को खंगालने का प्रयास करे तो देखेंगे की कानपुर आज जहां भारत के सबसे प्रदूषित महानगरों की सूची में शामिल है,[10] उससे पहले तक वह अपने ग्रामीण परिवेश से निकलकर एक छावनी में परिवर्तित होता हुआ, एक औद्योगिक शहर या यह कहे की 'पूर्व का मेनचेस्टर' के रूप में अपने आप को स्थापित करता है। औद्योगिक शहर के रूप में कानपुर की स्थापना इस शहर को एक अलग पहचान देती है खासकर उत्तर भारत के राज्यों के बीच जहां से बड़ी संख्या में मजदूरों का हुजूम कानपुर

की तरफ रोजगार की तलाश में आगे बढ़ता है जहां वह अपनी जीविका की खोज में न्यूनतम जरूरतों के साथ औद्योगिक क्षेत्रों और शहरी जीवन के बीच जद्दोजहद करता है। समाज के अलग-अलग समूहों के लोग जब शहरों में अपने आप को स्थापित करने की जद्दोजहद करते हुए उन सभी समस्याओं से दो चार होते है जो उनके जीवन यापन के लिए रुकावट का काम करते है जिससे उनको उबरना सरकार और संबंधित संस्थानों का प्रमुख कार्य होता है। प्रदूषण की समस्या उसी रुकवाटों में से एक है जो समाज के सभी समूहों को प्रभावित करता है। जिससे उबारने में सरकारी महकमा पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया।

एक शहर के संदर्भ में प्रदूषण की अवधारणा और उसकी सैद्धान्तिकी के निर्माण को रेखांकित करने की कोशिश करे तो पायेंगे की उसका जुड़ाव शहरों के प्रारंभ और औपनिवेशिक शासन के आगमन से हुआ है। लेकिन इस प्रक्रिया को जानने और समझने से पहले इस बात की पहचान कर लेना जरुरी है कि गांव से शहर बनने तक कौन-कौन से पड़ाव आते है और उन पड़ावों के साथ ही समस्याओं की प्रकृति क्या होती है? समाज और राज्य इन समस्याओं से किस तरह निजात पाता है और उसके लिए किस तरह की पद्धतियों का निर्माण करता है। इसके लिए अवधेन्द्र शरण के उस वर्गीकरण को समझना बहुत जरुरी है जिसे उन्होंने गांव से शहर बनने की प्रक्रिया में समझाया है। उनका मानना है कि गांव से शहर बनने के इतिहास में कई पड़ाव आते हैं और हर एक पड़ाव पर समस्या का प्रकार अलग-अलग होता है और जिसका समाधान किसी एकल विधि के द्वारा नहीं हो सकता। अगर कानपुर (जो की मौजूदा लेख का संदर्भ बिंदु है) के संदर्भ में इस व्याख्या को टटोलने का प्रयास करे तो हम देखेंगे कि कानपुर ने भी अपने ऐतिहासिक से महानगरीय पहचान को इसी रास्ते से गुजर कर हासिल किया है और इस पूरी प्रक्रिया में वहां के रहवासियों की महत्वपूर्ण भूमिका है जिन्होंने हर पड़ाव पर एक अलग समस्या का सामना किया है और अपने समझ और अर्जित ज्ञान से उन्होंने इस समस्या को काफी हद तक रोकने का प्रयास किया जहां राज्य जैसे आधुनिक तंत्र असफल रहे है। अवधेन्द्र शरण आगे कहते है कि पहले पड़ाव में गरीबी और उससे जुड़ी मूलभूत समस्याओं (राज्य की नजर में) या यह कहे कि मूलभूत जरूरतों (समाज) का है जैसे साफ पानी का होना, स्वच्छ वातावरण, शौच का सही प्रबंध का न होना इत्यादि। दूसरा पड़ाव तब आता है जब उद्योग बढ़ता है, और हवा और पानी को दूषित करता है और फिर इससे निपटना होता है, जैसा कि पश्चिम के कई शहरो ने इस पर काबू पाने की भरसक कोशिश की है और कुछ हद तक इसमें कामयाब भी हुए है। तीसरा पड़ाव तब आता है जब उपभोक्तावाद बढ़ता है और इसी के साथ गाड़ियों की संख्या बढ़ती चली जाती है और साथ ही साथ ऊर्जा की जरुरत भी। भारत एवं चीन जैसे विकाशील देशों की विशेषता यह रही है की यहाँ किसी भी पड़ाव पर उभरी समस्या का पुर्णत: समाधान नहीं होता और ना ही कभी इन समस्याओं से निजात पाने की भरपूर कोशिश होती है और इस तरह तीनों ही पड़ाव की समस्या साथ-साथ मौजूद रहती है और भविष्य में विकराल समस्या को बढ़ावा देती है (अवधेन्द्र शरण, 2017)। भारत के शहरों में प्रदूषण की समस्या भी इसी तरह की समस्या है

जिससे किसी भी पड़ाव पर पूरी तरह से रोकने की कोशिश नहीं की गई जिसका खामियाजा यह हुआ कि प्रदूषण अब अपने विकराल रूप में हम सभी के सामने है। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में सबंधित समस्या अपने हर पड़ाव से गुजरते हुए सैद्धांतिकी और अवधारणा का निर्माण करती है जो समस्याओं को हल करने के लिए महत्वपूर्ण कुंजी होती है।

प्रदूषण की सैद्धांतिकी और उसकी अवधारणा निर्माण में जल का महत्वपूर्ण योगदान है खासकर एक नदी के रूप में जिसने औद्योगिक जलपूर्ति के साथ-साथ तैयार सामानों की ढुलाई के लिए एक सार्थक परिवहन की भूमिका निभायी साथ ही साथ लोगों के आवाजाही और दो शहरों के बीच की दूरी को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस पूरे परिवर्तन की प्रक्रिया में शहर अपने संसाधनों की आहुति देता हुआ आगे बढ़ता है जिसका सीधा असर वहां के रहवासियों के जीवन चक्र पर पड़ता है जिसकी जड़ में प्रदूषण अलग-अलग रूपों में अपनी चुनौतियाँ समाज और राज्य के सामने पेश करता है। शहर जिसे आधुनिकता का घटक माना जाता है इस पूरी प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में प्रभावित करता भी है और प्रभावित होता भी है। ज्योति होसाग्रहर कहती है कि शहर वर्तमान समय में आधुनिकता को पेश करने के सबसे जरुरी साधन है जो वहां से सबंधित सांस्कृतिक मूल्यों को भलीभांति तरीके से प्रस्तुत करते है और साथ ही नए निर्माणों के लिए आधार भी मुहैया कराते है (ज्योति होसाग्रहर, 2005)। जो एक तरह से स्थापित परंपरा के विघटन और नये निर्माण के प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित होते है और ये नये निर्माण आधुनिकता के वाहक होते है। हालांकि, आधुनिकता की व्यापकता और उसके प्रसार को लेकर वर्तमान समाज में कई तरह के मतभेद भी है, अर्जुन अप्पादोराई का मानना है की 'आधुनिकता' निर्णायक रूप से बड़े पैमाने पर, अनियमित रूप से, आत्म-जागरूक और असमान रूप से अनुभव की जाती है।[11] जिसे उत्तर और दक्षिण के देशों के संदर्भ में रखकर समझ सकते है जहाँ आधुनिकता और विकास के मानकों को शताब्दियों के मापदंडो पर रखकर टटोला जाता है। आधुनिकता के मापदंडों के इतर, प्रदूषण भी अलग-अलग देशों[12] और अलग-अलग शहरों को उनकी अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि, अपने दैनिक क्रियाकलाप, और प्रदूषित करने की क्षमता के अनुसार प्रभावित करता है और उसी हिसाब से प्रदूषण के लिए जिम्मेदार भी होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते शहरों में सार्वजनिक चिकित्सा को लेकर जो बहसे तेज हुई उसे विज्ञान के ही एक उपभाग के रूप में मान्यता दी गयी खासकर के पश्चिमी यूरोप के शहरों में जिसका सरोकार शहरों में फैलने वाली बीमारियों और उससे होने वाली मौतों को स्वच्छता मानदंडो में सुधार और परिवर्तन करके रोका जा सकता है जो तत्कालीन समय में एक नया विचार था। इस विचार को पश्चिमी देशों के औद्योगिक शहरों में संक्रमणजनित बीमारियों के अत्यधिक प्रसार और प्लेग और हैजा जैसे महामारी का तेजी से फैलने के संकट ने सार्वजनिक चिकित्सा को और अधिक बल दिया (ज्योति होसाग्रहर, 2005)। 1820 तक ब्रिटिश शहरों में खासकर औद्योगिक शहरों में मजदूरों के आशियानों, साफ-सफाई और स्वास्थ्य संबंधी विषयों को प्रमुखता से उठाया गया और महामारियो ने इन

विषयों को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया। उन्नीसवीं सदी के आखिरी सालों में प्रदूषण और उससे होने वाले नुकसान को लेकर एक लम्बी बहस चली खासकर के ब्रिटिश उपनिवेशिक देशों में जिनकी अधिकतर कमान ब्रिटिश ताज के पास थी। हालांकि यूरोपीय देशों में इस तरह की बहसे कई दशकों पहले से ही चली आ रही थी जिसके पीछे का एक मात्र कारण वहां पर 'औद्योगिक क्रांति' का जल्दी आगमन और उसी गति से प्रदूषण और दूसरी समस्याओं का जन्म। भारत में इस बहस की शुरुआत 1857 की क्रांति बाद औपनिवेशिक शासकों द्वारा शहरों के निर्माण और उन शहरों में रहने वाले अंग्रेजी अफसरों का प्लेग, हेजा जैसी महामारियों की चपेट में आने के बाद शुरू हुई जिसने शहरों में साफ-सफाई और गंदे पानी से होने वाले रोगों के प्रति शासकों का ध्यान अपनी तरफ खींचा और प्रदूषण के सभी रूपों के ऊपर सोचने और समझने के लिए बाधित किया। जिसे हम यहाँ बनारस के उदाहरण के जरिये समझ सकते है। बनारस शहर में वहाँ के प्रशासनिक अमले द्वारा शहर की साफ सफाई के लिए यह योजना बनायीं गयी कि शहर का मल भूमिगत पाइपों द्वारा पानी के उपयोग से सीधा गंगा नदी में बहा दिया जाएगा जिससे शहर में गंदगी को फैलने और बीमारियों से लोगों को बचाया जा सकेगा। लेकिन इस योजना ने समाज और प्रशासन को अलग-अलग बिंदुओं पर बाँट दिया जिससे समाज में प्रदूषण और स्वच्छता को लेकर एक नयी बहस को जन्म दिया। जैसे एक समूह के लोगों का मानना था कि चूँकि इंग्लैंड में ऐसा करना (नदी ने मल मूत्र को बहाना) एक कानूनी अपराध है, इसलिए भारत में भी इसकी अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। वही कुछ लोगों का मानना था कि भारत की नदियाँ यूरोप की नदियों से कई रूपों में भिन्न थी और यहाँ ज्यादा तेज धूप पड़ने के कारण पानी में सम्मलित सभी विनाशकारी कीटाणु स्वयं ही मर जाते है, इसलिए यहाँ पर ऐसा करना कोई विशेष दिक्कत की बात नहीं है। लेकिन इस पूरी घटना ने नदियों और उससे जुड़ी प्रदूषण की समस्या की तरफ समाज का ध्यान अपनी ओर खींचा। जिसका परिणाम यह हुआ कि 1930 के बाद के वर्षों में नदी में मैले पानी को बहाने या फिर सिंचाई के लिए उपयोग करने से पहले उसका उपचार किया जाना बाध्यकारी सा हो गया। इस पूरे कार्य को करने के लिए पाइपों का सहारा लिया गया जिससे मैले पानी की ढुलाई ठीक और सटीक दिशा में हो सके। साथ ही पाइपों के द्वारा पानी के ढुलाई से इस समझ को बल मिला कि पाइपों द्वारा नियंत्रित और आवंटित पानी ही पीने के उपयोग के लिए सुरक्षित है। लेकिन जल्द ही इस पूरी योजना पर रोक लग गयी। जिसके दो प्रमुख कारण निकल कर सामने आये है पहला, अंग्रेज सरकार द्वारा नहरों से शहरी हिस्सों में पानी के ढुलाई के लिए प्रयोग में लिए जाने वाले लोहे के पाइपों के मूल्य में कम ही समय में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई जिसके कारण शहरों में पानी के पाइपों को बिछाने में लागत खर्च अधिक आने लगा जिसके कारण अंग्रेज सरकार इस काम को करने से पीछे हटने लगी (त्रिपाठी एवं अरोड़ा, 1940)। दूसरा, 1955-56 के वर्ष में दिल्ली में एक भयंकर बाढ़ का आना जिसके कारण बहुत बड़े पैमाने पर लोग पीलिया के शिकार हुए। जिसके कारणों की जाँच करने पर पता चला कि रिहायशी और औद्योगिक इलाकों का गंदा पानी यमुना में जिस जगह गिरता था वहाँ पेयजल

के लिए इस्तेमाल होने वाले पानी के स्रोत थे जो बिल्कुल ही उससे सटे हुए थे। बाढ़ आने के कारण दोनों स्रोतों का पानी मिश्रित हो गया जिसकी वजह पीने वाला पानी प्रदूषित हो गया लेकिन सावधानी न बरतने के कारण पाइपों द्वारा पानी को शहरो के विभिन्न इलाकों में पहुँचा दिया गया जिसके वजह से बीमारी बहुत व्यापक रूप में फैल गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि सौ वर्षों से अधिक समय में बलवती हुई अवधारणा 'पाइप का पानी ही पीने योग्य है' उस पर सवालिया निशान लग गया और पाइपों द्वारा पहुँचाया जाने वाला पानी अब विनाश का समानार्थी प्रतीत होने लगा (अवधेन्द्र शरण, 2017)।

वही दूसरी ओर इस पूरी प्रक्रिया ने समाज को पानी और उसके उपयोग को लेकर काफी जागरूक किया और समाज में बदलाव की चेतना का प्रस्फुटन किया जिससे समाज में लोगों का एक नया समूह बनकर तैयार हुआ जो पानी के बचाव और संरक्षण को अपना प्रमुख कार्य समझने लगा जिसके वह अपने आप को समर्थित समझते थे। इस सब में सबसे ज्यादा बदलाव नदी के प्रति लोगों की सोच में आया है।

लेकिन फिर भी समाज में दो तरह की प्रवृतियाँ मौजूद थी और आज भी विद्यमान है। एक, प्रशासनिक अमला, जो बड़े-बड़े संयंत्रों के जरिये नदियों को साफ करना चाहता है जो आधुनिकता और तकनीक के सामंजस्य का उदाहरण है। जैसे ओखला संयंत्र जो दिल्ली में यमुना की सफाई के लिए बनाया था ताकि यमुना में गिरने वाले मैले जल (घरेलू और औद्योगिक निकायों से निकलता है) को साफ किया जा सके जिससे नदी का पानी अपनी प्राकृतिक स्वरूप को बनाए रखे लेकिन यह पूरी तरह से संभव नहीं हो सका और उसके बाद से दिल्ली में दर्जनों ही प्लांट बनाये गये पर यमुना साफ नहीं हुई। दूसरी तरफ वह लोग है जो नदी के बारे में गहरी चिंता रखते है उनका मानना है कि हमे नदी के प्रति अपने देखने और बरतने के खैये को ही बदलना होगा और यह तभी संभव होगा जब नदी के प्राकृतिक प्रवाह और उसके आस-पास की जमीन और उन सभी गतिविधियों को रोकना होगा। अंत: सवाल सिर्फ पैसे और बड़े-बड़े प्रोजेक्ट्स का नहीं है और न ही उसके पुनरुद्धार के काग़जी प्रयास का है बल्कि नदी के प्रति सकारात्मक सोच रखने से है जिससे नदी और उस जैसे दूसरे जल स्रोतों को बचाया जा सके।

समाहार

वर्तमान समय में प्रदूषण और उससे जुड़ी समस्याएं समाज में निरनतर बनी रहने वाली समस्याओं की श्रेणी में शामिल हो गई है जिस पर पार पाना समाज और राज्य दोनों के लिए कठिन काम हो गया है, जिसके कारण मानव के सामाजिक दायरे और उसकी दैनिक गतिविधियां संकुचित होना शुरू हो गई है। यहाँ तक कि प्रदूषण ने व्यक्ति के निजी समझे जाने वाले स्थान को भी पूरी तरह से अपने आगोश में कैद कर लिया है जिसमे धार्मिक कर्म-काण्ड, खानपान, जीविकापार्जन और सांस्कृतिक तौर-तरीके आदि भी शामिल है। नदियों और जल स्रोतों से लगाव और दूरी के संदर्भ में देखें तो पायेंगे कि भारत और पश्चिमी देशों के बीच एक

खास अंतर है, जहां एक और पश्चिम के देश नदियों को सिर्फ और सिर्फ एक स्रोत और उपभोग की वस्तु मान कर चलते है वही भारत जैसे देशों में नदी और जल स्रोत उनके धर्म और संस्कृति से कभी न अलग होने वाले गठजोड़ से बंधा हुआ है इसके बावजूद भी आम जनमानस नदियों में डुबकी लगाने से परहेज नहीं करते और निरंतर नदी जल को उपयोग में लाते है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में भारत की सबसे महत्वपूर्ण नदियाँ बहती है जो प्रदूषण के स्तर पर सबसे ज्यादा प्रदूषित है और जिसका जल किसी भी तरह से उपयोग में लेने लायक नहीं है। जिसकी पुष्टि हाल ही में प्रकाशित 'सेंटर फॉर साइंस' की सालाना रिपोर्ट (2022) करती है जिसमें यह बताया गया है कि भारत में 74 प्रतिशत नदी निगरानी स्टेशन इस ओर संकेत करते है कि नदियों में भारी मात्रा में जहरीली धातुएँ पायी गई है जिसका स्तर बहुत ही खतरनाक है साथ ही 40 प्रतिशत निगरानी स्टेशन नदियों में कैलिफॉर्म के उच्च स्तर की पुष्टि करते है। इसके अलावा 15 प्रतिशत निगरानी स्टेशन नदी जल में जैव रासायनिक ऑक्सीजन अनुमेय सीमा से अधिक होने की ओर इशारा करते है। नदियों में प्रवाहित होने वाले उद्योग, कृषि और घरेलू अपशिष्ट जल ठीक तरीके से उपचारित किए बग़ैर ही नदी धारा में प्रवाहित किया जा रहा है जो इस समस्या का मूल है। उदाहरण के लिए, वर्ष 2018-19 में मेरे द्वारा किए गये फील्ड वर्क में मैंने पाया कि कानपुर शहर में जल निकासी व्यवस्था बहुत खराब है। अधिकांश जगह जल निकासी (86 प्रतिशत अनुमानित) की व्यवस्था 'खुली व्यवस्था' है और 09 प्रतिशत जल निकासी के लिए जो व्यवस्था उपलब्ध है वो भी सामान्य मानकों के अनुरूप नहीं है। शहर मे केवल 03 प्रतिशत जल निकासी नियमों के अनुरूप है जो बंद व्यवस्था के नियमों के अन्तर्गत आती है और 02 प्रतिशत जल निकासी पूर्ण रूप से खुले में होती है जो सरकार के द्वारा किए जा रहे प्रयासों और उसके आधुनिकता के मॉडल की कलई खोलते हैं। जिसके पीछे एक बड़ी वजह नीतियों के मध्य सिद्धांत और व्यवहार को लेकर सामंजस्य का न होना। सिद्धांत, व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं और व्यवहार, सिद्धांतों को समृद्ध करते हैं और जिससे प्रभावोत्पादक नीति निर्धारण के लिए सशक्त अंतर्दृष्टियों का मार्ग प्रशस्त होता है (प्रसन्न के. मोहंती, 2018)। रमाशंकर सिंह अपनी पुस्तक 'नदी पुत्र' में प्रदूषण और समाज के अंतर्संबंधों को बताते हुए इस बात का जिक्र करते है कि प्रदूषण की प्रकृति बहुत हद तक समाज की प्रकृति पर निर्भर करती है क्योंकि प्रदूषण एकरैखिक मामला नहीं है, उदाहरण के लिए, समाज के अलग-अलग तबके अलग-अलग तरह से पृथ्वी, पर्वतों, समुद्रों और नदी धारा को प्रदूषित करते है और उसी प्रकार अलग- अलग तरीके से उससे प्रभावित भी होते है। इसलिए प्रत्येक समाज के साथ प्रदूषण एक सामाजिक संदर्भ निहित किए हुए है (रमाशंकर सिंह, 2022)। यही कारण है कि प्रदूषण से प्रभावित होने वाला समाज एकजुट होकर इस समस्या का निराकरण नहीं कर पा रहा है। लेकिन समस्या के निराकरण का यह केवल एक पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष आदिवासी और उनके द्वारा किए गये प्रयास है जो अपनी समस्या के लिए कटिबद्ध है। मेरा मानना है कि जिस तरह की कोशिशें आदिवासी समुदायों ने अपने जंगल और पारिस्थितिकीय तंत्र को बचाने के लिए की उस तरह के प्रयास जल प्रदूषण से 'प्रभावित समाज' और सरकार द्वारा इस दिशा में

होते हुए नहीं दिखायी दे रहे है और अगर कुछ हद तक किया भी है तो वह बहुत प्रभावी नहीं है। जो इस दिशा में समाज और सरकार दोनों से जल प्रदूषण सबंधी समस्याओं को लेकर प्रभावी कदम की माँग करती है जिससे खासकर सरकारें द्वारा इस बदलती व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की पद्धतियों का निर्माण किया जाये या फिर प्रबंधन के किसी वैकल्पिक व्यवस्था को खोजे जिससे जल संकट की समस्या का निराकरण किया जा सके। साथ ही नीतियों के स्तर पर भी कुछ प्रभावी पहल करनी पड़ेगी जिससे गाँव से लेकर शहर तक वर्षा जल संग्रहण और पीने योग्य जल के संरक्षण किस दिशा में प्रभावी कार्य हो सके और जल को संग्रहित करने के लिए आस-पास उपलब्ध परम्परागत स्रोतों को बचाने और जो बर्बादी के कगार पर पहुँच चुके है उन्हें पुनर्जीवित करने की ठोस नीति अपनायी जाये। तभी भविष्य में इस संकट से बच निकलने की कुछ संभावना बन पायेगी। सरकारों से इतर इस जल बचाओ प्रक्रिया में समाज को स्वयं आगे आकर पानी के सीमित उपयोग के लिए सभी को प्रोत्साहित करना होगा। अनुपम मिश्र का मानना था कि पानी के संकट से निकलने के उपाय समाज को स्वयं करना होगा क्योंकि यह लोगों का अपना मामला है जिसे हमेशा के लिए सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता है (अनुपम मिश्र, 1985)। तभी हम इस भयावह होती समस्या से निजात पा सकते है।

टिप्पणी

1. हालाँकि 21वीं सदी में भारत और बाकी दूसरे देशों में बनने वाले स्मार्ट सिटी की अवधारणा ने इस मापदंड को पीछे छोड़ दिया है जहां अब शहर की बसावट के लिए सिर्फ और सिर्फ जमीन कि आवश्यकता होती है बाकी सभी जरूरत की चीजों का नियोजित तरीके से प्रबंध कर लिया जाता है। खासकर दिल्ली और उसके आस पास के भू-क्षेत्रों की बात करे तो पायेंगे की गुरुग्राम और ग्रेटर नोएडा जैसे शहर भूमि के बिलकुल मध्य में बसे है जहां से दूर दूर तक नदी के साथ कोई जुड़ाव नहीं है।

2. कानपुर के अलावा गंगा नदी पर बसने वाले शहरों की सूची में लखनऊ, प्रयागराज, वाराणसी, पटना और कलकत्ता है जो पूरे शहर का सीवेज और कंपनियों का कचरा सीधे ही गंगा में प्रभावित करते है। जो गंगा नदी को प्रदूषित करने के प्रमुख स्रोत है।

3. कानपुर और उसके आस पास के शहरों में पानी का संकट को इस उदाहरण के जरिए समझ सकते है कि जब वर्ष 1838 में पर्याप्त मात्रा में वर्षा न होने से समस्त क्षेत्र में भयंकर अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई जिस कारण बुंदेलखंड और आसपास के अन्य स्थानों से हजारो अकाल पीड़ित (पुरुष) जीविकोपार्जन के लिए कानपुर नगर क्षेत्र में आ बसे जिनको काम और जीविका उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा तालाबों की खुदवाई करायी गई जो आगे चलकर पानी के संकट के समय कारगर साबित हुए। नवाबगंज में जेल के पास खुदा तालाब उस समय का एक जीता जागता मिसाल है। हालाँकि गाँव के स्तर तालाबों की खुदाई और उसके विशेषज्ञ बड़ी मात्रा में मौजूद थे जिसका उदाहरण अनुपम मिश्र के कामों में दिखता है लेकिन शहरों के स्तर पर इस तरह का प्रयास सरकारें द्वारा पहली मर्तबा किया गया था।

4. इस जिले में पानी का बहाव पश्चिमोत्तर से दक्षिणपूर्व की ओर है और इसी दिशा में यहाँ की मुख्य नदियो का बहाव भी है जो अपने बहाव के साथ कानपुर के औद्योगिक कचरे और अपशिष्ट पदार्थो को बहाकर दूसरे शहरों में हस्तांतरित करती है।

5. कानपुर में बहने वाली गंगा कि केवल 4 ही सहायक नदियाँ है जिनमें यमुना एक प्रमुख और स्वतंत्र नदी है। इसके अलावा पांडव नदी है जो कानपुर से 3 मील दूर फतेहपर जिले में गंगा से मिलती है। यमुना और पांडव के अलावा ईशान और उतरी नोन नदी है जो कानपुर में ही गंगा से जाकर मिलती है।

6. छावनी की सीमा उत्तर में गंगा नदी, दक्षिण में ग्रांड-ट्रंक-रोड़, पूर्व में जाजमऊ तथा पश्चिम में लखनऊ जाने वाली रेलवे लाइन के किनारे किनारे माल रोड पर पड़ने वाले नहर के पुल से होती हुई फूलबाग के उत्तर से गंगा के किनारे हार्नेस फैक्ट्री तक थी।

7. उस समय नगरी सुधार कार्यक्रम में सफाई का प्रश्न बहुत ही जटिल विषय था जिसके रोकथाम के लिए हालसी साहब ने कई तरह के प्रभावी कदम उठाये जिसमे पक्के नाले बनवाना और शहर के कचरे को जो पहले बैलगाड़ी के माध्यम से ढुलवाया जाता था उस की जगह शहर में 5 मील लंबी छोटी रेल लाइन के द्वारा शहर का कूड़ा कचरा उठवाना (1902-03) जो अपनी तरह की अनूठी व्यवस्था थी। लेकिन यह व्यवस्था बहुत दिनों तक नहीं चल सकी इसकी जगह मोटर गाड़ियो ने ले लिया। इस का जिक्र लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और नारायण प्रसाद अरोड़ा ने अपनी पुस्तक कानपुर के इतिहास में किया है, पृ. 171।

8. इस संदर्भ बिंदु पर साहित्यों के फेहरिस्त थोड़ी लम्बी है इसलिए यहाँ पर सिर्फ तत्कालीन संदर्भो को ही शामिल किया गया है जैसे रमाशंकर सिंह, नदी पुत्र : उत्तर भारत में नदी और निषाद, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2022; वेलायुथम सरवनन, वाटर एंड एनवायरनमेंटल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, ब्लूम्सबरी : लन्दन, 2020; जेनी विल्हेम, एनवायरनमेंट एंड पोल्लुसन इन कोलोनियल इंडिया : सीवरेज टेक्नोलोजीस अलोंग द सेक्रेड गंगेस, रुटलेज, लन्दन एंड न्यू यॉर्क, 2016; अवधेन्द्र शरण, इन द सिटी, आउट ऑफ प्लेस, नुइसंस, पोल्लुसन, एंड डीवेल्लिंग इन दिल्ली, 1850-2000, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : दिल्ली, 2014; केली डी. एल्ली, ओन द बैंक्स ऑफ द गंगा : व्हेन वेस्टवाटर मीट्स अ सेक्रेड रिवर, द यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, अन आर्बर, 2002 और वाटर वार्स : प्राइवेटाइजेसन, पोल्लुसन एंड प्रॉफिट, इंडिया रिसर्च प्रेस, नयी दिल्ली, 2002.

9. पानी को अशुद्धियो से बचाने के लिए समाज कई तरह के उपाय करता था जैसे तालाब के आगौर के पास साफ सफाई, जूते पहनकर खड़े होने की मनाही, थूकने की मनाही और दिशा मैदान आदि को ना करने की मनाही सुन्दर पत्थर के ऊपर अंकित थी जिससे लोग इन क्रियाओ को ना करे। साथ ही पानी को साफ रखने के लिए विशेष प्रकार की वनस्पति डाली जाती थी जैसे गदिया या चिला, कुमुदिनी, निर्मली या चाक्षुष आदि।

10. इसकी खबर को भारत और देश दुनिया के बहुतेरे राष्ट्रीय अखबारों द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाता रहा है। जिसने कानपुर को प्रदूषित शहर के रूप में स्थापित कर दिया है।

11. जैसे की कई बार अकादमिक बहसों और चर्चाओं में यह सुनने को मिलता है की भारत और उस जैसे देश आज भी पश्चिम के देशों से कई वर्ष पीछे है और जिसका जवाब औपनिवेशिक हस्तक्षेपों में छिपा होता है

12. उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका जिस तरह से वैश्विक प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है उस तरह से भूटान नहीं है। रामशंकर सिंह की पुस्तक 'नदी पुत्र' में उद्धृत।

संदर्भ

अर्नोल्ड, डेविड (2013), पॉल्यूशन, टोक्सिसटी एंड पब्लिक हेल्थ इन मेट्रोपोलिटन इंडिया, 1850-1939, *जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल जियोग्राफी.*

ऐली, केली डी. (2002), *ऑन द बैंक्स ऑफ द गंगा : व्हेन वेस्टवाटर मीट्स अ सेक्रेड रिवर,* द यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, अन आर्बर.

ऑकलैंड, कोल्विन(1894), म्युनिसिपल एंड विलेज वाटर सप्लाई एंड सैनिटेशन इन द नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सस एंड अवध, *जर्नल ऑफ द सोसाइटी ऑफ आर्ट्स*, XLII, मई.

ग्रोव, रिचर्ड एच. (1998), विनीता दामोदरन और सतपाल सांगवान, *नेचर और द ओरिएंट : द एनवायरनमेंटल हिस्ट्री ऑफ साउथ एंड साउथ ईस्ट एशिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

हजारिका, संजय (1987), *भोपाल : द लेसन ऑफ अ ट्रेजेडी*, पेंगुइन बुक्स, इंडिया :14.

होसाग्रहर, ज्योति (2005), *इंडिजिनस मॉडर्निटीज : नेगोशिएटिंग आर्किटेक्चर एंड अर्बनिजिम*, रूटलेज : न्यू यॉर्क और लन्दन : 83.

ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट (2006), यूनाइटेड नेशन डेवलपमेंट प्रोग्राम.

कार्सन, राचेल, *साइलेंट स्प्रिंग*, लन्दन, 1963.

कुमार, विकास (2019), वाटर पोल्युसन इन उत्तर प्रदेश : अ केस स्टडी ऑफ टेनरिज इन कानपूर, (*लघु शोध : अप्रकाशित*), सेंटर फॉर जवाहरलाल नेहरु स्टडीज, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली.

लाईबर, हर्रे (1970), वाटर पोल्लुसन, *करंट हिस्ट्री*, वॉल्यूम 59, नंबर.347, जुलाई.

मिश्र, अनुपम (1985), पानी के जमींदार, *जनसत्ता*, 26 जनवरी.

मिश्र, अनुपम (1993), *आज भी खरे हैं तालाब*, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली.

मोहंती, प्रसन्न के. (2018), *नगर और लोक नीति : भारत के लिए शहरी एजेंडा*, सेज.

गेजर्स, हिथर (2010), *ग्रीन गॉन रोंग : हाउ ऑवर इकॉनमी इज अंडरमाइनिंग द एनवायरनमेंटल रेवोलुशन*, वर्सो : लंदन-न्यूयॉर्क : 1.

शरण, अवधेन्द्र (2014), *इन द सिटी, आउट ऑफ प्लेस, नुइसंस, पॉल्यूशन, एंड ड्वेलिंग इन दिल्ली, 1850-2000*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : दिल्ली.

शरण, अवधेन्द्र (2017), शहर और प्रदूषण, *प्रतिमान*, वर्ष. 5, अंक.9, जनवरी-जून, व्याख्यान.

शिवा, वंदना (1991), *इकोलॉजी एंड दी पॉलिटिक्स ऑफ सर्वाइवल : कांफ्लिक्ट्स ओवर नेचुरल रिसोर्सेज इन इंडिया*, सेज, नयी दिल्ली.

शिवा, वंदना (2002), *वाटर वार्स : प्राइवेटाइजेशन, पॉल्यूशन एंड प्रॉफिट*, इंडिया रिसर्च प्रेस, नयी दिल्ली.

सरवनन, वेलायुथम (2020), *वाटर एंड एनवायरनमेंटल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया*, ब्लूम्सबरी : लन्दन.

सिंह, रमाशंकर (2022), *नदी पुत्र : उत्तर भारत में निषाद और नदी*, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली : 212-214

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (1982), *द स्टेट ऑफ इंडिया'स एनवायरनमेंट : अ सिटीजन रिपोर्ट.*

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (1985), *द स्टेट ऑफ इंडिया'स एनवायरनमेंट : द सेकंड सिटीजन रिपोर्ट, 1984-85.*

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरन्मेंट (2022), *द स्टेट ऑफ इंडिया'स एनवायरनमेंट* (आंकड़ों में).

स्पोडेक, हॉवर्ड (2013), 'सिटी प्लानिंग इन इंडिया अंडर ब्रिटिश रूल', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली*, जनवरी, 26, वॉल्यूम. 48, नंबर. 4 : 55-56.

त्रिपाठी, लक्ष्मीकान्त और अरोड़ा, श्रीनारायण (1940), *कानपुर का इतिहास*, कानपुर इतिहास समिति, कानपुर : 165.

विल्हेम, जेंनी (2016), *एनवायरनमेंट एंड पोल्लुसन इन कोलोनियल इंडिया : सीवरेज टेक्नोलोजीस अलोंग द सेक्रेड गंगेस*, रुटलेज, लन्दन एंड न्यू यॉर्क.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 114-127)
UGC-CARE (Group-I)

दलितों की चुनावी भागीदारी के प्रतिमान : अखिल भारतीय तथा राजस्थान राज्य का तुलनात्मक विश्लेषण

धर्मेंद्र मिश्रा[*] एवं रजनी गगवानी[†]

स्तरीकृत हिंदू सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित अनुसूचित जाति का 'दलित' के रूप में उल्लेख किया गया है जो प्रारंभ से ही राजनीतिक शक्ति से वंचित रहा है। अत: यह आवश्यक है कि वर्तमान में इनकी चुनावी भागीदारी, स्तर एवं प्रतिमानों का अध्ययन किया जाए। शोधपत्र में अखिल भारतीय स्तर और राजस्थान में मतदान और चुनाव लड़ने के स्तर पर दलितों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में की गई भागीदारी पर ध्यान केंद्रित किया गया है। विशेष रूप से वर्ष 2024 में हुए लोकसभा चुनाव में इस सम्बंध में दिखे नवीन बदलावों तथा प्रतिमानों का अध्ययन किया गया है। साथ ही वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग करते हुए दलितों के चुनावी समावेशन का स्तर, समस्याओं तथा संभावनाओं चर्चा की गई है। इस हेतु राजकीय-निजी प्रतिवेदनों और अध्ययनों, पुस्तकों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं में

[*]प्राध्यापक, लोक प्रशासन विभाग, माणिक्य लाल वर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.).
[†]सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री शिवचरण माथुर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मांडलगढ़, भीलवाड़ा (राज.). **E-mail: rajnigagwani21@gmail.com**

प्रकाशित लेख, शोधपत्रों तथा सर्वेक्षणों सहित अन्य प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों की सहायता ली गई है।

बीज शब्द - दलित, चुनाव, राजनीतिकदल, आरक्षण, नेतृत्व, राजस्थान।

प्रस्तावना

भारत के 543 लोकसभा क्षेत्रों के लिए वर्ष 2024 में हुए चुनाव में 96.88 करोड़ मतदाता पंजीकृत थे। जिनमें से 64.2 करोड़ (65.79 प्रतिशत) मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। पुरुषों का मतदान प्रतिशत 68.80 तथा महिलाओं में मतदान प्रतिशत 65.78 रहा। कुल 543 लोकसभा स्थानों में से बीजेपी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को 293 स्थान तथा कांग्रेस के नेतृत्व वाले इंडिया गठबंधन को 234 स्थान प्राप्त हुए। शेष स्थान दोनों गठबंधनों से औपचारिक रूप से स्वतंत्र रहने वाले दलों को प्राप्त हुए। इस शोध-पत्र के अंतर्गत वर्ष 2024 के लोकसभा चुनाव तथा 2023 के विधानसभा चुनाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए इसके परिणामों के निहितार्थ खोजने का प्रयास किया गया है। यह शोध-पत्र दलितों की चुनावी जन सहभागिता से संबंधित निम्नलिखित चार नवीन प्रतिमानों का तथ्यात्मक विश्लेषण प्रदान करेगा -

1. लोकसभा चुनाव 2024 में दलितों की मतदाता के रूप में सहभागिता कम हुई है।
2. इस लोकसभा चुनाव में दलित मत बीजेपी से हट कर समाजवादी पार्टी तथा कांग्रेस की ओर गए हैं।
3. अनारक्षित निर्वाचन क्षेत्र पर दलितों को महत्वपूर्ण दलों द्वारा टिकट देना तथा दलित और गैर-दलित के मध्य चुनावी स्पर्धा में अनारक्षित स्थान पर दलित का चुनाव जीतना भारतीय चुनावी राजनीति के बदलते रूख की ओर संकेत करता है।
4. बहुजन समाज पार्टी के स्थान पर आजाद समाज पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखर आजाद का उभार नवीन दलित नेतृत्व की स्थापना का संकेत देता है।

वर्ष 2024 के लोकसभा चुनाव परिणामों का सामाजिक विश्लेषण

किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था अनिवार्य रूप से उसकी सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित होती है तथा उसे प्रभावित करती भी है। भारतीय राजनीति में जाति एवं धर्म सामाजिक कारक के रूप से उपस्थित रहते हैं। इस सम्बंध में रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स' में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका विशेष रहती है। "भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है। अत: ना चाहते हुए भी राजनीति को जातीय संस्था का उपयोग करना ही पड़ता है" (कोठारी, 1970)।

इन चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की अगुवाई वाले एनडीए और कांग्रेस के नेतृत्व वाले इंडिया गठबंधन ने किस जाति-धर्म को कितनी टिकट दीं तथा किस जाति-धर्म के

कितने प्रत्याशी विजयी हुए, का वर्गीकरण तालिका 1 के अंर्तगत किया गया है (पांडे, 2024)। इस सारणी से स्पष्ट है कि इन चुनावों में एनडीए ने सर्वाधिक टिकट (31.30 प्रतिशत) उच्चजातियों को दिए जबकि इंडिया गठबंधन ने अन्य पिछड़ा वर्ग को सर्वाधिक 26.90 प्रतिशत टिकट दिए थे। एनडीए ने टिकट वितरण के सम्बंध में अनुसूचित जातियों को 15.80 प्रतिशत टिकटों से साथ चौथे स्थान रखा है। इसकी तुलना में इंडिया गठबंधन ने एनडीए को पीछे छोड़ते हुए 17.60 प्रतिशत टिकटों के साथ तीसरे स्थान पर अनुसूचित जातियों को सर्वाधिक टिकट प्रदान किए।

तालिका 1
दलित प्रत्याशियों तथा विजेताओं का सामाजिक वर्गीकरण

जाति	उम्मीदवारों के प्रतिशत		जीते हुए सांसदों का प्रतिशत	
	एनडीए (प्रतिशत)	इंडिया (प्रतिशत)	एनडीए (प्रतिशत)	इंडिया (प्रतिशत)
उच्च जाति	31.30	19.20	33.20	12.40
ब्राह्मण	14.90	10	14.70	5.90
राजपूत	7	2.70	8.70	1.50
अन्य अपर जाति	9.40	6.50	9.80	5
मध्यवर्ती जाति	15.30	14.00	15.70	11.90
मराठा	4.30	3.40	3.10	5
जाट	3.40	3.30	2.40	3
लिंगायत	1.50	1.10	1	1.50
पाटीदार	1.50	1.50	2.40	0
रेड्डी	1.70	2.40	2.10	1.50
वोक्कालिगा	1.50	1.10	1.70	0.50
अन्य आईसी	1.70	1.30	2.80	0.50
ओबीसी	25.50	26.90	26.20	30.70
यादव	2.30	4.20	3.10	3.50
कुर्मी	2.50	2.70	3.50	3
अन्य ओबीसी	20.80	20	19.60	24.30
अनुसूचित जाति	15.80	17.60	13.30	17.80
अनुसूचित जनजाति	10	9.60	10.80	9.90
मुस्लिम	0.90	7.30	0	7.90
ईसाई	0.20	2.70	0	3.50
सिख	0.40	2.20	0	5
बौद्ध	0.20	0.20	0	0
अज्ञात	0.40	0.40	0.70	1

इन दोनों गठबंधनों में भी इंडिया गठबंधन में सांसदों की सफलता दर इंडिया गठबंधन में अधिक दर्ज की गई।

वर्ष 2024 के लोकसभा चुनाव परिणामों का क्षेत्रीय आधार पर विश्लेषण

गठबंधनों के क्षेत्रवार प्रदर्शन को समझने हेतु सम्पूर्ण देश को पाँच क्षेत्रों में वर्गीकृत करके इसमें एनडीए, इंडिया गठबंधन तथा अन्य दलों को प्राप्त मत प्रतिशत का विश्लेषण किया है। इन पाँच क्षेत्रों के अंतर्गत हिंदी हृदयक्षेत्र में बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखंड और हरियाणा सम्मिलित हैं। गैर-हिंदी उत्तर में पंजाब, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, चंडीगढ़। दक्षिण की श्रेणी में आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना, केरल, तमिलनाडु, पुडुचेरी, अंडमान और निकोबार तथा लक्ष्यद्वीप को रखा गया है। पश्चिम में गोवा, गुजरात, महाराष्ट्र, दादर-नागर हवेली एवं दमन-दीव को रखा गया है। पूर्व के अंतर्गत ओडिशा, सिक्किम तथा पश्चिम बंगाल सम्मिलित हैं। उत्तरपूर्व में अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, नगालैंड, त्रिपुरा तथा मिजोरम शामिल है।

तालिका 2
लोकसभा चुनाव 2024 में गठबंधनों का क्षेत्रवार मत-प्रतिशत

क्षेत्र	एनडीए	इंडिया गठबंधन	अन्य
हिंदी हृदयक्षेत्र	48.9	41.0	10.0
गैर-हिंदी उत्तर	20.8	49.5	29.7
दक्षिण	37.7	40.4	22.8
पश्चिम	50.4	34.5	15.1
पूर्व	40.3	11.6	48.1
उत्तरपूर्व	44.1	38.9	17.0

तालिका 2 से स्पष्ट है कि बीजेपी के नेतृत्व वाले एनडीए गठबंधन को सर्वाधिक मत क्रमशः पश्चिम, हिंदी हृदयक्षेत्र और उत्तरपूर्व से प्राप्त हुए हैं जबकि कांग्रेस के नेतृत्व वाले इंडिया गठबंधन को क्रमशः गैर-हिंदी उत्तर, हिंदी हृदयक्षेत्र तथा दक्षिण से सर्वाधिक मत प्राप्त हुए हैं।

इसके अतिरिक्त तालिका 3 के अनुसार, एनडीए का मत-आधार शहरी अधिक है। इसके विपरीत इंडिया का सबसे बड़ा मतदाता वर्ग अर्द्ध ग्रामीण है। यह तथ्य दोनों ही गठबंधनों के विपरीत मताधार को रेखांकित करती है (गोइंग गेट्स टफ फ़ॉर एनडीए, 2024)।

तालिका 3
लोकसभा चुनाव 2024 में गठबंधनों का स्थानवार मत-प्रतिशत

क्षेत्र	एनडीए	इंडिया गठबंधन	अन्य
शहरी	49.1	35.0	15.9
अर्द्ध शहरी	42.1	36.6	21.2
अर्द्ध ग्रामीण	41.8	37.0	21.2
ग्रामीण	43.9	36.5	19.6

दलित समुदाय की चुनावी जन सहभागिता

चुनावी सहभागिता के अंतर्गत प्रमुख रूप से मतदान एवं चुनाव लड़ना सम्मिलित होता है। सीएसडीएस लोकनीति से प्राप्त तथ्यों का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि इस सदी में हुए 2004 से 2019 तक के लोकसभा चुनावों में दलितों हेतु आरक्षित 84 स्थानों पर मतदान में सतत बढ़ोतरी दर्ज की गई थी किंतु 2024 के लोकसभा चुनावों में इन स्थानों पर मतदान में कमी देखी गई है, जिसे तालिका 4 में देखा जा सकता है।

तालिका 4

अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित स्थानों पर समेकित मतदान प्रतिशत

निर्वाचन वर्ष	2004	2009	2014	2019	2024
मतदान प्रतिशत	57.86	58.25	66.51	67.47	65.58

स्रोत : लोकसभा इलेक्शंस रिजल्ट्स बाय अदर केटेगरी. लोकनीति. https://lokniti.org/lok-sabha-election

भारत में चुनाव लड़ने के स्तर पर दलितों की चुनावी भागीदारी परम्परागत रूप से केवल आरक्षित क्षेत्रों तक ही सीमित रही है। लेकिन इन चुनावों में यह रीति थोड़ी बदली है। इस चुनाव में केवल आरक्षित स्थानों पर ही दलितों को टिकट देने की राजनीतिक दलों की प्रवृत्ति में बहुत कम ही सही लेकिन परिवर्तन हुआ है। उदाहरण के तौर पर, सर्वाधिक दलित आबादी वाले राज्य उत्तरप्रदेश में इस चुनाव में दो प्रसिद्ध निर्वाचन क्षेत्रों पर दलित-सामान्य के मध्य मजबूत चुनावी प्रतिद्वंदिता देखी गई, जो कि समकालीन भारत में एक नवीन प्रघटना है। उत्तरप्रदेश में इंडिया गठबंधन ने 17 एससी आरक्षित सीटों के मुकाबले दलित समुदाय से 19 लोगों को टिकट दिया है। इसमें समाजवादी पार्टी ने फैजाबाद से दलित नेता अवधेश प्रसाद एवं मेरठ से सुनीता वर्मा को सामान्य सीट पर मैदान में उतारा था।

इनमें से फैजाबाद से अवधेश प्रसाद का जीत दलितों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों पर भी चुनाव लड़ने हेतु भविष्य में प्रेरित करेगी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में भी आम आदमी पार्टी ने पूर्वी दिल्ली अनारक्षित निर्वाचन क्षेत्र पर दलित समुदाय के कुलदीप कुमार को टिकट दिया। यद्यपि कुलदीप कुमार यह चुनाव जीतने में सफल नहीं हो पाए।

राजस्थान में दलित समुदाय की चुनावी भागीदारी

भारत निर्वाचन आयोग के अनुसार, राजस्थान के दस लोकसभा स्थानों के लिए दो चरणों में हुए मतदान में कुल 61.53 प्रतिशत मतदान दर्ज किया गया। जिनमें 60.72 प्रतिशत पंजीकृत महिला, 62.27 प्रतिशत पंजीकृत पुरूष मतदाता एवं 53.03 प्रतिशत पंजीकृत अन्य मतदाता सम्मिलित हैं। इसमें से भाजपा को 49.2, कांग्रेस को 37.91 तथा बसपा को सबसे कम (नोटा से भी कम) मात्र 0.74 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। यहाँ पर अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित चार स्थान क्रमशः श्री गंगानगर, बीकानेर, करौली-धौलपुर एवं भरतपुर आरक्षित हैं।

इन स्थानों पर वर्ष 2009 से 2019 तक मतदान प्रतिशत में लगातार बढ़ोतरी दर्ज की गई लेकिन 2024 के लोकसभा चुनावों में इन सभी निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत में गिरावट दर्ज की गई है। जिसको तालिका 5 में प्रदर्शित किया गया है -

तालिका 5
विगत लोकसभा चुनावों में राजस्थान में अ.जा. हेतु आरक्षित स्थानों पर मतदान प्रतिशत वर्ष 2009 से 2024 तक

लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र/चुनाव वर्ष	2009	2014	2019	2024
श्रीगंगानगर	60.97	73.1	74.77	67.3
बीकानेर	41.25	58.4	59.43	54.6
भरतपुर	39.2	57.1	59.11	53.6
सवाई माधोपुर - धौलपुर	37.38	54.6	55.18	50

स्रोत : भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://results-eci-gov-in/PcResultGenJune2024/partywiseresult-S20.htm

मतदान के अतिरिक्त वर्ष 2024 में हुए लोकसभा चुनावों में राजस्थान के कुल 25 लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों पर दलीय प्रदर्शन का उल्लेख तालिका 6 में किया गया है। तालिका स्पष्ट करती है कि दलित आदिवासी, ओबीसी हिन्दू, उच्च जातियों और अमीर वर्ग ने इंडिया गठबंधन की तुलना में बीजेपी को अधिक मत दिए हैं। इनमें भी उच्च जातियाँ तथा अमीर वर्ग बीजेपी का सबसे बड़ा वोटर है। जबकि इंडिया गठबंधन का सबसे बड़ा मतदाता क्रमश: मुस्लिम, गरीब और दलित हिंदू है (लोढ़ा, 2024)।

तालिका 6
वर्ष 2024 में राजस्थान के लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों पर राजनीतिक दलों का प्रदर्शन

वर्ग	इंडिया गठबंधन	भाजपा	अन्य
मुस्लिम	68	14	18
दलित आदिवासी	40	46	14
दलित हिन्दू	46	37	17
ओबीसी हिन्दू	39	59	2
उच्च जातियां	26	65	9
अमीर	23	69	8
गरीब	51	46	3
शहरी	30	48	22
ग्रामीण	44	50	6

इस चुनाव में भी एक भी सामान्य निर्वाचन क्षेत्र पर किसी दल द्वारा दलित व्यक्ति को टिकट नहीं दी गई। इस प्रकार से उत्तरप्रदेश एवं दिल्ली से इतर राजस्थान में दलितों की चुनाव लड़ने के स्तर की भागीदारी केवल आरक्षित क्षेत्रों तक ही सीमित रही है।

राजस्थान की राजनीति में दलित एवं राजनीतिक दल

राजस्थान में दलित समुदाय की दलीय वरीयताओं पर टिप्पणी करते हुए एक साक्षात्कार देते हुए दलित कार्यकर्ता भंवर मेघवंशी बताते हैं कि "मेघवंशी जाति बीजेपी के खिलाफ मुखर है और प्राय: कांग्रेस को मत देती है जबकि जाटव अपने उत्तर प्रदेश बंधुओं के समान ही बीएसपी को पसंद करते हैं जबकि बैरवा जाति कांग्रेस और बीजेपी में बँटी हुई है। शहरी दलित बीजेपी समर्थक हैं" (धारा, 2018)। राजस्थान में वर्ष 2008 से 2023 तक हुए चारों विधानसभा चुनाव में अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित स्थानों पर प्रमुख दलों का प्रदर्शन अग्रांकित है -

तालिका 7

राजस्थान विधानसभा चुनाव में अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित स्थानों पर प्रमुख राजनीतिक दलों का तुलनात्मक प्रदर्शन (2008-2023 तक)

दल	2008	2013	2018	2023
कांग्रेस	17	0	19	22
भाजपा	14	31	12	11
बसपा	0	0	0	0
अन्य	2	2	3	1

स्रोत : भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S20.htm

दलित अधिकार केंद्र जयपुर के मुख्य कार्यवाहक पी.एल. मिमरोथ बताते हैं कि "राज्य की सभी सरकारें कमजोर वर्ग के प्रति समान रवैया ही अपनाती हैं।" वहीं राजनीतिक विश्लेषक राजीव गुप्ता बताते हैं कि "चाहे सांसद हो या विधायक दलितों की आवाज बनने में सक्षम नहीं रहे हैं और कमजोर तबके को न्याय दिलवाने के स्थान पर उनका ध्यान पार्टी, नेताओं एवं अपने एजेंडे पर रहता है" (असनानी, 2020)।

दलितों के सीमित प्रतिनिधित्व का उदाहरण विधानसभा चुनावों में इस रूप में देखा जा सकता है कि अनारक्षित स्थानों पर जातीय समीकरणों के आधार पर अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों को तो मनोहर थाना (झालावाड़) तथा जहाजपुर (भीलवाड़ा) जैसे निर्वाचन क्षेत्रों में टिकट दे दिया जाता है किंतु अनुसूचित जाति के संबंध में ऐसा उदाहरण देखने को नहीं मिलता है। दलित हितों का एकमात्र प्रतिनिधि दल होने का दावा करने वाली बीएसपी के राजस्थान में मत-समर्थन में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। भारत निर्वाचन आयोग से प्राप्त तथ्यों के अनुसार, वर्ष 2013 की तुलना में बीएसपी के मत समर्थन में वर्ष 2018 में मात्र 0.63 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखी गई परंतु उसे प्राप्त सीटें दोगुनी हो गई (यह सदस्य बाद में कांग्रेस में शामिल हो गए)। जबकि 2023 के विधानसभा चुनाव में बसपा का मत प्रतिशत 4 प्रतिशत से गिरकर 1.82 पर पहुंच गया एवं 200 सदस्यों वाली राजस्थान विधानसभा में बसपा मात्र 2 सीटों पर सीमित रह गई। जिसका विवरण तालिका 8 में किया गया है।

तालिका 8

बीएसपी का राजस्थान में चुनावी रिकॉर्ड

वि.स. चुनाववर्ष	उम्मीदवार	जीते	मत-प्रतिशत
1990	-	00	-
1998	118	2	2.17
2003	124	2	3.98
2008	199	6	7.60
2013	195	3	3.27
2018	199	6	4.0
2023	185	2	1.82

स्रोत : भारत निर्वाचन आयोग https://old.eci.gov.in/statistical-report/statistical-reports/

उपर्युक्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यद्यपि राजस्थान में बहुजन समाज पार्टी के मत समर्थन में तो उतार चढ़ाव आते रहे हैं परंतु अनुसूचित जाति के मतदाताओं का विश्वास जीतने में बीएसपी राजस्थान में विफल रही है। पिछले एक दशक में हुए तीन विधानसभा चुनावों में बीएसपी अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित 34 स्थानों में से एक भी स्थान पर विजयी नहीं रही है जबकि निर्दलीय प्रत्याशी ने एक स्थान पर जीत दर्ज की है। वर्ष 2023 के विधानसभा चुनावों में भी हालांकि बसपा ने दो स्थानों (सादुलपुर और बाड़ी) पर विजय प्राप्त की लेकिन इनमें से एक भी अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित स्थान नहीं है ना ही बसपा के विजेता उम्मीदवार दलित हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बसपा दलितों का विश्वास प्राप्त करने में विफल हो रही है।

दलितों की बदलती दलीय वरीयताएं

वर्ष 2024 के लोकसभा चुनाव में दलित समुदाय की चुनावी भागीदारी के संबंध में पिछले एक दशक की तुलना में नवीन पैटर्न देखने को मिला है। तालिका 9 के अनुसार जहां वर्ष 2014 के बाद दलित समुदाय का झुकाव भाजपा की ओर रहा था। वहीं 2024 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी से हट कर दलित मत कांग्रेस और समाजवादी पार्टी की ओर स्थानांतरित हो रहा है जबकि बहुजन समाज पार्टी पुन: वर्ष 2014 की स्थिति में आ गई है।

तालिका 9

अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों में दलीयप्रदर्शन

चुनाव वर्ष	भाजपा	कांग्रेस	तृणमूल कांग्रेस	समाजवादी पार्टी	बहुजन समाज पार्टी	अन्य
2014	40	7	10	0	0	27
2019	46	6	5	2	2	23
2024	29	20	6	7	0	22

स्रोत : भारत निर्वाचन आयोग https://old.eci.gov.in/statistical-report/statistical-reports/

यह तालिका स्पष्ट करती है कि दलित पहचान पर आधारित बसपा दलितों के मत प्राप्त करने में विफल हो रही है। पिछले एक दशक में हुए तीन लोकसभा चुनावों में बसपा केवल वर्ष 2019 में अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित 84 स्थानों में से केवल 2 स्थान ही जीत पाई और 2024 के लो.स. चुनावों में इसने यह आधार भी खो दिया। बसपा के बजाय वर्ष 2014 एवं 2019 के चुनावों में भाजपा करीब आधे और आधे से अधिक स्थान प्राप्त कर, दलित समुदाय को सर्वाधिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर रही थी किंतु वर्ष 2024 के लो.स. चुनावों में भाजपा का यह अधिकार समाप्त हो गया और दलित मत कांग्रेस-सपा सहित गैर-भाजपा गठबंधन दलों की ओर स्थानांतरित हो गए। इसके पीछे यह कारण बताया जाता है कि दलित अपने समुदाय-केंद्रित दलों से काफी दूर चले गए हैं जैसा कि उत्तरप्रदेश और उत्तर भारत के अन्य हिस्सों में बीएसपी और महाराष्ट्र में वंचित बहुजन अघाड़ी (वीबीए)। उत्तर प्रदेश में जाटवों और महाराष्ट्र में बौद्धों में से आधे से भी कम ने क्रमश: बीएसपी और वीबीए को वोट दिया।

बीएसपी और वीबीए के पतन से लाभ उठाने के बावजूद एनडीए को 5 प्रतिशत दलित मतों का नुकसान हुआ है। यूपी में गैर-जाटव एससी, बिहार में दुसाध/पासवान सहित कई दलित समूह और हरियाणा में अधिकांश दलित एनडीए से इंडिया की ओर स्थानांतरित हुए हैं। हालांकि, भाजपा ने तेलंगाना में मडिगा समुदाय पर अपनी पकड़ बनाए रखी है और मध्य प्रदेश और गुजरात में अपना दलित समर्थन बरकरार रखा है। इंडिया गठबंधन ने कुल मिलाकर दलित मतदाताओं के बीच स्थिर वापसी की है, और अब यह लगभग एनडीए के बराबर हैं।

दलित मतों के हस्तांतरण के कारण

इस चुनाव में आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान व्यवहार पिछले एक दशक की तुलना में अलग रहा है। लोकसभा की कुल 131 आरक्षित सीटों (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) में भाजपा की संख्या 77 से घटकर 55 रह गई है। अनारक्षित सीटों पर भी भाजपा का वोट प्रतिशत काफी कम हुआ है। विशेष रूप से, अनुसूचित जाति के मतदाताओं में, इसके बाद ओबीसी मतदाताओं और मुसलमानों का स्थान है। दलित-बहुजन मतदाताओं की एक बड़ी संख्या ने स्पष्ट संकेत दिया है कि भाजपा उनके लिए विकल्प नहीं है। दलित मतों का भारतीय जनता पार्टी एवं बीएसपी से अलगाव तथा कांग्रेस और सपा से जुड़ाव इन चुनावों में चर्चा का प्रमुख विषय रहा है। इस नवीन प्रवृत्ति के पीछे निम्न कारण बताए जा रहे हैं -

सपा की सामाजिक अभियांत्रिकी

वर्ष 2014 के बाद पहली बार सपा की मंडल राजनीति ने भाजपा के हिंदू राष्ट्रवाद को मात दी है। यह दलितों को एक बड़े मंडल गठबंधन (जिसे सपा नेता अखिलेश यादव

पिछड़ा-दलित-अल्पसंख्यक या पीडीए ब्लॉक कहते हैं) में शामिल करने की एक अच्छी तरह से क्रियान्वित रणनीति के माध्यम से हासिल किया गया (अली, 2024)। सपा द्वारा दलितों को (गैर-आरक्षित सीटों सहित) बढ़ते प्रतिनिधित्व के साथ-साथ कांग्रेस के साथ गठबंधन ने दलितों के एक हिस्से को बहुजन समाज पार्टी और भाजपा से दूर करके इंडिया ब्लॉक की ओर ले जाने में सफलता प्राप्त की।

चुनावी विश्लेषकों इस नवीन प्रवृत्ति का कारण दलित-बहुजन-आदिवासी (डीबीए) समुदाय की स्वाभाविक महत्वाकांक्षी मानते हैं। दलितों के पास अवसर और समावेशी नीतियों के मामले में राज्य का हिस्सा बनने के स्वप्न और इच्छा है। नौकरी के अवसर प्रदान करने में सरकार की विफलता ने डीबीए समुदायों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। मौजूदा शासन के खिलाफ दलित-बहुजन युवाओं का व्यापक गुस्सा और विकल्प की तलाश करने की उनकी इच्छा ने स्पष्ट रूप से भाजपा के वोट बैंक को प्रभावित किया है (कल्याणी, 2024)।

भाजपा का चार सौ पार का नारा

राजनीतिक विश्लेषक अमिताभ तिवारी का मानना है कि विपक्ष की तरफ से बीजेपी पर लगाए गए संविधान बदलने की कोशिशों के आरोप का असर दलितों पर इस चुनाव में देखने को मिला। विपक्षी दल अपने नरेटिव को सेट करने में कामयाब रहे। कुछ भाजपा नेताओं के '400 पार' के एजेंडे को भारत के संविधान में बदलाव से जोड़ दिया है। चूंकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोनों समुदाय अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए संविधान पर बहुत अधिक निर्भर हैं, इसलिए वे ऐसे बयान से चिंतित हो जाती हैं। इससे भाजपा को अनुसूचित जाति और जनजाति हेतु आरक्षित संसदीय क्षेत्रों पर काफी नुकसान देखने को मिला।

इस सम्बंध में दलित अधिकार कार्यकर्ता और मेरठ कॉलेज में भौतिकी के प्रोफेसर सतीश प्रकाश का मानना है कि, "भारतीय जनता पार्टी का यह कथन कि भाजपा के बहुमत वाली सरकार संविधान के लिए खतरा है, मतदाताओं के बीच बहुत लोकप्रिय हुआ। भाजपा के खुद के बयानों से इन आशंकाओं को बढ़ावा मिला और मतदाताओं को सतर्क रहने और संविधान की रक्षा करने के लिए दृढ़ संकल्पित होने के लिए प्रेरित किया। इसने चुनाव परिणाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई" (अनवर, 2024)।

दलित दलों द्वारा जनाकांक्षाओं को समझने में विफलता

भारतीय राष्ट्रीय विकास समावेशी गठबंधन (इंडिया) के पाले में तमिलनाडु में विदुथलाई चिरुथैगल काची (वीसीके) को छोड़कर कोई प्रमुख अनुसूचित जाति पार्टी नहीं है, फिर भी उसे 2019 के संसदीय चुनाव की तुलना में इस चुनाव में अधिक दलित वोट मिले हैं। ऐसा मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि मुख्यधारा के दलित संगठन अपने समर्थकों की मनोदशा को समझने में विफल रहे हैं। बीएसपी और बीजेपी के बीच मौन गठबंधन के आरोपों

के कारण कई दलितों ने विपक्षी गठबंधन को अपना समर्थन दे दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि यह उनके हितों का अधिक विश्वसनीय रक्षक है। परिणामस्वरूप, परंपरागत रूप से दलित समुदाय के प्रतिनिधित्त्व का दावा करने वाली बीएसपी से कई मतदाताओं ने खुद को दूर कर लिया। उन्हें लगा कि यह अब बीजेपी को प्रभावी ढंग से चुनौती देने में सक्षम नहीं है।

बसपा की कमजोर स्थिति

अधिकांश दलित दलों ने या तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोनों खेमों से समान दूरी बनाए रखी है या वे राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का हिस्सा हैं, इसलिए समाज के इस वर्ग के मतदाताओं ने कांग्रेस पार्टी और यहां तक कि इसके कुछ क्षेत्रीय सहयोगियों की ओर अपना झुकाव दिखाना शुरू कर दिया है। राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात हरियाणा आदि जैसे जिन राज्यों में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) की मजबूत उपस्थिति नहीं है, वहां दलित विकल्प के तौर पर कांग्रेस की ओर देख रहे हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में उनका झुकाव भाजपा की ओर अधिक था। उत्तर प्रदेश जैसे महत्वपूर्ण राज्य में, जहाँ अनुसूचित जातियों की आबादी 21.3 प्रतिशत है। इनमें से 60 प्रतिशत जाटव या रविदास हैं, जो कि बीएसपी सुप्रीमो मायावती की जाति है। बीएसपी इस स्थिति का फ़ायदा उठाने में विफल रही है। यह स्थिति, एक हद तक, अनुसूचित जातियों के वोटों को इंडिया गठबंधन में शिफ्ट कर रही है। आजाद समाज पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखर आजाद इस जाति पर मायावती के एकाधिकार को चुनौती देने की कोशिश कर रहे हैं (अहमद, 2024)।

बहुमत का विश्वास प्राप्त करने में बसपा की विफलता

2024 के लोकसभा चुनाव में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) ने सभी राष्ट्रीय दलों में सबसे अधिक सीटों पर (उत्तर प्रदेश के सभी 80 सहित 488 निर्वाचन क्षेत्रों पर) लड़ा। इस चुनाव में बसपा बिना किसी गठबंधन में शामिल हुए चुनाव लड़ी। इसके बावजूद वह एक भी सीट जीतने में सफल नहीं रही और इसके मत इंडिया गठबंधन की ओर स्थानांतरित हो गए। यहां तक कि उत्तर प्रदेश में इसका वोट प्रतिशत 2019 में 19.42 से गिरकर 2024 में 9.39 हो गया एवं अखिल भारतीय मत-प्रतिशत 2.04 रह गया है (भारत निर्वाचन आयोग)। राजनीतिक विश्लेषक और सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च (सीपीआर) के फेलो राहुल वर्मा के अनुसार, बीएसपी की लगातार गिरावट के कम से कम तीन कारण हैं। पहला, यह दूसरी पंक्ति का नेतृत्व बनाने में विफल रही। दूसरा, इसने अपनी संगठनात्मक ताकत बनाने में बहुत कम निवेश किया। तीसरा, इसने पार्टी में वैचारिक निवेश भी बहुत कम किया। और अंत में, यह उभरते दलित मध्यम वर्ग को पूरा करने में विफल रही, जिसमें न केवल भौतिक आकांक्षाएं थीं, बल्कि सांस्कृतिक आकांक्षाएं भी थीं, जिन्हें भाजपा और इंडिया गठबंधन ने भुनाने में कामयाबी हासिल की (सिद्दीकी, 2024)। विशेषज्ञों का मत है कि बसपा की इस हार के पीछे प्रमुख कारण दलित-बहुजनों के खिलाफ जारी हिंसा को देखते हुए, बसपा की सतत चुप्पी थी।

जिसे दलितों ने स्वीकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त, बसपा नेता मायावती द्वारा उभरते युवा नेता आकाश आनंद को अचानक बर्खास्त करने और आरएस प्रवीण कुमार के इस्तीफे से बसपा के मूल मतदाताओं में बेचैनी पैदा हो गई। गौरतलब है कि पूर्व नौकरशाह प्रवीण कुमार की दलित-बहुजन समुदायों के बीच भारी अपील है और उनके इस्तीफे से बसपा को वोट प्रतिशत में बड़ी गिरावट आई है (यादव और अन्य, 2024)। जिसे तालिका 10 में इंगित किया गया है।

तालिका 10

बसपा, इंडिया/यूपीए और एनडीए का अखिल भारतीय हिंदू दलित मत-प्रतिशत (1996-2024 तक)

दल/चुनाव वर्ष	1996	1998	1999	2004	2009	2014	2019	2024
बसपा	7	23	18	23	21	14	11	8
यूपीए/इंडिया गठबन्धन	34	29	35	35	34	20	25	32
एनडीए	15	18	25	23	15	30	41	36

दलित-बहुजन-अल्पसंख्यकों के वोटों का समाजवादी पार्टी (सपा) की ओर जाना दर्शाता है कि भारत में जाति-विरोधी भावनाएं अभी भी बरकरार हैं। बीएसपी के लापरवाह और संदिग्ध रवैये के कारण, इसके मूल कार्यकर्ताओं को भी पीडीए के साथ एकजुट होने की जरूरत महसूस हुई।

दलितों में नवीन नेतृत्व का उभार

भारत में दलित राजनीति, जो पिछले 10 वर्षों में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के पतन के कारण दोराहे पर खड़ी थी, ने आजाद समाज पार्टी के प्रमुख चंद्रशेखर आजाद के उत्तर प्रदेश के नगीना से चुनाव जीतने और लोकसभा में प्रवेश करने के साथ एक नया मोड़ ले लिया है (पांडे, 2024)। भारतीय चुनाव आयोग के आंकड़ों के अनुसार, आजाद ने भाजपा के अपने निकटतम उम्मीदवार को 1.5 लाख से अधिक मतों से हराया जबकि 14,000 से भी कम मतों के साथ बसपा के सुरेंद्र पाल सिंह चौथे स्थान पर रहे।

चंद्रशेखर की ओर दलितों के झुकाव के पीछे यह कारण मायावती का बहुजन के ताने-बाने से हटकर सर्वजन फॉर्मूले पर चले जाना है जिसमें वैचारिक रूप से सत्ता का हिस्सा सभी के साथ साझा किया जाता है। हालांकि व्यावहारिक रूप से यह दलितों और उच्च जातियों के बीच एक समझौते के रूप में काम करता है। इस रवैये ने पिछड़े वर्गों को नुकसान पहुंचाया और जिस तरह से मायावती ने सोनेलाल पटेल, ओम प्रकाश राजभर, स्वामी प्रसाद मौर्य और दारा सिंह चौहान जैसे ओबीसी नेताओं को पार्टी से दूर जाने दिया, उसने बीएसपी के ओबीसी आधार को भी खत्म कर दिया और इसकी चुनावी संभावनाओं को प्रभावित किया। पश्चिमी यूपी के एक बीएसपी नेता ने कहा, "इससे यह धारणा भी बनी कि उच्च जातियां पार्टी को

फंड कर रही हैं और जब कोई बड़ी रकम लेकर आता है, तो मिशन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता कम हो जाती है" (अनुज, 2024)। यह मान्यताएं कथित रूप से मायावती की दलितों के प्रति कम होती प्रतिबद्धता की ओर संकेत करती हैं। जिसका दलितों ने अपने मतों को स्थानांतरित कर जवाब दिया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि लोकसभा चुनाव, 2024 कई मायनों में अलग प्रवृत्ति एवं महत्त्व लिए हुए हैं। पहला, इन चुनावों ने जनता विशेष रूप से अनुसूचित जाति-जनजाति की संविधान में आस्था और इसकी रक्षा की चिंता को रेखांकित किया है। दूसरा, भाजपा के बड़े चुनावी लक्ष्यों के परिणास्वरूप दलित मत इंडिया गठबंधन की ओर स्थानांतरित हुए हैं। तीसरा, दलित मतदाता किसी एक दल के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होता है और अपने हितानुसार अपनी वरीयताओं में परिवर्तन करता रहा है। चौथा, बसपा अपनी रीति-नीति के कारण राजनीतिक पतन की ओर अग्रसर हो रही है। पाँचवा, आजाद समाज पार्टी के प्रमुख चंद्रशेखर आजाद की बहुजन हितों के प्रति सक्रियता और मुखरता उन्हें दलित राजनीति के नवीन नेता के रूप में स्थापित कर रही है। छठा, अनारक्षित निर्वाचन क्षेत्रों पर दलितों को टिकट देना और जीतना, भविष्य में चुनाव लड़ने के स्तर पर दलितों की भागीदारी शनैः शनैः अभिवृद्ध होने के ओर संकेत करता है। इस प्रकार से दलित समुदाय की चुनावी सहभागिता भविष्य में भी शोध और अध्ययन का विषय बनी रहेगी।

टिप्पणियाँ

अनवर, टी. (जून 10, 2024). 400-पार, स्ट्रेटजिक मिस्टेक, सोशियल प्लैंक : वाय बीजेपी टेली डिपड इन रेसर्वड सीट्स. *न्यूज लॉन्ड्री*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://www.newslaundry.com/2024/06/10/400-paar-strategic-mistakes-social- justice-plank-why-bjp-tally-dipped-in-reserved-seats

अनुज, के. (जून 11, 2024). चंद्रशेखर आजाद'स विक्ट्री इन नगीना हेज स्टायर्ड द पोट ऑफ बहुजन पॉलिटिक्स इन यूपी. द हिंदू : दिल्ली सिटी संस्करण. पृ. 4 अली, ए. (जून 5, 2024). द साइट ऑफ ऑफ अ मेजर पॉलिटिकल अर्थक्वेक. *द हिंदू*: दिल्ली सिटी संस्करण. पृ. 12

असनानी, राजेश. (2020). फ्यूडल रूट्स, इग्नोरेंस पुशिंग दलित अट्रोसिटीज इन राजस्थान. *द न्यू इंडियन एक्सप्रेस*. रिट्रीव्ड मार्च 8, 2020 https://www.newindianexpress.com/nation/2020/mar/08/feudal-roots-ignorance-pushing-dalit-atrocities-in-rajasthan-2113796.html

अहमद, एस. (अप्रेल 27, 2024). दलित कम्यूनिटी ड्रिफ्ट अवे फ्रॉम एनडीए अमिड अप्रीहेंशंस ऑफ कॉन्स्टिट्यूशनल चेंजेस. *द वायर*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://thewire.in/politics/dalit-communities-drift-away-from-nda-amid-apprehensions-of-constitutional-changes

भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S20.html

भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://old.eci.gov.in/statistical-report/statistical-reports/

भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://results.eci.gov.in/PcResultGenJune2024/index.htm

भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://elections24.eci.gov.in/eci-updates.html

भारत निर्वाचन आयोग. रिट्रीव्ड http//results.eci.gov.in/PcResultGenJune2024/partywiseresult-S20.htm

धारा, तुषार. (2018). *कारवां मैगजीन*, पूर्वोक्त. अक्टूबर 28, 2018.

धींगरा, एस. (जून 4, 2024) जीरो लोकसभा सीट्स, डिपिंग वोट शेयर. *द प्रिंट*, रिट्रीव्ड फ्रॉम https://theprint.in/politics/0-lok-sabha-seats-dipping-vote-share-no-second-rung-leadership-bsp-faces-existential-crisis/2114037/

इकोनॉमिक टाइम्स. (जून 5, 2024). लोकसभा इलेक्शन्स 2024 रिजल्ट्स एंड हाईलाइट्स. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://m.economictimes.com/news/elections/lok-sabha/india/lok-sabha-elections-2024-results-and-highlights-explained-in-graphics/articleshow/110725370.cms

गोइंग गेट्स टफ फॉर एनडीए. (जून 5, 2024). *द हिंदू*: दिल्ली सिटी संस्करण. पृ. 02. द दिन्दू. पूर्वोक्त.

हिंदुस्तान टाइम्स. (जून 6, 2024). स्ट्रेटजिक मिसस्टेपस हाऊ बीएसपीस वोटर्स. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://www.hindustantimes.com/india-news/strategic-misstep-how-bsps-votes-in-16-lok-sabha-seats-could-have-altered-ndas-majority-101717673823576-amp.html

कल्याणी. के. (जून 9, 2024). दलित बहुजन फाइनली गेर्स. *फ्रंटलाइन*. द हिन्दू रिट्रीव्ड फ्रॉम https://frontline.thehindu.com/columns/2024-lok-sabha-results-dalit-bahujan-voters-reshaped-indian-politics/article68263000.ece

कोठारी, रजनी. (1970). *कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स*. ओरिएंट ब्लैकस्वान : नई दिल्ली. पृ. 228

लोकसभा इलेक्शंस रिजल्ट्स बाय अदर केटेगरी. *लोकनीति*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://lokniti.org/lok-sabha-election

लोढ़ा, एस. (जून 9, 2024). इन राजस्थान, कांग्रेस हैड अ स्ट्रेटजिक अप्रोच वाइल बीजेपी वाज कॉम्प्लेसेन्ट. *द हिंदू*. दिल्ली सिटी संस्करण. पृ. 8

पांडे, के. (जून 7, 2024). 543 सीटों में जाने कितने ब्राह्मण, ठाकुर, यादव, कुर्मी, दलित बनें सांसद... *जी न्यूज हिंदी*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://zeenews.india.com/hindi/chunav/lok-sabha-chunav/lok-sabha-elections-result-2024-nda-india-all-bjp-congress-candidate-mps-caste-and-community-wise-list/228293

पांडे, एस. (जून 5, 2024). लोकसभा इलेक्शंस 2024 : दलित पॉलिटिक्स टेक्स न्यू टर्न विद चंद्रशेखर आजाद'स् विक्ट्री. *डेक्कन हेराल्ड*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://www.deccanherald.com/elections/india/dalit-politics-takes-new-turn-with- chandrashekhar-azad-s-victory-3052554

शर्मा. एस. (जून 17, 2024). मायावती से दूर हुआ बहुजन समाज. *मनी कंट्रोल*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://hindi.moneycontrol.com/news/lok-sabha-election/lok-sabha-chunav-result-2024-dalit-dominant-seats-bahujan-samaj-distanced-from-mayawati-shifted-to-india-bloc-bjp-suffers-huge-loss-1903514.html

शेखर. एस. (जून 7, 2024). क्या बीजेपी से नाराज हैं दलित वोटर्स? जानिए आखिर क्यों हुआ एससी आरक्षित सीटों पर नुकसान. *एनडीटीवी इंडिया*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://ndtv.in/india/sc-reserved-seats-huge-loss-to-bjp-narendra-modi-congress-lok-sabha-election-2024-5834386

सिद्दीकी, एन. (जून 4, 2024). 0 लोकसभा सीटें, घटता वोट शेयर, दूसरी पंक्ति का नेतृत्व ना होना - बीएसपी के सामने अस्तित्व का संकट. *द प्रिंट*. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://theprint.in/politics/0-lok-sabha-seats-dipping-vote-share-no-second-rung-leadership-bsp-faces-existential-crisis/2114037/

यादव, सरदेसाई और शास्त्री. (जून 13, 2024). द सोशियोलॉजी ऑफ 2024 लोकसभा इलेक्शन्स इन 10 चार्ट्स. *द प्रिंट*. रिट्रीव्ड फ्रॉम

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 128-137)
UGC-CARE (Group-I)

राजस्थान में दलित वोट

कर्मराज वर्मा*

राजस्थान में चुनावी राजनीति की द्वि-ध्रुवीय प्रकृति में मतदाताओं की बढ़ती हिस्सेदारी तथा ज्यादा उत्साह से चुनावों में हिस्सा लेने जैसे कारकों ने राज्य की चुनावी प्रतिस्पर्धा को अधिक तीव्र बना दिया है। इस प्रतिस्पर्धा में कांग्रेस एवं भाजपा अधिकाधिक क्षेत्रों और सामाजिक समूहों ख़ास तौर से वंचित एवं दलित समुदायों में अपना जनाधार बढ़ाने के प्रयास में लगे हुए हैं। ये प्रयास तेज गति से हो रहे हैं, जिससे दलित समुदाय के मतदान व्यवहार में बदलाव हुआ है। अब दलित वोट किसी एक राजनीतिक दल तक सीमित नहीं रहे हैं, बल्कि यह चुनावी राजनीति में उपलब्ध मुख्य विकल्पों में समायोजित होते जा रहे हैं। और इनके मतदान व्यवहार और राजनीतिक चयन में क्षेत्र, आयु, लिंग, शिक्षा, आय वर्ग आदि कारकों का प्रभाव भी देखा जा सकता है। आलेख में राजस्थान में दलित वोट और राजनीतिक दलों के लिए उनके समर्थन पर क्षेत्र, आयु, लिंग, शिक्षा एवं आय वर्ग के प्रभावों को जानने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द - राजनीतिक संरचनाएं, चुनावी प्रक्रियाएं, द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था, एक-दलीय प्रभुत्व, लोकतांत्रिकरण, सामाजिक मंथन, जाति एवं राजनीति की अन्योन्य क्रिया, वोट बैंक, मतदान व्यवहार, राजनीतिक चयन, हिस्सेदारी, जनाधार, सामाजिक पृष्ठभूमि।

*अतिथि संकाय, राजनीति विज्ञान विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.).
E-mail: verma.karamraj@gmail.com

प्रस्तावना

भारत में 1990 के दशक से चुनावी राजनीति की संरचनाओं में हुए परिवर्तनों ने राजस्थान की राजनीति को द्वि-ध्रुवीय बना दिया है। इस दशक में हुए सामाजिक मंथनों और जाति एवं राजनीति की अन्योन्यक्रिया के फलस्वरूप चुनावी प्रक्रियाओं में दलित समुदाय का महत्व बढ़ा है। लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया में दलित मतदाता निरंतर सक्रिय होते जा रहे हैं, अब उनकी चुनावी प्राथमिकताएं किसी एक राजनीतिक दल तक सीमित नहीं रही है, अपितु यह चुनावी राजनीति में उपलब्ध विकल्पों तक फैलती जा रही है। राज्य में दलित वोट दलीय व्यवस्था की प्रकृति के साथ समायोजित होते जा रहे हैं।

शोध प्रविधि

यह आलेख टोंक, निवाई-अजा, अजमेर उत्तर एवं दूदू-अजा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में कुल 203 दलित मतदाताओं (अनुसूचित जाति) के साक्षात्कार के बाद किए गए आंकड़ों के विश्लेषण पर किया गया है। साक्षात्कार के दौरान दलितों के औसत आंकड़ों को इसका आधार रखा गया है। मतदाताओं से पूछे गए सवालों के जवाब में 2018 के विधानसभा चुनाव और 2019 के लोकसभा चुनाव में दिए गए मतदान के औसत के आधार पर उनके मतदान पर विभिन्न कारकों के प्रभावों का विश्लेषण किया गया है, जबकि राजनीतिक दलों के पक्ष में वोट एवं समर्थन पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखने के लिए दलित मतदाताओं द्वारा 2018 के विधानसभा चुनाव और 2019 के लोकसभा चुनाव में किये गए मतदान और पिछले दो-तीन या फिर इससे अधिक लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में पार्टी पक्ष में किये गए वोट एवं समर्थन को विश्लेषित किया गया है।

पार्टी पक्ष में मतदान

परम्परागत रूप से दलितों को कांग्रेस के वोट बैंक के रूप से देखा जाता है। लेकिन राज्य की राजनीति और दलीय व्यवस्था के बदलते स्वरूप के कारण कांग्रेस का दलित वोट घटने लगा है। राज्य की द्वि-दलीय प्रतिस्पर्धा से एक-दलीय प्रभुत्व की ओर बढ़ती राजनीति में भाजपा ने दलितों में कांग्रेस के विकल्प के तौर पर अपनी स्थिति मजबूत की है। यद्यपि कांग्रेस को आज भी दलित मतदाताओं के सर्वाधिक वोट मिलते हैं, जो सर्वेक्षण के आंकड़ों के आधार पर 50 से 60 प्रतिशत वोट हैं, जबकि भाजपा को दलित मतदाताओं के 25 से 35 प्रतिशत मत मिलते हैं। इस दृष्टि से दलित मतदाताओं का झुकाव आज भी कांग्रेस की तरफ बना हुआ है, यद्यपि सर्वेक्षण के आंकड़ें यह भी संकेत करते हैं कि हाल ही में संपन्न लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में दलित मतदाताओं में भाजपा का जनाधार बढ़ा है, और फिर राज्य के दलित मतदाताओं के वोट मुख्यत: इन दोनों ही प्रमुख दलों में बंटे हुए है।

तालिका 1

पार्टी पक्ष में मतदान दलित मतदान

राजनीतिक दल	लोकसभा चुनाव, 2019		विधानसभा चुनाव, 2018		औसत
	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	
कांग्रेस	110	54.2	122	60.1	57.15
भाजपा	67	33.0	54	26.6	29.8
बसपा	1	0.5	0	0.0	0.25
अन्य	0	0.0	3	1.5	0.75
कह नहीं सकते	18	8.9	18	8.9	8.9
लागू नहीं	7	3.4	6	3.0	3.2
कुल	203	100.0	203	100.0	100.0

स्रोत : सर्वेक्षण पर आधारित

कारकों का प्रभाव

मतदाताओं की राजनीतिक समझ और प्राथमिकताएं आम तौर पर उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि यथा- वर्ग या जाति, निवास स्थान, लिंग, शैक्षणिक स्तर एवं आयु इत्यादि से निर्धारित होती है। कई समाज-वैज्ञानिकों ने मतदाताओं के व्यवहार और उनकी सामाजिक स्थितियों के बीच गहन संबंधों की जाँच की है, उनका निष्कर्ष यह है कि विभिन्न व्यक्तियों या समूहों की सामाजिक स्थितियां अलग-अलग होती है, जिस कारण उनकी समस्याएं एवं हित भी अलग-अलग होते हैं और यह उनके द्वारा राजनीतिक दलों को दिए गए समर्थन में व्यक्त होती है। इस तरह परिवेश की भिन्नता के कारण मतदाताओं की समस्याएं, हित, निर्णय लेने की समझ और दृष्टिकोणों में विविधता पाई जाती है। यही विविधता उनके किसी राजनीतिक दल के लिए प्रतिबद्धता के रूप में प्रकट होती है। इसी संदर्भ में दलित मतदान एवं राजनीतिक दलों के पक्ष में वोट एवं समर्थन पर विभिन्न कारकों के प्रभावों का विश्लेषण दलित मतदान व्यवहार को समझने में सहायक होगा।

तालिका 2

दलित मतदान एवं पार्टी समर्थन पर प्रभाव (प्रतिशत में)

कारक	मतदान			मुख्य राजनीतिक दलों के पक्ष में वोट/समर्थन	
	वोट देते हैं	वोट नहीं दिया/ देते हैं	कुल आवृति	कांग्रेस	भाजपा
क्षेत्र					
ग्रामीण	95.6	4.4	114	58.4	45
शहरी	98.9	1.1	89	41.6	55
आयु					
18 से 35 वर्ष	96.5	3.5	86	42.5	37.3
36 से 45 वर्ष	100	0.0	51	23.9	33.3
46 से 60 वर्ष	98	02	50	24.8	21.6

कारक	मतदान			मुख्य राजनीतिक दलों के पक्ष में वोट/समर्थन	
	वोट देते हैं	वोट नहीं दिया/ देते हैं	कुल आवृति	कांग्रेस	भाजपा
60 से अधिक	100	0.0	16	8.8	7.8
लिंग					
पुरुष	97.5	2.5	119	57.5	62.7
महिला	96.4	3.6	84	42.5	37.3
शिक्षा					
निरक्षर	94.6	5.4	37	23	11.4
साक्षर	100	0.0	16	5.3	7.8
प्राथमिक	97.9	2.1	47	23.9	25.5
माध्यमिक	100	0	28	14.2	17.6
उच्च माध्यमिक	91.3	8.7	23	10.6	13.7
उच्च शिक्षा	98.1	1.9	52	23	23.5
आय वर्ग					
निम्न	91.1	8.9	45	18.6	29.4
मध्य	98.4	1.6	129	63.7	60.8
उच्च	100	0.0	29	17.7	9.8
कुल आवृति (203)				113	51

स्रोत्र : शोध सर्वेक्षण पर आधारित

क्षेत्र

ग्रामीण और शहरी मतदान का व्यवहार आमतौर पर अलग-अलग होता है। कई चुनावी अध्ययन यह धारणा निर्मित करते हैं कि शहरी मतदाताओं की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों के मतदाता अधिक वोट देते हैं, लेकिन सर्वेक्षण के आंकड़ें दलित मतदाताओं के संदर्भ में इसके उलट धारणा निर्मित करते हैं कि ग्रामीण की तुलना में शहरी दलित मतदाता अधिक वोट देते हैं। तालिका 2 के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के 114 के नमूने में से 95.6 प्रतिशत दलित मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हैं, जबकि शहरी क्षेत्र के कुल 89 के नमूने में से 98.8 प्रतिशत दलित मतदाता वोट देते हैं।

कांग्रेस का जनाधार ग्रामीण क्षेत्रों के दलित मतदाताओं में अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि भाजपा का जनाधार शहरी क्षेत्रों के दलित मतदाताओं में अधिक हैं। तालिका 2 के आंकड़ों के आधार पर कांग्रेस को वोट देने वाले 58.4 प्रतिशत दलित मतदाता ग्रामीण क्षेत्रों से हैं, जबकि 41.6 प्रतिशत मतदाता शहरी क्षेत्रों के हैं। इसी तरह भाजपा को वोट देने वाले 55 प्रतिशत दलित मतदाता शहरी क्षेत्रों के हैं, जबकि 45 प्रतिशत मतदाता ग्रामीण क्षेत्रों से हैं।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के दलित मतदान व्यवहार पर राष्ट्रीय स्तर पर पुष्पेंद्र के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि "भाजपा को मिलने वाले दलित वोट शहरी इलाकों से आते हैं, हालांकि भाजपा ने देहाती इलाकों में भी अपना जनाधार विस्तृत किया है लेकिन उसका समर्थन-आधार शहर केंद्रित ही बना हुआ है... कांग्रेस का समर्थन-आधार शहर और गाँव दोनों

जगह पर देखा जा सकता है" (पुष्पेन्द्र, 1999: 347)। इसी तरह सुहास पल्शीकर अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकालते हैं कि "शहरी इलाकों में दो-तिहाई से अधिक दलित मतदाता कांग्रेस एवं भाजपा में बंटे हुए हैं... कांग्रेस एवं भाजपा दोनों को ही शहरी दलितों के बीच अधिक वोट मिलते हैं, इस प्रकार, शहरी इलाकों में प्रतिस्पर्धा स्पष्ट रूप से द्विध्रुवी है... ग्रामीण क्षेत्रों में दलित वोट कांग्रेस, भाजपा, बसपा और अन्य स्थानीय खिलाड़ियों के बीच विभाजित है" (पल्शीकर, 2007: 112-13)। राजस्थान के मतदाताओं के संदर्भ में संजय लोढ़ा के अध्ययन का निष्कर्ष यह कहता है कि "भाजपा को आनुपातिक रूप से शहरी क्षेत्रों से और कांग्रेस को ग्रामीण इलाकों से अधिक समर्थन मिलता है" (लोढ़ा, 2009: 337)।

राजस्थान के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के दलित मतदान व्यवहार के संदर्भ में प्रस्तुत शोध आलेख के निष्कर्ष, राष्ट्रीय स्तर पर इन विद्वानों के निष्कर्षों से पूरी तरह से मेल नहीं खाते है, अपितु यह एक अलग तस्वीर पेश करते हैं, जिसमें राज्य की दलीय प्रतिस्पर्धा में द्वि-दलीय प्रधानता की प्रकृति में ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में दलित वोट कांग्रेस एवं भाजपा में बंटे हुए हैं, दोनों ही इलाकों में प्रतिस्पर्धा द्वि-दलीय है। सर्वेक्षण के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि कांग्रेस एवं भाजपा दोनो ही दलों का समर्थन-आधार शहर एवं गाँव दोनों ही जगह देखा जा सकता है। इसमें महत्वपूर्ण निष्कर्ष जो संजय लोढ़ा के अध्ययन से प्रमाणित होता है वह यह है कि कांग्रेस को मिलने वाले वोट ग्रामीण इलाकों में अधिक है, जबकि भाजपा को मिलने वाले वोट शहरी इलाकों में अधिक है, किसी एक इलाके पर किसी एक पार्टी के दलित वोट केंद्रित नहीं है।

आयु

लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में दलित मतदान को आयु वर्ग के आधार पर देखा जाए तो, तालिका 2 के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि इन चुनावों में 36 से 45 और 60 साल से अधिक आयु के दलित मतदाता सौ फीसदी वोट देते हैं, जबकि 46 से 60 वर्ष आयु के 98 प्रतिशत मतदाता और 18 से 35 वर्ष आयु के 95.6 प्रतिशत मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि इन चुनावों में युवा दलित मतदाताओं की मतदान में अपेक्षाकृत कम भागीदारी होती हैं। यह निष्कर्ष युवा एवं चुनावी राजनीति के बीच संबंधों पर संजय कुमार के अध्ययन के निष्कर्ष पर आधारित है कि भारतीय युवाओं में चुनावी राजनीति में रूचि बढ़ी है, लेकिन जब मतदान की बात आती है तो इसमें उनकी भागीदारी कम होती है।

आयु के आधार पर कांग्रेस एवं भाजपा के दलित मतदान व्यवहार को देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि बढ़ते आयु वर्ग के साथ दोनों ही दलों का मतदान घटता हुआ नजर आ रहा है। दोनों ही दलों में सबसे अधिक वोट देने वाले 18 से 35 वर्ष के मतदाता है। 18 से 35 वर्ष की आयु के मतदाता कांग्रेस के पक्ष में 42.5 प्रतिशत और भाजपा के पक्ष में 37.3 प्रतिशत वोट देते हैं। सबसे कम वोट देने वाले इन दोनों ही दलों में 60 वर्ष से अधिक आयु के मतदाता है, जो कांग्रेस के पक्ष में 8.8 प्रतिशत और भाजपा के पक्ष में 7.8 प्रतिशत मत देते हैं।

इसी तरह 36 से 45 वर्ष के दलित मतदाता कांग्रेस के पक्ष में 23.9 प्रतिशत तो, भाजपा के पक्ष में 33.3 प्रतिशत मतदान करते हैं, जबकि 46 से 60 वर्ष आयु के मतदाता कांग्रेस के पक्ष में 24.8 प्रतिशत तो, भाजपा के पक्ष में 21.6 प्रतिशत मतदान करते हैं। इन आंकड़ों के आधार पर देखा जाए तो दोनों ही दलों में आयु के आधार पर दलित मतदान पैर्टन एक जैसा नजर आता है, लेकिन तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो इसमें अंतर यह है कि केवल 36 से 45 वर्ष की आयु के मतदाता भाजपा के पक्ष में अधिक मतदान करते हैं, अन्यथा सभी आयु वर्ग में दलित मतदान कांग्रेस के पक्ष में अधिक वोट देते हैं। इस तरह 36 से 45 वर्ष के दलित मतदाताओं के मतदान में अंतर देखा जा सकता है, जबकि इस संबंध में पुष्पेंद्र के अध्ययन का निष्कर्ष यह कहता है कि 'दलित मतदाता आयु के आधार पर ख़ास भेद करते हुए नहीं दिखते हैं।'

लिंग

दलित महिलाओं के दृष्टिकोण एवं गतिविधियों को जानने के लिए लिंग एक महत्वपूर्ण कारक है। यद्यपि "यह लंबे समय तक बहस का विषय होगा कि क्या जातियाँ-लिंग एक-दूसरे पर व्यापक कारक के रूप में कार्य करते हैं" (पल्शीकर, 2007: 112-13)। लिंग के मामले में आम समझ यह रही है कि पुरुषों के अनुपात में महिलाएं कम वोट देती हैं, लेकिन इससे अलग राजस्थान के मतदाताओं के संदर्भ में 1990 के बाद के सभी विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों पर नजर डाले तो, पता चलता है कि पुरुष मतदाताओं के मुकाबले में महिला मतदाताओं का मतदान प्रतिशत तीव्रता से बढ़कर लोकसभा चुनावों में लगभग पुरुषों के बराबर और विधानसभा चुनावों में पुरुषों से अधिक हो गया है। तालिका 2 के आंकड़ों के आधार पर लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में दलित मतदान को देखा जाए तो, यह अपेक्षाकृत पुरुषों के पक्ष में जरुर है, पर इसमें कोई ख़ास अंतर दिखाई नहीं देता, जहाँ 97.5 प्रतिशत पुरुष मतदाता इन चुनावों में वोट देते हैं, वहीं 96.4 महिला मतदाता भी इन चुनावों में अपने मत का प्रयोग करती है।

कांग्रेस के पक्ष में वोट देने वाले 57.5 प्रतिशत पुरुष तो, 42.5 प्रतिशत महिला मतदाता है, जबकि भाजपा के पक्ष में वोट देने वाले 62.7 प्रतिशत पुरुष और 37.3 प्रतिशत महिला मतदाता है। यहां लिंग का महत्व यह नजर आता है कि दलित मतदाता जहाँ अपनी पहली पसंद के रूप में कांग्रेस को वोट देते हैं, वहीं दलित महिलाएं भाजपा की अपेक्षा कांग्रेस की तरफ अधिक रुख करती है। इस संबंध में सुहास पल्शीकर के अध्ययन का निष्कर्ष भी यही कहता है कि 'दलित महिलाओं में, उनके वंचित अस्तित्व की बहु-प्रकृति के कारण कांग्रेस को वोट देने की प्रवृति होती है।' इसी तरह महिला मतदान व्यवहार के बारे में राजेश्वरी देशपांडे के अध्ययन का निष्कर्ष "महिला मतदाता अपने सामाजिक समूहों के मतदान व्यवहार को ज्यादा पुष्ट या मजबूत करती है" (देशपांडे, 2014: 178) भी प्रस्तुत शोध निष्कर्ष के अनुरूप ही दिखाई देता है। इसके अलावा योगेंद्र यादव भी अपने अध्ययन में यह व्यक्त करते

हैं कि पिछले वर्षों के दौरान कांग्रेस को महिलाओं के वोट ख़ास तौर पर मिलते रहे हैं। इस तरह दलित महिलाओं के संदर्भ में भी प्रस्तुत शोध के आंकड़े इसी मत को पुष्ट करते हैं। और फिर, राजस्थान की महिला मतदाताओं के संदर्भ में संजय लोढ़ा के अध्ययन का निष्कर्ष "पिछले चुनावों में महिलाओं का झुकाव कांग्रेस की तरफ अधिक रहा है" (लोढ़ा, 2009: 337), भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

शिक्षा

शिक्षा मतदाताओं की मतदान एवं राजनीतिक पसंद में अहम भूमिका निभाती है। तालिका 2 के आंकड़ों के आधार पर देखा जाए तो लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में निरक्षर और उच्च माध्यमिक स्तर वर्ग की शिक्षा वाले दलित मतदाता अपेक्षाकृत कम वोट देते हैं, जो अपने-अपने वर्ग में क्रमश: 94.6 एवं 91.3 प्रतिशत है, जबकि साक्षर और माध्यमिक स्तर वर्ग की शिक्षा वाले दलित मतदाता शत प्रतिशत मतदान करते हैं। इसी तरह उच्च शिक्षा एवं प्राथमिक शिक्षा स्तर वर्ग की शिक्षा वाले मतदाता इन दोनों के बीच लगभग समान मात्रा में मतदान करते हैं, जो उच्च शिक्षा वर्ग के मतदाताओं में 98.1 प्रतिशत और प्राथमिक शिक्षा वर्ग के मतदाताओं में 97.9 प्रतिशत है।

सर्वेक्षण के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि कांग्रेस के पक्ष में वोट देने वाले निरक्षर, प्राथमिक और उच्च शिक्षा स्तर के मतदाता समान रूप से लगभग 23-23 प्रतिशत मतदान करते हैं, जबकि माध्यमिक स्तर के 14.2 और उच्च माध्यमिक स्तर के 10.6 प्रतिशत मतदाता कांग्रेस के पक्ष में मतदान करते हैं, सबसे कम 5.3 प्रतिशत साक्षर मतदाता कांग्रेस के पक्ष में मतदान करते हैं। इसी तरह भाजपा के पक्ष में सबसे अधिक 25.5 प्रतिशत प्राथमिक स्तर कि शिक्षा वाले दलित मतदाता वोट देते हैं। इसके बाद उच्च शिक्षा स्तर के 23.5 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर के 17.6 प्रतिशत, उच्च माध्यमिक स्तर के 13.7 प्रतिशत और निरक्षर मतदाता 11.8 प्रतिशत भाजपा के पक्ष में मतदान करते हैं प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के मतदाता समान रूप से 18.7-18.7 प्रतिशत उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा वाले मतदाता भी समान रूप से 15.6-15.6 प्रतिशत तथा सबसे कम 6.3 प्रतिशत साक्षर मतदाता भाजपा के पक्ष में मतदान करते हैं। सबसे कम 7.8 प्रतिशत साक्षर मतदाता भाजपा के पक्ष में मतदान करते हैं।

इस संबंध में सुहास पल्शीकर के अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष यह है कि 'कम पढ़े-लिखे दलित मतदाता कांग्रेस का आधार है और उच्च शिक्षा वाले दलित मतदाता कांग्रेस की तुलना में भाजपा को अधिक पसंद करते हैं।' इसी तरह राजस्थान के मतदाताओं के संदर्भ में संजय लोढ़ा के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि "कांग्रेस को निरक्षर और कम शिक्षित समूहों से अधिक समर्थन मिलता है तो भाजपा को अधिक शिक्षित क्षेणियों से" (लोढ़ा, 2009: 337) इस संदर्भ में, प्रस्तुत शोध के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि दोनों ही दल विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर अपने दलित मतों को उठाते हैं, यद्यपि तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो

कांग्रेस को निरक्षर मतदाताओं के अधिक वोट मिलते हैं, जबकि अन्य सभी शैक्षिक वर्गों में अपेक्षाकृत भाजपा को अधिक वोट मिलते हैं।

आय वर्ग

आय वर्ग के आधार पर सर्वेक्षण के आंकड़ें स्पष्ट करते हैं कि निम्न आय वर्ग के दलित मतदाता लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में तुलनात्मक रूप से कम वोट देते हैं, निम्न आय वर्ग के 91.1 प्रतिशत दलित मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हैं, जबकि मध्यम आय वर्ग में 98.4 प्रतिशत और उच्च वर्ग के सभी दलित मतदाता इन चुनावों में वोट देते हैं।

अधिकांश दलित मध्यम आर्थिक स्थिति का जीवन जीते हैं और कांग्रेस एवं भाजपा दोनों ही दलों को सबसे अधिक वोट मध्यम आय वर्ग के मतदाताओं के मिलते हैं। यद्यपि तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो मध्यम आय वर्ग के दलित मतदाता कांग्रेस को अपेक्षाकृत अधिक वोट देते हैं, तालिका 2 के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि कांग्रेस को अपने मतों का 63.7 प्रतिशत और भाजपा को अपने मतों का 60.8 प्रतिशत हिस्सा इसी वर्ग के वोटों का मिलता है। इसी तरह निम्न आय वर्ग में कांग्रेस को 18.6 प्रतिशत तो भाजपा को 29.4 प्रतिशत मत मिलते हैं, जबकि उच्च आय वर्ग में कांग्रेस को 17.7 प्रतिशत तो भाजपा को 9.8 प्रतिशत दलित वोट देते हैं।

आशय यह कि जहाँ कांग्रेस को तुलनात्मक रूप से मध्यम एवं उच्च आय वर्ग में दलित मतदाताओं के अधिक वोट मिलते हैं, वहीं भाजपा को निम्न आय वर्ग में दलित मतदाताओं के अपेक्षाकृत अधिक मत प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोध का यह निष्कर्ष राष्ट्रीय स्तर पर दलित मतदाताओं पर पुष्पेंद्र एवं सुहास पलशीकर के निष्कर्षों और राजस्थान के मतदाताओं पर संजय लोढ़ाके निष्कर्ष के विपरीत है। इस संबंध में पुष्पेंद्र का निष्कर्ष यह है कि 'मध्यमवर्गीय और धनी दलित भाजपा को काफी पसंद करते हैं... जबकि कांग्रेस का फैलाव सभी वर्गों में समान रूप से है।' इसी तरह सुहास पल्शीकर के अध्ययन का निष्कर्ष यह कहता है कि 'भाजपा के वर्ग और समर्थन के बीच काफी सीधा संबंध है, वर्ग नीचा है तो भाजपा के लिए समर्थन कम है... भाजपा को निश्चित रूप से कांग्रेस की तुलना में ग़रीब दलितों में कम समर्थन मिलता है।' संजय लोढ़ा के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि "कांग्रेस को निर्धन तबकों से अधिक समर्थन प्राप्त होता है, जबकि भाजपा को मध्यम और उच्च वर्गों से" (लोढ़ा, 2009: 337)। यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक होगा कि निष्कर्षों की यह असमानता संभवत: आय वर्ग निर्धारण मानदंडों की भिन्नता के कारण भी हो सकती है।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में दोनों ही प्रमुख दलों - कांग्रेस एवं भाजपा को हर क्षेत्र, आयु, लिंग, शिक्षा एवं वर्ग के दलित मतदाता वोट देते हैं। यद्यपि कांग्रेस का जनाधार ग्रामीण क्षेत्रों के दलित मतदाताओं में अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि

भाजपा का जनाधार शहरी क्षेत्रों के दलित मतदाताओं में अधिक नजर आता है। आयु के आधार पर नजर डालें तो कांग्रेस एवं भाजपा दोनों ही दलों के प्रति दलितों का मतदान व्यवहार एक जैसा नजर आता है। बढ़ती आयु के साथ दोनों ही दलों में मतदान घटता हुआ दिखाई देता है। इसी तरह लैंगिक नजरिये से देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि दलित महिलाएं भाजपा की अपेक्षा कांग्रेस की तरफ अधिक रुख करती है। दलित मतदाताओं की शैक्षणिक स्थिति के आधार यह दृष्टिगत होता है कि दोनों ही दलों का जनाधार सभी शैक्षणिक स्तरों तक फैला हुआ है, यद्यपि तुलनात्मक रूप से कांग्रेस को जहां निरक्षर दलितों के अधिक वोट मिलते हैं, वहीं भाजपा को सभी शिक्षित वर्गों में अपेक्षाकृत अधिक मत मिलते हैं। अंतत: आय वर्ग के आधार पर यह परिलक्षित होता है कि कांग्रेस एवं भाजपा दोनों ही दलों को सबसे अधिक वोट मध्यम आय वर्ग के मतदाताओं के ही मिलते हैं, इसमें अंतर सिर्फ यह है कि जहां कांग्रेस को मध्यम एवं उच्च दलित वर्ग में अधिक वोट मिलते हैं, वहीं भाजपा को निम्न आय वर्ग में अधिक मत प्राप्त होते हैं।

संदर्भ

देशपांडे, राजेश्वरी (2014). क्या चाहती हैं वोटर औरतें?. *प्रतिमान*, खंड- 2, अंक- 1, 173-182.

कुमार, संजय (2014). युवा मतदान : बंटी हुई प्राथमिकताएं. *प्रतिमान*, खंड- 2, अंक- 1, 183-193.

लोढ़ा, संजय (1999). कास्ट एंड टू-पार्टी सिस्टम. *इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 34(48), 3344-3349.

लोढ़ा, संजय (2009). राजस्थान का चुनावी राजनीति की प्रकृति, विकास और निर्धारक तत्व, अरविंद मोहन (सम्पा.) में, *लोकतंत्र का नया लोक : चुनावी राजनीति में राज्यों का उभार*, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 323-355.

मिश्रा, ज्योति एवं विभा अत्री (2020). दलित वोट : भाजपा क्यों आगे रही? *प्रतिमान*, अंक 16, 135-150.

पल्शीकर, सुहास (2007). दलित पॉलिटिक्स इन नाइनटीज : इलेक्टोरल पॉलिटिक्स एंड प्रेडिकमेंट बिफोर एन अंडरप्रिविलेज्ड कम्युनिटी. *इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क*, खंड 68, अंक 1, 101-129.

पल्शीकर, सुहास - यादव, योगेंद्र (2005). वर्चस्व से समाभिरूपता तक : भारतीय राज्यों में दलीय व्यवस्था व चुनावी राजनीति (1992-2002). *शोधार्थी*, प्रथम अंक, संख्या 2, 37-42.

पुष्पेंद्र (1999). दलित एसर्शन थ्रू इलेक्टोरल पॉलिटिक्स. *इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 34(36), 2609-2618.

पुष्पेंद्र (2014). वोट डालने वाले दलित : पार्टियों पर कम, राजनीतिक व्यवस्था पर ज्यादा यकीन, अभय कुमार दुबे (सम्पा.) में, *आधुनिकता के आईने में दलित*, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 342-351) .

थाचिल, ताग्कि एवं हेरिंग गेनाल्ड (2008). पुआर चॉइसेस : डी अलाइनमेंट, डेवलपमेंट एंड दलित/आदिवासी वोटिंग पैटर्न्स इन इंडियन स्टेट्स. *कन्टेम्परेरी साउथ एशिया*, 16(4), 551-464

वर्मा, कर्मराज (2022). राजस्थान के दलित मतदाताओं की दलीय प्रतिबद्धताएँ, *अपनी माटी*, अंक 45, अक्टूबर-दिसम्बर.

वर्मा, राहुल (2009). दलित वोटिंग पैटर्न्स. *इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 44(39), 95-98.

वर्मा, राहुल-मिश्रा, ज्योति (2014). दलित-आदिवासी वोट बैंक का मिथक. *प्रतिमान*, खंड 2, अंक 1, 120-132.

यादव, योगेंद्र (2010). भारतीय राजनीति में पुनर्विन्यास : विधानसभा चुनाव (1993-95). *शोधार्थी*, प्रथम अंक, 1-8.

यादव, योगेंद्र - पल्शीकर, सुहास (2009). पार्टी प्रणाली और चुनावी राजनीति. अरविन्द मोहन (संपा.) में, *लोकतंत्र का नया लोक : चुनावी राजनीति में राज्यों का उभार* (पृ. 14-72). नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 138-145)
UGC-CA RE (Group-I)

भारतीय राजनीति में जाति की क्रियाशीलता : अन्य पिछड़े वर्ग के विशेष सन्दर्भ में

नीता बोरा शर्मा*

प्रत्येक राजनीति विभिन्न कारकों से प्रभावित और प्रेरित होती है। जहाँ भारतीय राजनीति को देखें तो राजनीति के कई नए कारक उत्पन्न हुए हैं और कई कारक अब प्रासंगिक नहीं रह गए हैं। इसी क्रम में भारतीय राजनीति में जाति एक ऐसा कारक है जो अभी भी प्रासंगिक है, हालाँकि इसकी संस्थाओं और मूल्यों में बदलाव आया है। जाति व्यवस्था भारत में सामाजिक और राजनीतिक संरचना का एक प्रमुख पहलू है। भारतीय राजनीति जाति आधारित राजनीति है। जाति राजनीतिक दलों, हित समूहों और सभी राजनीतिक संरचनाओं और उनके कार्यों की प्रकृति, संगठन और कार्यप्रणाली को निर्धारित करती है। भारत में, जाति एक महत्वपूर्ण कारक है जो राजनीति को आकार प्रदान करती है। न केवल जाति राजनीति को प्रभावित करती है बल्कि राजनीति भी जाति को प्रभावित करती है। जातियों में चेतना उदय एवं जातिगत संगठनों के उदय ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल दिया है। भारत की चुनावी राजनीति में जाति के आधार पर प्रतिनिधि चुने जाते है, या जाति के आधार पर राजनीतिक दल टिकटों का बंटवारा करते हैं, तथा

*प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
E-mail: profneeta@gmail.com

राजनीतिक दलों का आधार, जातियों का समर्थन होता है। इस शोध पत्र में भारतीय राजनीति में जाति की क्रियाशीलता का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द - राजनीति, जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग।

प्रस्तावना

सत्ता के लिए संघर्ष और सत्ता एवं संसाधनों का वितरण राजनीति का प्रमुख क्षेत्र है। लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणालियों में, प्रतिभागी अपने व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों और आकांक्षाओं पर जोर देते हैं। वे एक विचारधारा से जुड़ते हैं और सामाजिक व्यवस्था में यथास्थिति बनाए रखने या सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए रणनीति विकसित करते हैं। नि:संदेह राजनीति केवल सामाजिक शक्तियों और उनमें होने वाले संघर्षों का खाका नहीं है। संवैधानिक ढांचे के साथ लोकतांत्रिक राजनीति का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन, सृजन के साथ-साथ अधिशेष का प्रबंधन और उसका उपयोग करना है। यह अपने उद्देश्यों के लिए उपयुक्त नई संस्था और मूल्य प्रणाली का निर्माण करता है। ये संस्थाएँ और विचारधाराएँ विशिष्ट संदर्भों में आकार लेती हैं और पुन: आकार लेती हैं, और इस प्रक्रिया में, राजनीति सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न करती है (शाह, 2004)।

गैर-हिंदुओं सहित सभी भारतीयों में सामाजिक संपर्क की पहचान के रूप में जन्म से जाति जुडी होती है। लेकिन जाति का अर्थ हिंदुओं और गैर-हिंदुओं के बीच समान नहीं है: गैर-हिंदुओं के बीच जाति को कोई धार्मिक मंजूरी नहीं है, यह केवल एक सामाजिक स्तर है जिसका वे हिस्सा हैं। हिंदुओं में यह माना जाता है कि किसी की जाति उसके कर्मों का पुरस्कार या दंड है। जाति का अर्थ हमेशा एक समान और सुसंगत नहीं होता है। जाति का एक विशिष्ट सामाजिक अर्थ है, जो समाज की सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति के स्थान की पहचान करता है।

भारतीय संविधान जाति को एक आदर्श के रूप में मान्यता नहीं देता है और विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से जातिविहीन सामाजिक व्यवस्था बनाने का प्रयास भी करता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र में धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। यह निर्देश देता है कि आर्थिक आकांक्षाओं या राज्य के किसी पद की नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी। यह पारंपरिक रूप से वंचित सामाजिक समूहों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सकारात्मक उपाय बताता है ताकि अंतत:, उन्हें जाति-आधारित भेदभाव का सामना न करना पड़े। इसके अलावा, संविधान समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के लिए अधिमान्य प्रावधान करता है, जैसे - अनुच्छेद 15(2), 15(4), 16(4), 29, 29(2), 35, 244, 320(4), 330, 332, और 335। अवसरों की कमी और सदियों पुरानी जाति/समुदाय-आधारित भेदभाव की व्यापकता के कारण इसे आवश्यक माना गया था।

जातियों में कभी भी एक समान संख्यात्मक शक्ति या प्रसार नहीं रहा है। कुछ पूरे क्षेत्र में बिखरे हुए हैं, कुछ-कुछ भौगोलिक क्षेत्रों में अत्यधिक केंद्रित हैं। इसलिए जाति का वर्णन करने, परिभाषित करने और पता लगाने में जटिलताएँ बहुत अधिक हैं। संक्षेप में, राजनीति के संबंध में जाति की भूमिका और स्थिति समय-समय पर, क्षेत्र-दर-क्षेत्र और जाति-दर-जाति बदलती रहती है (शाह, 2004)।

भारत में जातिगत राजनीति

परंपरागत रूप से वंचित समुदायों के जाति संघों ने विभिन्न प्रमुख राजनीतिक दलों के साथ मिलकर यह सुनिश्चित करने पर जोर दिया कि उनकी जाति के सदस्यों को चुनाव लड़ने के लिए पार्टी के टिकट दिए जाएं। पार्टियों ने शुरू में इन जातियों के दबाव का विरोध किया क्योंकि पार्टी को नियंत्रित करने वाली प्रमुख जातियों के पास प्रतिकारकारी ताकतें थीं। कुछ राजनीतिक दल उम्मीदवारों के नामांकन और चुनावों में लामबंदी को लेकर कुछ खास जातियों के साथ गठजोड़ बनाते हैं। वे घोषणा करते हैं कि वे इन जातियों और समुदायों के हितों की रक्षा के लिए खड़े हैं (शाह, 2004)।

जातिगत राजनीति में राजनीतिक दलों एवं जाति संघों के बीच बढ़ती पारस्परिकता के कारण तीन परिणाम सामने आए। सबसे पहले, जाति के सदस्य, विशेष रूप से गरीब और हाशिए पर रहने वाले लोग, जो अब तक राजनीतिक प्रक्रियाओं से अछूते रहे थे, उनका राजनीतिकरण किया गया और उन्होंने इस उम्मीद के साथ चुनावी राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया कि उनके हितों की पूर्ति होगी। दूसरा, जाति के सदस्य विभिन्न राजनीतिक दलों में विभाजित हो गए, जिससे जाति की पकड़ कमजोर हो गई। तीसरा, संख्यात्मक रूप से बड़ी इन जातियों को निर्णय लेने वाली संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिला और पारंपरिक रूप से प्रभावशाली जातियों की ताकत कमजोर हो गई। राजनीति शून्य में नहीं चलती। यह समाज में कार्य करती है, जहां यह सामाजिक शक्तियों से प्रभावित होती है। राजनीति सामाजिक शक्तियों को प्रभावित करती है और उन्हें बदल देती है। यदि राजनीतिक संस्थाएँ और राजनीतिक नेता समाज को बदलने के लिए सचेत प्रयास करते हैं, तो वे काफी हद तक सामाजिक व्यवस्था और उसके रिश्तों को प्रभावित कर सकते हैं और बदलाव ला सकते हैं। हम देख सकते हैं कि भारत में लोकतांत्रिक राजनीति जाति से प्रभावित रही है लेकिन इसने पारंपरिक जाति व्यवस्था और उसके मूल्यों को भी बदल दिया है। शुद्धता और अशुद्धता के प्रति इसका पारंपरिक सरोकार काफी कमजोर हो गया है (शाह, 2004)।

कई बार जातियाँ एक साथ आती हैं और सामाजिक सुधार के लिए, अपने अधिकारों और न्याय की मांग के लिए और प्रमुख जातियों के मुकाबले राजनीतिक शक्ति के लिए आंदोलन शुरू करती हैं। तमिलनाडु और महाराष्ट्र में गैर-ब्राह्मण आंदोलन इसके उदाहरण हैं। ज्योतिराव फुले ने ब्राह्मणवादी आधिपत्य को चुनौती देते हुए 1873 में महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज का आयोजन किया। हालाँकि गैर-ब्राह्मणों, विशेषकर मराठों ने अपनी

कोई पार्टी नहीं बनाई, लेकिन उन्होंने कांग्रेस पार्टी के भीतर सत्ता हासिल कर ली। इस आंदोलन ने क्षेत्र में राजनीति की दिशा बदल दी। तमिलनाडु में कई किसान जातियाँ, जैसे येल्लाला, गौंडा और पदायाचीय तच्चन (बढ़ई), कोल्लन (लोहार), और तत्तन (सुनार) जैसी कारीगर जातियों ने व्यक्तिगत रूप से और संयुक्त रूप से गैर-ब्राह्मण आंदोलनों की शुरुआत की। इस आंदोलन ने 1890 के दशक में पारायण महाजन सभा और आदि-द्रविण महाजन सभा जैसे कई जाति संघों का अनुसरण किया। 1916 में गैर-ब्राह्मण घोषणापत्र लाया गया, जिसमें सरकारी सेवाओं में ब्राह्मणों के प्रभुत्व और गैर-ब्राह्मणों, जो एक विशाल बहुमत थे, के साथ अन्याय को उजागर किया गया। स्वतंत्रता-पूर्व काल में भी, विशेषकर दक्षिण भारत में, जाति संगठन राजनीति में सक्रिय थे। साउथ इंडियन लिबरल फेडरेशन (जिसका आधिकारिक नाम बाद में जस्टिस पार्टी के नाम से जाना गया) नामक एक संगठन, जो मुख्य रूप से मद्रास प्रेसीडेंसी के ओबीसी से बना था, 1917 से सक्रिय था। यह संगठन अपने रुख में ब्राह्मण विरोधी और ब्रिटिश समर्थक था और यहां तक कि 1920 और 1937 के बीच तेरह वर्षों तक मद्रास प्रेसीडेंसी पर शासन भी किया। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विरोध में थी और 1937 के चुनावों में कांग्रेस से हार गई (वैद्यनाथन, 2019)। पार्टी ने 1919 में गैर-ब्राह्मण मामले को संयुक्त संसदीय समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल इंग्लैंड भेजा। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) इसकी शाखा है। नादरों के यान्नियाक्कुला क्षत्रिय संगम के दो गुटों ने तमिलनाडु टॉयलर्स पार्टी और कॉमनवेल्थ पार्टी का गठन किया और 1952 का चुनाव लड़ा। फिर उन्होंने राज्य मंत्रिमंडल में पद के लिए कांग्रेस के साथ सौदेबाजी की। अनुसूचित जाति महासंघ का गठन 1940 के दशक में अम्बेडकर द्वारा किया गया था। बाद में, 1956 में रिपब्लिकन पार्टी का गठन हुआ, ये मुख्य रूप से दलितों की पार्टी रही। झारखंड पार्टी का गठन बिहार में आदिवासी नेताओं द्वारा किया गया था, और यह आदिवासियों तक ही सीमित थी। 1984 में कांशीराम द्वारा शुरू की गई बहुजन समाज पार्टी (बसपा) दलितों की एक पार्टी है, जिसका लक्ष्य दलितों, अल्पसंख्यकों और ओबीसी का गठबंधन बनाना है।

चरण सिंह के नेतृत्व में भारतीय क्रांति दल किसानों के हितों के लिए खड़ा हुआ। 1969 के चुनावों में इसने उत्तर प्रदेश की चार प्रमुख किसान जातियों का गठबंधन विकसित किया। गठबंधन को अजगर कहा गया: इसमें अहीर, जाट, गुज्जर और राजपूत थे। गुजरात कांग्रेस ने कुछ जाति संघों के दबाव के आगे घुटने टेक दिए और पार्टी पदों को जाति के आधार पर वितरित किया। 1960 के दशक के उत्तरार्ध से इसने खुले तौर पर पिछड़ी जाति समर्थक रुख अपनाया है। 1971 के अपने घोषणापत्र में पार्टी ने लोगों के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों के शैक्षिक, रोजगार और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान से बढ़ावा देने का वादा किया। पार्टी ने चुनाव और पार्टी पदों पर ओबीसी को अधिक टिकट दिए। कांग्रेस ने सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में ओबीसी के लिए आरक्षण का समर्थन किया और बाद में इसे बढ़ाया और, कुछ कांग्रेसी नेता हैं जो खुले तौर पर और स्पष्ट रूप से पिछड़ी जातियों के लिए खड़े हैं और दिए गए

राजनीतिक ढांचे के भीतर विभाज्य और अविभाज्य लाभों के वितरण में उच्च जातियों का विरोध करते हैं। उन्होंने इन समुदायों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम चलाने के लिए शैक्षिक और अन्य संस्थान स्थापित किए हैं। परिणामस्वरूप, वे अक्सर ऊंची जातियों के रोष का पात्र बन जाते हैं। 1977 में, गुजरात में, कांग्रेस (आई) ने संसदीय टिकटों के वितरण और चुनावी लामबंदी के लिए क्षत्रियों, हरिजन, आदिवासियों और मुसलमानों का एक गठबंधन बनाया। पार्टी ने 20 सूत्रीय गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू करके गरीब समर्थक रुख अपनाया। 1980 के दशक में ऊंची जातियों के वर्चस्व वाले दो आरक्षण विरोधी आंदोलन कांग्रेस की आरक्षण नीति के खिलाफ थे (शाह, 2004)।

उत्तर प्रदेश में जाटों की सौ से अधिक उपजातियाँ हैं, वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक शक्तिशाली वोट बैंक हैं और लंबे समय से, पूर्व जाट नेता और पूर्व प्रधानमंत्री, चरण सिंह और उनके बेटे, अजीत सिंह राष्ट्रीय लोक दल के समर्थक रहे। वास्तव में, भारत में कई राजनीतिक दल,विशेषकर क्षेत्रीय दल जाति-आधारित और परिवार-नियंत्रित हैं। क्षेत्रीय स्तर पर कुछ पार्टियाँ है जो जाति कारकों पर बहुत अधिक निर्भर हैं। जैसे कर्नाटक में जनता दल सेक्युलर (वोक्कालिगा), तमिलनाडु में एआईएडीएमके (थेवर), पीएमके (वन्नियार) और डीएमके (ओबीसी और मुस्लिम), आंध्र प्रदेश में टीडीपी (कम्मास), महाराष्ट्र में शिव सेना (मराठा), उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी (यादव और मुस्लिम), बहुजन समाज पार्टी (अनुसूचित जाति) और राष्ट्रीय लोक दल (जाट) वोट जुटाने के लिए जातिगत लामबंदी पर निर्भर हैं (वैद्यनाथन, 2019)।

राजनीति में जातीय गणित उम्मीदवारों के चयन से ही शुरू हो जाता है, अधिकांश पार्टियाँ किसी निर्वाचन क्षेत्र में 'बहुसंख्यक' जाति (उपजाति सहित) से उम्मीदवार चुनने पर भरोसा करती हैं। मतदान के बाद सरकार का गठन भी जातिगत कारकों पर आधारित होता है और सरकारें बनाने में क्षेत्रीय और जातिगत दोनों कारकों को संतुलित किया जाता है। सभी प्रमुख जातियों को प्रतिनिधित्व मिलता है और प्रमुख सहायक जातियों को वित्त, गृह, सार्वजनिक कार्य, ऊर्जा, शिक्षा, भूमि, परिवहन आदि जैसे महत्वपूर्ण मंत्रालय मिलते हैं। परिवार द्वारा संचालित जाति-आधारित पार्टियाँ महत्वपूर्ण विभाग परिवार या विस्तारित परिवार के भीतर ही रखने का प्रयास करती हैं। इतना ही नहीं, पार्टी का कोषाध्यक्ष भी आमतौर पर परिवार से ही होता है या परिवार से जुड़ा हुआ होता है (वैद्यनाथन, 2019)। जातिगत तंत्र राजनीतिक लामबंदी में मदद करते हैं ताकि इससे नियुक्तियों, अनुबंधों, लाइसेंसों आदि के मामले में अपनी ही जाति के लोगों को अधिक से अधिक लाभ हो और इससे अगले चुनाव में संबंधित पार्टी को मदद मिलेगी। क्योंकि इसे भविष्य के लिए 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ' के रूप में उपयोग किया जाता है। जाति-आधारित लाभ वितरण का मुख्य लाभ यह है कि चुनाव के दौरान नेता लोगों को इस आधार पर अपने प्रति आकर्षित करने का प्रयास करते है।

अन्य पिछड़े वर्ग की जातिगत राजनीति में क्रियाशीलता

भारत सरकार ने 1953 में प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने 1955 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें 2399 जातियों को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा बताया गया। आयोग के अधिकांश सदस्यों ने सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में अन्य चीजों के अलावा ओबीसी के लिए आरक्षण की सिफारिश की। सरकार ने सिफारिशों को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया कि आयोग ने पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए कोई वस्तुनिष्ठ परीक्षण लागू नहीं किया था। हालाँकि, 1960 के दशक की शुरुआत में, सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस के लिए उत्तर और दक्षिण भारत में कुछ पिछड़ी जातियों के दबदबे को नजरअंदाज करना मुश्किल हो गया था। हिंदी भाषी क्षेत्र में सोशलिस्ट पार्टी ने ओबीसी को लामबंद किया। 1967 में, कांग्रेस के एकाधिकार को चुनौती दी गई और पार्टी ने कई उत्तर भारतीय राज्यों में सत्ता खो दी। कांग्रेस पार्टी 1969 में कांग्रेस (आई) और कांग्रेस (एस) में विभाजित हो गई, पूर्व का नेतृत्व इंदिरा गांधी ने किया। कांग्रेस (एस) के अध्यक्ष जगजीवन राम ने 1970 में कहा था, 'हिंदू समाज' विभिन्न जातियों का एक संघ है (शाह, 2004)।

राष्ट्रीय स्तर पर बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति 1978 में जनता सरकार द्वारा की गई थी। हालाँकि, आयोग की रिपोर्ट पूरी होने से पहले ही जनता सरकार ने सत्ता खो दी। कांग्रेस सरकार ने न तो मंडल आयोग की रिपोर्ट पर कोई निर्णय लिया और न ही रिपोर्ट को खारिज किया। लेकिन आरक्षण विरोधियों के लिए 1985 में गुजरात में तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने इस मुद्दे पर राष्ट्रीय सहमति विकसित करने का वादा किया था। हालाँकि, उस दिशा में भी कोई प्रयास नहीं किया गया।

सोशलिस्ट पार्टी के तत्कालीन नेता राम मनोहर लोहिया ने जाति को लामबंदी के एक कारक के रूप में मान्यता दी और मध्यवर्ती जातियों पर ध्यान केंद्रित किया, जिन्हें अन्य पिछड़ी जातियाँ या ओबीसी भी कहा जाता है। इससे दो प्रमुख विकास हुए। एक था उप-जातियों का एकीकरण या एकरूपीकरण और दूसरा था सरकारी सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण की मांग (वैद्यनाथन, 2019)।

देश भर में क्षेत्रीय दलों के गठन की घटना के पीछे ओबीसी एक मजबूत ताकत रही है। वे क्षेत्रीय दलों की परिघटना के पीछे दृढ़ता से थे और उन्होंने 'कांग्रेस प्रणाली' के पतन का नेतृत्व किया। उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश में, पिछड़े वर्ग तेलुगु देशम पार्टी (टीडीपी) जैसी क्षेत्रीय पार्टियों का मुख्य आधार थे। उत्तरप्रदेश में, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ओबीसी के बीच एक नए बहुजन-गठबंधन का प्रयोग करके, उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) सत्ता में आई, और दोनों राष्ट्रीय पार्टियों कांग्रेस और भाजपा को हरा दिया। इसी तरह, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) का नेतृत्व यादवों ने किया था, और जेडी (यू) के नीतीश कुमार का उत्थान संभव हुआ था। इसी तरह, ओबीसी बुंदेलखण्ड जैसे छोटे राज्यों की मांग में सक्रिय हैं, जिनमें उत्तर प्रदेश के सात जिले और मध्य प्रदेश के छह जिले शामिल हैं। यह एक ओबीसी बहुल क्षेत्र है, जहां ओबीसी की आबादी 50 प्रतिशत से

अधिक है और पिछड़ेपन के मुद्दों को उत्तर प्रदेश सरकार के असामान्य रूप से सक्रिय समर्थन के साथ, केवल जाति के बजाय ओबीसी संगठनों द्वारा क्षेत्र के आधार पर व्यक्त किया जा रहा है। जिसका नेतृत्व मायावती ने किया। चूंकि यह एक बहुजन बहुल क्षेत्र है, इसलिए उन्हें सरकार बनाने की उम्मीद है क्योंकि उन्हें दलित और ओबीसी समुदायों का लोकप्रिय समर्थन प्राप्त है। इस प्रकार, ओबीसी केवल जाति से आगे बढ़ते हुए नए क्षेत्रीय दलों के गठन और नए और छोटे राज्यों की मांग दोनों के साथ अपने जाति-आधारित हितों को जोड़ते हैं (गुडावर्दी, 2014)।

उत्तर प्रदेश में 1967 और 1995 के बीच राज्य विधानसभा में ऊंची जातियों का अनुपात 42 प्रतिशत से घटकर 17 प्रतिशत हो गया जबकि इसी अवधि के दौरान ओबीसी के सदस्य 24 प्रतिशत से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गए। इसी तरह का प्रतिमान बिहार और अन्य राज्यों में पाया जाता है। पिछड़ी जातियाँ राजनीतिक क्षेत्र में अपनी धाक जमा रही हैं। जातिगत नेता भी अपने अनुयायियों को जातिगत आधार पर संगठित करते हैं ताकि वे अपनी ताकत दिखा सकें। ओबीसी राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आये हैं। कांग्रेस ओबीसी मतदाताओं के बीच बहुत लोकप्रिय नहीं रही है, जो परंपरागत रूप से बड़े पैमाने पर समाजवादियों का समर्थन करते रहे हैं। 1989 के लोकसभा चुनाव से पहले जनता दल के गठन के साथ ही ओबीसी मतदाताओं का एक बड़ा वर्ग पार्टी की ओर बढ़ गया। सर्वेक्षण बताते हैं कि 1995 के विधानसभा और 1996 के लोकसभा चुनाव में ओबीसी ने बड़ी संख्या में जनता दल को वोट दिया। बीजेपी-समता पार्टी गठबंधन ने ओबीसी वोटरों को अपनी ओर खींचा। 1998 के चुनावों में, 42.5 प्रतिशत ओबीसी मतदाताओं ने भाजपा गठबंधन को वोट दिया, जबकि जनता दल गठबंधन को समर्थन 1996 में 50.3 प्रतिशत से घटकर 1998 में 17.3 प्रतिशत हो गया। राजद 28 प्रतिशत ओबीसी वोट हासिल करने में कामयाब रही, लेकिन 1999 के लोकसभा चुनाव में, समता पार्टी और जनता दल के समर्थन के साथ, राजद के लिए ओबीसी समर्थन और भी कम होकर 22 प्रतिशत हो गया। विधानसभा चुनाव से ठीक पहले दोनों पार्टियों के अलग होने से ओबीसी का एक तबका फिर से राजद की ओर बढ़ गया। ओबीसी मतदाताओं के बीच कांग्रेस के लिए समर्थन, जो 1995 में केवल 13.7 प्रतिशत था, 1998 में घटकर 7.9 प्रतिशत हो गया। हालाँकि, राजद के साथ गठबंधन में, कांग्रेस ओबीसी वोट का 15 प्रतिशत पाने में सफल रही, जो 2000 के विधानसभा चुनावों में घटकर केवल 5 प्रतिशत रह गई। यह इस बात का संकेत है कि राजद के साथ कांग्रेस के गठबंधन से पार्टी को ओबीसी वोट हासिल करने में मदद मिली (शाह, 2004)।

ओबीसी ने ऊंची जाति की जीवनशैली और रीति-रिवाजों का अनुकरण करके संस्कृतिकरण का मार्ग अपनाया। इस प्रक्रिया को न केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों द्वारा, बल्कि सामाजिक और धार्मिक सुधारकों और उदार नेताओं द्वारा भी प्रोत्साहित, सुविधाजनक और वैध बनाया गया था। स्वतंत्रता के बाद भारत में यह कुछ मतभेदों के साथ जारी रहा। अब यह पहले की तरह संस्कृतिकरण नहीं रहा। उनकी खोज संस्कृतिकरण के

मुहावरों के साथ 'आधुनिकीकरण' की है, जो शासक वर्ग द्वारा तैयार किया गया प्रतिमान है। इस प्रक्रिया में, कोली लोग कोली कहलाना अपनी गरिमा के अंतर्गत नहीं पाते हैं। अब वे जातिगत ढांचे को चुनौती दिए बिना सम्मान और प्रतिष्ठा चाहते हैं। वे उन लोगों के साथ समानता चाहते हैं जो पदानुक्रम में उनसे ऊपर हैं। साथ ही वे कुछ समूहों को अपने नीचे भी रखना चाहेंगे। पूंजीवादी आर्थिक विकास की प्रकृति और आधुनिक लोकाचार के अलावा, चुनावी राजनीति ने ऐसी आकांक्षाओं को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चुनावों में जाति के सदस्यों को एकजुट करने और सदस्यों की बदलती जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और आय सृजन कार्यक्रम जैसे कार्य करने के लिए उच्च और पिछड़ी जातियों के जाति संघों का गठन किया गया है (शाह, 2004)।

निष्कर्ष

जाति, भारतीय राजनीति में जोड़ने वाली एवं बाँटने वाले दोनों कारकों की तरह कार्य करती है। इस जाति चेतना ने भारतीय राजनीति में नयी प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिसमें पुराने जाति गठबंधन टूट रहे हैं एवं नये गठबंधन बनकर उभर रहे हैं। आधुनिक राजनीति के प्रभाव के अंतर्गत जातिवादी संगठन राजनीतिक लामबंदी का मुख्य आधार बन चुके हैं। पिछले तीन दशकों के दौरान कांग्रेस, जनता दल, बसपा, सपा और कई अन्य राजनीतिक दलों ने कुछ जातियों के हितों पर ध्यान दिया है। उन्होंने दलितों और ओबीसी को आकर्षित करने के लिए सामाजिक न्याय के मुद्दों पर मतदाताओं को लामबंद किया है। दलितों या आदिवासियों की जाति आधारित पार्टियाँ बन गई हैं। संक्षेप में, चुनावी राजनीति को समझने में जाति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। साथ ही, जाति ही सब कुछ नहीं है और निर्धारण कारक के रूप में इसकी भूमिका है। एक तरह से जाति एक अनूठी संस्था है और समसामयिक परिस्थिति में इसका उपयोग राजनीतिक लामबंदी के लिए भी किया जाता है। लोगों का तर्क है कि 'जातिविहीन' समाज बनाने की जरूरत है। पिछले दो हजार वर्षों में कई सुधारकों ने इसका प्रयास किया है। लेकिन वे जाति व्यवस्था को खत्म करने के बजाय उसमें सुधार करने में आंशिक रूप से ही सफल हुए हैं। दिलचस्प बात यह है कि लोकतंत्र ने एक-व्यक्ति, एक-वोट की अपनी प्रणाली के माध्यम से जाति की पहचान को मजबूत किया है और कई उप-जातियों को एक बड़ी जाति की पहचान में एकीकृत किया है।

संदर्भ

गुडावर्दी, अजय. (2014). *माओइस्म, डेमोक्रेसी एंड ग्लोबलाइजेशन.* सेज पब्लिकेशंस: नयी दिल्ली

शाह, घनश्याम. (2004). *कास्ट एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया.* परमानेंट ब्लैक: दिल्ली

वैद्यनाथन, आर. (2019). *कास्ट एस सोशल कैपिटल.* वेस्टलैंड पब्लिकेशंस: चेन्नई

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 146-156)
UGC-CARE (Group-I)

बाल यौन अपराध एवं रोकथाम के प्रति अभिभावकों में जागरूकता स्तर का अध्ययन : उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में

सौरभ जैन*

बच्चे किसी भी राष्ट्र का भविष्य होते हैं। यह वह पीढ़ी होती है जिसका वर्तमान राष्ट्र के भविष्य का आधार सुनिश्चित करता है। विगत कुछ वर्षों में बच्चों से संबंधित अनेक विषय चर्चा में आए हैं, जिनमें बाल यौन अपराध एक प्रमुख विषय है। एक ओर यह राष्ट्र बच्चों में ईश्वर के रूप की बात करता है तो वहीं दूसरी ओर यही बच्चे अपनी अबोध अवस्था में शारीरिक और मानसिक पीड़ा से गुजर रहे होते हैं। बाल यौन अपराध के अधिकांश मामलों में अपराधी उनके निकट रिश्तेदार ही होते हैं। ऐसे में बच्चों को सुरक्षित और अपराध मुक्त जीवन प्रदान करना एक कल्याणकारी राज्य का पहला कर्तव्य बनता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बाल यौन अपराध एवं रोकथाम के प्रति अभिभावकों में जागरूकता स्तर का अध्ययन किया गया है। इस शोध से उभरे परिणाम महत्वपूर्ण हैं जिन पर परिवारों, समाज, स्वशासी संस्थाएं, शासन-व्यवस्था, यथा - स्कूल शिक्षा विभाग, पुलिस और महिला एवं बाल विकास विभाग

*स्वतंत्र शोधार्थी, उज्जैन (म.प्र.). **E-mail: saurabh.jain172@gmail.com**

सरीखे विभाग, न्यायपालिका को विचार करना चाहिए एवं समन्वित कदम उठाने चाहिए।

बीज शब्द - बाल अधिकार, बाल यौन अपगध,पॉक्सो कानून।

प्रस्तावना

बाल यौन अपराध बच्चों से संबंधित विषयों का एक प्रमुख मुद्दा है। इस दिशा में पहल हेतु विधायी स्तर पर समय-समय पर पहल की गई है। बच्चों के खिलाफ घटित होने वाले अपराध को रोकने के दो तरीके हैं, पहला समाज नैतिक रूप से इतना मजबूत हो कि समाज में ऐसी घटनाएँ घटित ही न हो सकें और दूसरा सख्त कानून का निर्माण और उसका प्रभावी क्रियान्वयन हो ताकि अपराधी मनोवृत्ति वाले लोगों में कानून का भय हो। भले ही प्रथम मार्ग भारत के संदर्भ में त्वरित रूप में प्रभावी नहीं हो लेकिन इसके लिए आवश्यक सामाजिक बदलाव के लिए रणनीतिक रूप से प्रयासरत रहना ही पड़ेगा। साथ ही हमें दूसरे प्रतिरोधात्मक मार्ग के प्रभावी नियमन एवं क्रियान्वयन को अपनाना और लागू करना होगा।

बाल यौन शोषण एक बहुस्तरीय समस्या है जो बच्चों की शारीरिक सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, कल्याण और व्यवहार संबंधी पहलुओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। अब अपराध के कारणों में तकनीक ने भी योगदान दिया है। मोबाइल और डिजिटल प्रौद्योगिकियों ने बाल शोषण तथा दुर्व्यवहार को और अधिक बढ़ा दिया है। मीडिया द्वारा प्रसारित की जाने वाली सामग्री का सभी लोगों पर प्रभाव पड़ता है (शर्मा, 2022)। साइबर बुलिंग, उत्पीड़न और चाइल्ड पोर्नोग्राफी जैसे बाल शोषण के नए रूप भी सामने आए हैं।

भारत सरकार ने यौन अपराधों के खिलाफ यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012 (पॉक्सो अधिनियम) अधिनियमित किया है, लेकिन यह बच्चे को यौन शोषण से संरक्षित करने में विफल रही है (सिंह, मिश्रा 2024)। पॉक्सो अधिनियम के तहत दोषसिद्धि की दर केवल 32 प्रतिशत है जिसमे विगत पाँच वर्षों के दौरान औसतन लंबित मामलों का प्रतिशत 90 प्रतिशत है। कठुआ बलात्कार मामले में मुख्य आरोपी को दोषी ठहराए जाने में 16 महीने लग गए जबकि पॉक्सो अधिनियम में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि पूरी सुनवाई और दोषसिद्धि की प्रक्रिया एक वर्ष में पूरी की जानी चाहिये। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि हमारी जिम्मेदारी कानूनों के निर्माण तक ही सीमित न रहे बल्कि उनका प्रभावी क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। क्रियान्वयन के अभाव में कानून के निर्माण की सार्थकता शून्य रहेगी। यह जरूरी है कि निर्मित विधियों का ज्ञान समाज को भी हो। आखिर विधियाँ जिनके लिए निर्मित होंगी उन्हें ही उसका ज्ञान नहीं होगा तो विधियों के निर्माण का औचित्य शेष नहीं रहेगा।

साहित्य की समीक्षा

आईसीएमआर पत्रिका, अक्टूबर नवम्बर 2015 (अंक 10-11) में प्रकाशित लेख के अनुसार बाल यौन शोषण बहुआयामी समस्या है। केरल में 36 प्रतिशत लड़के और 35

प्रतिशत लड़कियां किसी न किसी समय यौन शोषण का शिकार हुए हैं। इस लेख में पॉक्सो कानून 2012 में निहित प्रावधानों के संदर्भ में चर्चा की गई है। बाल यौन शोषण के मनोवैज्ञानिक पहलुओं, स्वास्थ्य चिंताओं के विषय में बताया गया है (आईसीएमआर, 2015)।

यूनिसेफ की वेबसाइट के अनुसार बच्चों के प्रति हिंसा, शोषण और दुर्व्यवहार अक्सर बच्चे के जानकार व्यक्ति द्वारा किया जाता है। लोग बच्चों के खिलाफ हिंसा, शोषण और दुर्व्यवहार की रिपोर्ट करने में हिचकिचाते हैं। नतीजन इन अपराधियों की जांच कम हो पाती है और बहुत कम दोषियों को जिम्मेदार ठहराया जाता है।

जनसत्ता में प्रकाशित संपादकीय लेख 'जोखिम में बचपन' के अन्तर्गत बाल यौन अपराध रोकने में कानूनी विफलता की चर्चा की गई है। देश में अपराधों पर काबू पाने की कड़ी व्यवस्था के बावजूद आपराधिक घटनाओं का होना सरकार और तंत्र की नाकामी है (जनसत्ता, 2023)। इतना ही नहीं बच्चों को जघन्य अपराध से बचाने और न्याय दिलाने के लिए विशेष तंत्र गठित किये जाने के बाद भी ऐसे मामलों की सुनवाई और इस पर फैसले की धीमी रफ्तार पर भी प्रश्न किया गया है।

ईसीपीएटी की वेबसाइट के अनुसार भारत बाल यौन शोषण और दुर्व्यवहार के प्रति देश की प्रतिक्रिया पर आउट ऑफ द शैडो इंडेक्स में 58.2 के स्कोर के साथ 60 देशों में से 15 वें स्थान पर है। यह रैंकिंग इसे सर्बिया (59.1) के ठीक नीचे और दक्षिण अफ्रीका (58.1) से ठीक आगे रखती है। सूचकांक में भारत का स्कोर बड़े पैमाने पर बच्चों के यौन शोषण से निपटने के लिए एक मजबूत कानूनी और परिचालन ढांचे द्वारा समझाया गया है। भारत में भी बच्चों के यौन शोषण से संबंधित गतिविधियों को सम्बोधित करने के लिए मजबूत नागरिक समाज की भागीदारी है, जैसा कि राज्य और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर जागरूकता बढ़ाने वाली गतिविधियों से पता चलता है। इसके अतिरिक्त, भारत में मजबूत रिपोर्टिंग तंत्र हैं जिनका उपयोग यौन शोषण के शिकार बच्चों द्वारा किया जा सकता है।

इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया के अनुसार 2019 में देश में 504 मिलियन सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ता थे। इसके अतिरिक्त, 2020 के नवीनतम उपलब्ध अपराध आंकड़े देश के भीतर बाल यौन शोषण सामग्री से जुड़े मामलों में वृद्धि का संकेत देते हैं, जिसमें 738 दर्ज मामलों की तुलना में 2019 में 102 थे। अनुसंधान ने भारत के भीतर यौन शोषण की लाइव-स्ट्रीमिंग के अपराधियों और पीड़ितों दोनों की पहचान की है, और बच्चों के खिलाफ यौन जबरन वसूली के मामले दर्ज किए हैं। उच्च स्तर की कनेक्टिविटी और ऑनलाइन जोखिमों के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता के संकेतों के बावजूद, कई ऑनलाइन बाल यौन शोषण अपराध हैं जिन्हें कानून अभी तक पर्याप्त रूप से परिभाषित और गैर कानूनी घोषित नहीं करता है। उदाहरण के लिए, जबकि पॉक्सो अधिनियम बाल यौन शोषण सामग्री (डिजिटल रूप से उत्पन्न छवियों जैसे गैर-मौजूद बच्चों की यथार्थवादी छवियों सहित) की काफी व्यापक परिभाषा प्रदान करता है, यह स्पष्ट रूप से एक बच्चे के यौन अंगों के दृश्य या चित्रण के अलावा अन्य सामग्री को सम्मिलित नहीं करता है जिनका मुख्य रूप से यौन

उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है अत: इसे पूरी तरह से अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है। इसके अलावा, कानून और इसे लागू करने वाली संस्थाएं बाल यौन शोषण और बच्चों के यौन जबरन उत्पीड़न के सीधे प्रसारण पर चुप है।

दैनिक भास्कर में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार भारत सरकार और यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 53 प्रतिशत बच्चे बाल यौन अपराध के शिकार हैं। पिछले साल प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेंसेस एक्ट के तहत 15 हजार मुकदमे दर्ज हुए हैं लेकिन सिर्फ 4 प्रतिशत मामलों में आरोपी को सजा हुई। जबकि 6 प्रतिशत छूट गए और 90 प्रतिशत मामले अभी भी लंबित हैं। कुछ राज्यों की स्थिति तो ऐसी है कि यदि आज के बाद बाल अपराध होना बंद हो जाएं तो लंबित केसों के निपटारे में ही 10 से 40 साल लग जाएंगे।

आमिर, अंसारी (2021) 'कोरोना काल में तेजी से बढ़ा बाल यौन शोषण' नामक लेख के अनुसार महानगरों के अलावा छोटे शहरों में भी इस तरह के घिनौने अपराधों को अंजाम दिया जा रहा है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की साल 2020 की रिपोर्ट बताती है कि देश में बाल यौन शोषण के 47,221 मामले दर्ज किए गए थे। इन मामलों में अधिकतर पीड़ित लड़कियां ही थीं। एनसीआरबी के मुताबिक यौन हिंसा और यौन शोषण की वारदात सबसे अधिक 16 से लेकर 18 वर्ष की लड़कियों के साथ हुईं। इस क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्ताओं का कहना है कि कई बार तो मामले पुलिस तक ही नहीं पहुंचते हैं या फिर परिवार ही बदनामी के डर से उसे दबा दिया जाता है (अंसारी, 2021)।

सिंह, प्रदीप कुमार ने अपने लेख 'भारत में बाल यौन शोषण एक ज्वलंत समस्या : चुनौतियाँ और समाधान' में बताया कि बच्चों के हितो के लिए कानून पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता है इसके लिए समाज में संवेदना की भी आवश्यकता है। समाज में नैतिक संस्कारों को जीवित रखने पर बल दिया गया है। इस लेख में अदालती प्रक्रिया के साथ राजनीतिक बाधाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

शोध उद्देश्य

बाल यौन अपराध के बारे में अभिभावकों में जागरूकता स्तर का अध्ययन। बाल यौन शोषण रोकने के लिए निर्मित कानून के विषय में अभिभावकों में जानकारियों का अध्ययन। दुर्व्यवहार के प्रति अभिभावकों द्वारा बच्चों को गुड टच बेड टच की दी गई शिक्षा का अध्ययन। बाल यौन शोषण के कारणों का अध्ययन। बाल यौन शोषण रोकने हेतु निर्मित विधियों की दुर्बलता का अध्ययन।

शोध प्रश्न

क्या बाल यौन अपराध के प्रति अभिभावकों में जागरूकता है? क्या बाल यौन शोषण रोकने के लिए निर्मित विधियों (पाक्सो एक्ट) के बारे में अभिभावकों में जानकारी है? क्या दुर्व्यवहार के प्रति अभिभावकों द्वारा बच्चों को गुड टच बेड टच की शिक्षा दी गई है?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में उज्जैन जिले के उत्तरदाताओं के 'बाल यौन अपराध एवं रोकथाम के प्रति अभिभावकों में जागरूकता स्तर का अध्ययन : उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में' को जानने का प्रयास किया गया, जिसके फलस्वरूप उज्जैन जिला अध्ययन का समग्र रहा। प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन की इकाई हेतु उत्तरदाताओं के रूप में उज्जैन जिले की 3 विधानसभा क्षेत्रों के उन अभिभावकों का चयन किया गया जिनके बच्चों की उम्र 18 वर्ष से कम है। अत: प्रस्तुत अध्ययन में इस प्रकार कुल उत्तरदाताओं की संख्या 30 है। इस प्रकार कह सकते है कि अध्ययन के प्रतिचयन का आकार 30 है। उज्जैन जिले के विधानसभा क्षेत्र के नाम - 1. उज्जैन शहर, 2. घटिया, 3. महिदपुर।

आंकड़ों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण

'बाल यौन अपराध एवं रोकथाम के प्रति अभिभावकों में जागरूकता स्तर का अध्ययन : उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में' उज्जैन जिले की तीन तहसीलों से आंकड़े प्राप्त हुए हैं। उज्जैन शहर से 10, माहिदपुर से 10 एवं इसी प्रकार घटिया से 10 उत्तरदाताओं से जानकारियां प्राप्त हुई है। इस प्रकार कुल 30 उत्तरदाताओं में सामान्य वर्ग के 26.7 प्रतिशत, अन्य पिछड़ा वर्ग के 36.7 प्रतिशत, अनुसूचित जाति के 33.3 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 3.3 प्रतिशत है।

इसी प्रकार धर्म के अनुयायी के रूप में देखा जाए तो हिन्दू धर्म को मानने वाले 76.7 प्रतिशत, मुस्लिम 3.3 प्रतिशत, सिख 3.3 प्रतिशत, जैन 10 प्रतिशत तथा अन्य 6.7 प्रतिशत है। आजीविका के साधन के रूप में कृषि पर 20 प्रतिशत, व्यापार पर 20 प्रतिशत, निजी नौकरी पर 16.7 प्रतिशत, सरकारी नौकरी पर 13.3 प्रतिशत एवं अन्य पर 20 प्रतिशत उत्तरदाता निर्भर है।

पारिवारिक आय की बात की जाए तो 1 लाख से कम 36.7 प्रतिशत, 1 से 2 लाख के बीच 16.7 प्रतिशत, 2 से 4 लाख के बीच 23.3 प्रतिशत, 4 से 6 लाख के बीच 10 प्रतिशत, 6 से 8 लाख के बीच 3.3 प्रतिशत और 8 लाख से अधिक आय 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं की है। इनमे 56.7 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनके 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या 1 है, 33.3 प्रतिशत अभिभावकों के बच्चों की संख्या 2 है, 3 एवं 3 से अधिक बच्चे वाले अभिभावक क्रमश: 6.7 प्रतिशत एवं 3.3 प्रतिशत है।

तालिका 1

क्या आपने पॉक्सो अधिनियम का नाम सुना है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	25	83.3
नहीं	05	16.7
योग	30	100.0

अभिभावकों से जब पॉक्सो एक्ट के संबंध में प्रश्न किया गया तो 83.3 प्रतिशत अभिभावकों ने यह स्वीकार किया कि उन्होने पॉक्सो अधिनियन का नाम सुन रखा है, इनमें 16.7 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जिन्हें बाल यौन शोषण से रक्षा के लिए बनाए गए इस अधिनियम के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। अत: हम कह सकते है कि पॉक्सो अधिनियम का नाम अभिभावकों को पता है।

तालिका 2

पॉक्सो अधिनियम का संबंध निम्न में से किससे है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
बाल यौन अपराध	27	90.0
आर्थिक धोखाधड़ी	1	3.3
कृषि क्षेत्र	0	0
राजनीतिक क्षेत्र	2	6.7
योग	30	100.0

अभिभावकों से जब पॉक्सो एक्ट के प्रति जागरूकता के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न किया गया और प्रश्न के विकल्प के रूप में पॉक्सो एक्ट का संबंध बाल यौन अपराध, आर्थिक धोखाधड़ी, कृषि क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र में से किससे है,पूछा गया तो 90 फीसदी अभिभावकों में पॉक्सो एक्ट का संबंध बाल यौन अपराध बताया, 3.3 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जो यह मानते थे इसका संबंध आर्थिक धोखाधड़ी से तथा 6.7 प्रतिशत अभिभावकों के अनुसार पॉक्सो कानून राजनीतिक क्षेत्र से संबन्धित है।

तालिका 3

पॉक्सो अधिनियम में दोषी को अधिकतम सजा क्या दी जाती है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
एक वर्ष	1	3.3
पाँच वर्ष	8	26.7
मृत्यु दंड	8	26.7
नहीं पता	13	43.3
योग	30	100.0

पॉक्सो अधिनियम के संबंध में जागरूकता के स्तर को जानने के लिए जब अभिभावकों से इस अधिनियम के अंतर्गत अधिकतम सजा के बारे में पूछा गया तो 43.3 प्रतिशत अभिभावकों को इसकी जानकारी ही नहीं थी कि पॉक्सो एक्ट में दोषी पाये जाने पर अधिकतम सजा कितनी दी जाती है। 26.7 प्रतिशत अभिभावकों ने 5 वर्ष की जेल तथा 3.3 प्रतिशत अभिभावकों ने 1 वर्ष की जेल सजा बताया। अभिभावकों में 26.7 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जिन्हें मृत्यु दंड की सजा के विषय में जानकारी थी।

तालिका 4

बाल यौन अपराध की खबरें निम्न में से किस माध्यम से सुनने को मिलती है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
टीवी मीडिया	4	13.3
व्हाट्स एप	2	6.7
समाचार पत्र	3	10.0
उपरोक्त सभी	21	70.0
योग	30	100.0

समाज में खबरें और उनके प्रसार के माध्यम जागरूकता का कार्य करते हैं। जब अभिभावकों से बाल अपराध कि खबरें वे किस माध्यम से सुनते हैं पूछा गया तो इनमे 13.3 प्रतिशत अभिभावकों ने टीवी मीडिया के माध्यम से अपराध की खबरों की जानकारी प्राप्त होना स्वीकार किया। 10 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जो समाचार पत्र के माध्यम से बाल यौन अपराध की खबरों के बारे में सूचना प्राप्त होने की पुष्टि कर रहे थे। वहीं 6.7 प्रतिशत अभिभावकों ने व्हाट्सएप के माध्यम से सूचनाओं की प्राप्ति पर सहमति जताई। इनमें 70 प्रतिशत अभिभावकों का ऐसा मानना था कि उपरोक्त सभी माध्यमों से अपराध की जानकारी सुनने को प्राप्त होती है।

तालिका 5

बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता के लिए स्कूल में कार्यशाला का आयोजन हुआ है? उसमें आप अपने बच्चों को लेकर गए हैं?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
होती है मगर लेकर नहीं गए	6	20.0
नहीं होती	24	80.0
योग	30	100.0

बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता लाने के उद्देश्य से स्कूलों में कार्यशाला आयोजित की जाती है। इसी क्रम में अभिभावकों से जब यह प्रश्न किया गया कि उनके बच्चे जिस विद्यालय में अध्ययनरत है, क्या वहाँ इस तरह की किसी कार्यशाला का आयोजन हुआ है? तो इस पर 80 प्रतिशत अभिभावकों ने विद्यालय में कार्यशाला के आयोजन से इंकार किया है, 20 प्रतिशत अभिभावक ऐसे है जिन्होंने कार्यशाला के आयोजन की बात स्वीकारी है।

तालिका 6

क्या आपने अपने स्तर पर अपने बच्चों को गुड टच बेड टच के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	26	86.7
नहीं	04	13.3
योग	30	100.0

अभिभावकों से जब अपने बच्चों को गुड टच बेड टच की शिक्षा देने के संबंध में पूछा गया तो 86.7 प्रतिशत अभिभावकों ने गुड टच बेड टच के बारे में अपने स्तर पर बच्चों को जानकारी देने की बात में हामी दी है, इनमे 13.3 प्रतिशत अभिभावक ऐसे हैं जिन्होंने अपने बच्चों को गुड टच बेड टच की जानकारी देने का प्रयास नहीं किया है।

तालिका 7
क्या आपको लगता है बाल यौन अपराध की रोकथाम में कानून सक्षम एवं पर्याप्त है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	11	36.7
नहीं	14	46.7
पता नहीं	05	16.7
योग	30	100.0

समाज में अपराध की रोकथाम के लिए कानून प्रभावी भूमिका निभाता है, बाल यौन अपराध की रोकथाम में कानूनी प्रयास काफी है या नाकाफी जब इस संबंध में जानकारी प्राप्त की गई तो 46.7 प्रतिशत अभिभावक ने कानून को दुर्बल मानते हुए ना में जवाब दिया है। 36.7 प्रतिशत अभिभावक ने कानून को बाल अपराध रोकने की दिशा में सक्षम माना तथा 16.7 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जिन्हें इस बारे में नहीं पता था।

तालिका 8
बच्चों के साथ अपराध की दर बढ़ना और अपराधियों को सजा मिलने में देरी के पीछे कौन जिम्मेदार है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
कानून व्यवस्था	09	30.0
पुलिस की कार्यप्रणाली	06	20.0
अभिभावक का शिकायत न करना	06	20.0
सामाजिक कारण	08	26.7
अन्य	01	3.3
योग	30	100.0

जब अभिभावकों से बाल यौन अपराध की बढ़ती दर और सजा में देरी के पीछे के कारणों पर चर्चा की गई तो 30 प्रतिशत अभिभावकों की नजर में कानून व्यवस्था इसके पीछे जिम्मेदार है। 20 प्रतिशत अभिभावकों का मानना है कि पुलिस की कार्यप्रणाली बढ़ती अपराध दर और सजा में देरी की वजह है। 20 प्रतिशत अभिभावक ऐसे भी है जो यह मानते है कि अभिभावकों का शिकायत न करना इसका कारण है। 26.7 प्रतिशत अभिभावकों को इसके पीछे सामाजिक कारणों को जिम्मेदार मानते है। वही 3.3 प्रतिशत अभिभावक ऐसे भी है जिनका यह मानना है कि इसके पीछे अन्य कारण भी हो सकते है।

चार्ट 1

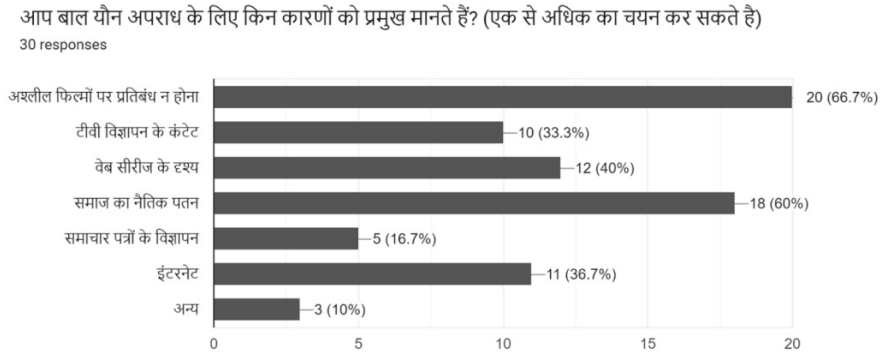

अभिभावकों से जब बाल यौन अपराध के प्रमुख कारणों को जानने के लिए प्रश्न किया गया तो 66.7 प्रतिशत अभिभावकों ने अश्लील फिल्मों पर प्रतिबंध न होने, 33.3 प्रतिशत अभिभावकों ने टीवी विज्ञापन के कंटेट, 40 प्रतिशत अभिभावकों ने वेब सीरीज से दृश्य, 60 प्रतिशत अभिभावकों ने समाज के नैतिक पतन, 16.7 प्रतिशत अभिभावकों ने समाचार पत्रों के विज्ञापन, 36.7 प्रतिशत अभिभावकों ने इंटरनेट तथा 10 प्रतिशत अभिभावकों ने अन्य कारणों को जिम्मेदार बताया।

चार्ट 2

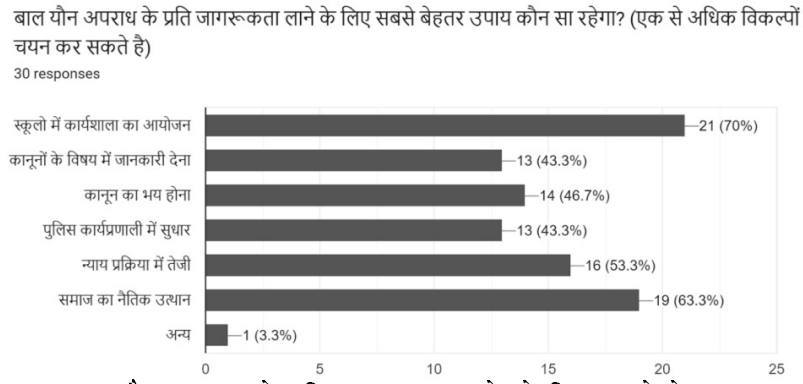

बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता लाने के लिए सबसे बेहतर उपाय क्या हो सकते है के संबंध में अभिभावकों से चर्चा करने पर स्कूलों में कार्यशाला के आयोजन को 70 प्रतिशत अभिभावको ने जरूरी माना। 43.3 प्रतिशत अभिभावक कानून के विषय में जानकारी, 46.7 प्रतिशत अभिभावक कानून के भय, 43.3 प्रतिशत अभिभावक पुलिस कार्यप्रणाली में सुधार, 53.3 प्रतिशत अभिभावक न्याय में तेजी और 63.3 प्रतिशत

अभिभावक समाज के नैतिक उत्थान को बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता लाने के लिए सबसे बेहतर मानते हैं।

तालिका 9
निम्न में से किस माध्यम का उपयोग बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता लाने के लिए किया जाना चाहिए?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
लघु फिल्म का निर्माण	03	10.0
नुक्कड़ नाटक	01	3.3
सामाजिक, धार्मिक आयोजन में जानकारी	01	3.3
उपरोक्त सभी	22	73.3
अन्य	03	10.0
योग	30	100.0

अभिभावकों से बाल यौन अपराध के प्रति किस माध्यम से द्वारा जागरूकता लाई जा सकती है के संबंध में पूछा गया तो लघु फिल्मों के निर्माण को 10 प्रतिशत, नुक्कड़ सभा को 3.3 प्रतिशत,सामाजिक धार्मिक आयोजनों में जानकारी प्रदान करने को 3.3 प्रतिशत तथा 73.3 प्रतिशत उपरोक्त सभी माध्यमों को बाल यौन अपराध के प्रति जागरूकता लाने के लिए जरूरी मानते है। इनमे 10 प्रतिशत अभिभावक ऐसे भी है जो अन्य उपायों को इसके लिए जरूरी मानते है।

तालिका 10
वर्तमान में बाल अधिकार के प्रति समाज में चेतना लाने के लिए कौन बेहतर कार्य कर रहा है?

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयंसेवी संगठन	22	73.3
सरकारी विभाग	08	26.7
योग	30	100.0

वर्तमान समय में किसके द्वारा बाल अधिकारों की दिशा में समाज में चेतना लाने का काम किया जा रहा है, जब यह प्रश्न अभिभावकों के सामने रखा गया तो 73.3 प्रतिशत अभिभावकों का यह मानना था कि स्वयंसेवी संगठन इस कार्य को अच्छे से करते है वहीं 26.7 प्रतिशत अभिभावक ऐसे थे जो यह मानते है कि सरकारी विभागो के द्वारा बाल अधिकारों के प्रति समाज में चेतना लाने का कार्य अच्छे से किया जाता है।

इस शोध के अंतर्गत जब खुले प्रश्न के तौर पर अभिभावकों से जब यह पूछा गया बच्चे के साथ दुर्व्यवहार की घटना हुई हो तो इसका पता कैसे लगाएंगे तो अभिभावकों के अनेक मत प्राप्त हुए हैं। अभिभावकों की मानें तो वे बच्चे के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन

के आधार पर वे इस बात का पता लगाएंगे। कुछ का मत है कि वे बच्चे की काउन्सलिंग करवाएँगे जिसके आधार पर कारणों को जान सके। कुछ अभिभावकों ने बच्चों से चर्चा कर तो कुछ उसके दोस्तों से बात करके कारणों को जानने की बात कहीं है। इसी प्रकार जब दूसरे खुले प्रश्न के रूप में बच्चे के साथ इस प्रकार की घटना न हो इस हेतु क्या कदम उठाना जरूरी है नामक प्रश्न किया गया तो इस पर अभिभावकों ने कानूनी पक्ष को मजबूत करने की बात कहीं है, साथ ही सामाजिक जागरूकता की ओर भी अपना पक्ष रखा है। अभिभावकों का कहना है कि न्याय में तेजी से ही हालत में सुधार हो सकते है। इसके साथ ही वे बच्चों को इस बारे में सचेत करने के पक्ष में भी है।

निष्कर्ष

बच्चों के साथ होने वाले यह अमानवीय अपराध सम्पूर्ण मानव समाज पर प्रश्नचिह्न अंकित कर रहा है। उपरोक्त शोध से हम इस नतीजे पर पहुंचे है कि उज्जैन जिले के अभिभावकों में पॉक्सो एक्ट के विषय में जानकारी है, उन्हें इस कानून के बारे में जानकारी भी है कि इसका संबंध बाल यौन शोषण से है किन्तु वे इस कानून के अंतर्गत कितनी सजा दी जाती है इससे अनभिज्ञ है। तकनीकि उन्नति के इस दौर में यदि विधियों के संबंध में जागरुकता का अभाव हो तो यह निश्चित रूप से चिंताजनक है। बाल यौन अपराधों को लेकर स्कूलों में कार्यशालाओं का न होना दुखद है। अत: विद्यालय स्तर पर इस दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए। बाल यौन अपराध की रोकथाम में कानून का प्रभावी उपयोग तब ही संभव हो सकेगा जब पुलिस की कार्यप्रणाली से लेकर न्यायिक प्रक्रिया में तेजी नजर आएगी। अपराधियों में सजा का खौफ भी होगा। बाल यौन अपराध एक ऐसा विषय है जिसमें समाज के नैतिक उत्थान की भी आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आईसीएमआर पत्रिका, अक्टूबर नवम्बर 2015 (अंक 10-11)

एनसीआरबी रिपोर्ट, 2016

अंसारी, आमिर, *कोरोना काल में तेजी से बढ़ा बाल यौन शोषण,* 24 नवंबर 2021

यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012 (पॉक्सो अधिनियम)

यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम (संशोधन) 2019 (पॉक्सो अधिनियम)

सिंह, ज्योत्सना और मिश्रा, प्रशांत, बाल यौन दुर्व्यवहार के खिलाफ भारत का विविध परिदृश्य : झांसी जिले में पॉक्सो अधिनियम की प्रभावशीलता का अध्ययन, ले रेफ्यूज डू ऋषि -अदिति, वॉल्यूम 5, अंक 1, 2024

संपादकीय, 'जोखिम में बचपन' *जनसत्ता,* 21 फरवरी 2023

शर्मा, अर्चना, *स्कूली बच्चों को बाल यौन शोषण के बारे में शिक्षित करने में मास मीडिया की भूमिका,* आरआईएमटी यूनिवर्सिटी, गोबिंदगढ़, 2022

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 157-172)
UGC-CARE (Group-I)

बिहार में मद्यनिषेध के पश्चात् मद्य व्यसन की स्थिति : पूर्वी चंपारण जिले के विशेष सन्दर्भ में एक आनुभविक अध्ययन

आशुतोष शरण[*] एवं सुनील महावर[†]

मद्यनिषेध सामाजिक दुष्परिणामों से मुक्ति, उत्थान, विकास एवं युवा पीढ़ी को दुर्गुणों से मुक्त कराने एवं गरीब-मजदूर कल्याण के उद्देश्य से आवश्यक प्रतीत होता है। गांधीजी ने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई से ही पूर्ण मद्यनिषेध को एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में शामिल किया और आजाद सपनों के भारत के नवनिर्माण में मद्यनिषेध को उसका मुख्य केंद्र बिंदु माना। बिहार में लागू मद्यनिषेध कानून गांधीजी के सपनों को साकार करने और शराब मुक्त राज्य के संकल्प को साकार करने के उद्देश्य से चंपारण सत्याग्रह आंदोलन के लगभग 100 वर्षों के बाद बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के द्वारा 5 अप्रैल 2016 से पूर्ण मद्यनिषेध की घोषणा की गई। जिसके उपरांत बिहार में मद्यनिषेध और उत्पाद अधिनियम, 2016 लागू किया गया है। इस अधिनियम के

[*]शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय,मोतिहारी (बिहार)
E-mail: ashupkd13@gmail.com
[†]अधिष्ठाता, सामाजिक विज्ञान संकाय, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)
E-mail: sunilmahawar@mgcub.ac.in

बिहार में मद्यनिषेध के पश्चात् मद्य व्यसन की स्थिति...

अंतर्गत बिहार में मद्य के सेवन, मद्य के उत्पादन एवं बिक्री पूर्ण रूप से प्रतिबंधित है। इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में मद्यनिषेध के पश्चात् मद्य तथा मद्य व्यसन की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना है। इस अध्ययन में आनुभविक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है, जिसमें मूलत: प्राथमिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द - मद्यनिषेध, शराब, व्यसन, रचनात्मक कार्यक्रम।

मद्यनिषेध के संबंध में गांधीजी ने कहा था - "यदि मुझे अखिल भारत के लिए एक घंटे के लिए तानाशाह बना दिया जाए तो मेरा पहला काम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवजा दिए बंद करवा दिया जाए।" (गांधी, 2019)। कुछ अमीर लोगों के शराब के शौक के कारण समाज को दूषित नहीं किया जा सकता, वे शराब को चोरी और व्यभिचार दोनों से ज्यादा निंदनीय मानते हैं। वे कहते हैं - "मैं भारत का गरीब होना पसंद करूंगा, लेकिन मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि हमारे हजारों लोग शराबी हो। अगर भारत में शराबबंदी जारी करने के लिए शिक्षा देना बंद करना पड़े तो कोई परवाह नहीं, मैं यह कीमत चुकाकर शराबखोरी को बंद करूंगा" (गांधी, 2019)। उनका मानना था - "कोई भी देश कितना ही धनी और खुशहाल क्यों न हो, वास्तव में मद्यपान का बोझ सहन करने की क्षमता नहीं रखता क्योंकि शराबखोरी से राष्ट्र नाश की कगार पर पहुचते है" (यंग इंडिया, 4-2-1926)। शराब का ठेका लोकतंत्र के लिए कलंक और अभिशाप दोनों हैं (प्रसाद, 2018)।

शराब व्यसन व्यक्ति के मस्तिष्क में उत्तेजना और व्याकुलता उत्पन्न करती है, मस्तिष्क के विकास को रोकती है, ज्ञान तंतुओं को समेटती है, नशों और पुट्ठों की छोटी सेलों को नष्ट कर उनका बढ़ाना रोक देती है, यह ऑक्सीजन के प्रसार को भी रोकती है, जिनसे चर्बी बढ़ने लगती है। इस संबंध में प्रोफेसर सिंबुड हेड स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "मैं बहुत काल से इस बात का अनुभव करता हूं कि अल्कोहल केवल शारीरिक विष ही नहीं बल्कि वह रोग-उपचार में जब अन्य औपचारिक विषों के साथ दिया जाता है तब वह उन सब विषों के प्राकृतिक गुणों को नष्ट कर डालता है और उन्हें और भी अधिक कातिल विष बनाकर रोगी को स्वस्थ करने में बाधा डालता है" (चन्द्रसेन, मद्यनिषेध : नशे का व्यसन, 1990)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन 2018 की रिपोर्ट के अनुसार, विश्व में 6.4 लीटर प्रतिवर्ष औसतन व्यक्ति शराब का सेवन करते हैं। डब्ल्यूएचओ ने 2025 तक विश्व में (6.4-7) लीटर प्रतिवर्ष औसतन व्यक्ति शराब की खपत का अनुमान लगाया है (डब्ल्यूएचओ, 2023)। वही डब्ल्यूएचओ की बेसिक स्टेटस रिपोर्ट (2018) के अनुसार भारत में शराब का सेवन करने वाली कुल जनसंख्या का 17 प्रतिशत व्यक्ति भारी मात्रा में शराब का व्यसन करते हैं और इनमें (15-19 वर्ष) की संख्या 25.2 प्रतिशत है। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट का अवलोकन करें तो यह

ज्ञात होता है कि मद्य व्यसन की समस्या केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्व के लिए एक ज्वलंत समस्या बन चुकी है। यदि मद्य व्यसन के दुष्परिणामों की बात करें तो यह ज्ञात है कि 60 से अधिक स्वास्थ्य समस्याओं का कारण शराब का सेवन है, जो वैश्विक बीमारी का अनुमानित 4 प्रतिशत है (डोनाल्ड, 2007)। डब्ल्यूएचओ की 2018 रिपोर्ट के अनुसार शराब व्यसन के कारण विश्व में 2016 में अनुमानत: 30 लाख मौतें हुई हैं। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि मद्यपान मानसिक रूप से विकृत संतानों का एक प्रमुख कारण है (रॉबर्ट, 1998)।

गांधीजी ने भारत में सामाजिक दुष्परिणामों को देखते हुए देश की स्वतंत्रता की लड़ाई से ही पूर्ण मद्यनिषेध को एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में शामिल किया और आजाद सपनों के भारत के नवनिर्माण में 'मद्यनिषेध' को उसका मुख्य केंद्र बिंदु माना। आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने गांधीजी के इस आदर्श विचार 'मद्यनिषेध' पर ध्यान देते हुए भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्व के अंतर्गत अनुच्छेद-47 में शामिल किया। जिसमें यह कहा गया कि स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक नशीली दवाओं, मदिरा/शराब, ड्रग के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपयोग को प्रतिबंधित करेगा। इसे कार्यान्वित करने तथा इस आदर्श को ठोस रूप देने के उद्देश्य से योजना आयोग ने 1954 में एक 'मद्यनिषेध जांच कमेटी' नियुक्त की। इस कमेटी की प्रमुख सिफारिश यह थी कि मद्यनिषेध कार्यक्रम को देश की विकास योजना का एक अभिन्न अंग मान लिया जाए। इस सिफारिश को 31 मार्च 1956 में लोकसभा ने स्वीकार कर लिया और उसी आधार पर देश भर में मद्यनिषेध आंदोलन चलाया गया (श्रीवास, 2008)। देशभर में चरणबद्ध तरीके से पूर्ण मद्यनिषेध का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने 2 अक्टूबर 1975 से एक राष्ट्रव्यापी 12 सूत्रीय कार्यक्रम को लागू किया जिसके अंतर्गत सार्वजनिक स्थानों पर शराब पीने पर प्रतिबंध, शराब के विज्ञापनों पर रोक, श्रमिक बस्तियों में शराब की दुकानों को खोलने पर प्रतिबंध, वेतन के दिन को मद्यनिषेध का दिन (शुष्क दिवस) घोषित करना आदि सम्मिलित था। मद्यनिषेध के संबंध में राष्ट्रीय नीति स्थिर करने के लिए जनता पार्टी की सरकार के द्वारा केंद्रीय मद्यनिषेध समिति (1977) गठित की गई। समिति ने चार वर्ष में चरणबद्ध तरीके से मार्च 1983 के अंत तक पूर्ण मद्यनिषेध लागू करने की सिफारिश की थी। किंतु जनवरी 1980 में केंद्र में इंदिरा गांधी की नई सरकार ने मद्यनिषेध की नीति को व्यवहारिक रूप में बिल्कुल ही उलट दिया। 1993 में तत्कालीन केंद्र सरकार ने भी मद्यनिषेध को प्रोत्साहन देने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया था। उस समय केंद्र सरकार ने यह प्रावधान किया कि मद्यनिषेध से राज्य सरकारों को होने वाली राजस्व क्षति के आधे हिस्से की भरपाई केंद्र सरकार करेगी लेकिन केंद्र सरकार असफल हो गई। वर्तमान समय में 'मद्यनिषेध' भारत के गुजरात, बिहार, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड, उत्तराखंड (कुछ शहर) तथा लक्ष्यद्वीप में लागू है। इसके साथ ही केरल एवं आंध्र प्रदेश राज्य चरणबद्ध तरीके से लागू करने के लिए प्रयासरत भी है (शरण, 2023)।

बिहार में मद्यनिषेध

वर्तमान समय में बिहार में मद्यनिषेध और उत्पाद अधिनियम, 2016 लागू है। इस अधिनियम के तहत बिहार में शराब के उत्पादन, बिक्री एवं सेवन को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित किया गया है। बिहार में शराब व्यसन के कारण समाज में महिला उत्पीड़न, पारिवारिक हिंसा तथा अपराधीकरण आदि की समस्याएं अत्यधिक रूप से बढ़ गई थी तथा इसके साथ ही जहरीली शराब पीने के कारण मृत्यु दर, साल-दर-साल बढ़ती जा रही थी। इन सभी समस्याओं से पीड़ित स्वयं सहायता समूह की महिला सदस्यों ने 9 जुलाई 2015 को महिला विकास निगम बिहार और डी.एफ.आई.डी. द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित 'ग्रामवार्ता' के राज्य स्तरीय सम्मेलन में मद्यनिषेध लागू करने की मांग की। उनकी मांगों पर प्रतिक्रिया देते हुए तत्कालीन मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने कहा कि यदि हम अगली बार सत्ता में आएं तो मद्यनिषेध लागू करेंगे। तत्पश्चात् नई सरकार के गठन के बाद मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने शराब से संबंधित सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हुए 26 नवंबर 2015 को मद्यनिषेध दिवस के अवसर पर घोषणा करते हुए कहा कि राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व के प्रावधानों के तहत गांधीजी के मद्यनिषेध संबंधी विचारों एवं समाज के गरीब निर्धन लोगों को खुशहाल बनाने के दृष्टिकोण से सरकार राज्य में मद्यनिषेध लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है इसलिए राज्य में 1 अप्रैल 2016 से मद्यनिषेध लागू होगा। प्रथम चरण में 1 अप्रैल 2016 से देशी शराब को पूरे प्रदेश में तथा विदेशी शराब केवल ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिबंधित होगा। इस घोषणा के पश्चात् राज्य में महिला समूह ने यह मांग की कि शहरी क्षेत्र में भी विदेशी शराब को प्रतिबंधित कर पूरे प्रदेश में मद्यनिषेध लागू किया जाए। सरकार ने इस विषय पर संज्ञान लेते हुए विचार-विमर्श कर 5 अप्रैल 2016 से पूरे प्रदेश में पूर्ण मद्यनिषेध लागू किया (मद्यनिषेध, उत्पाद एवं निबंधन विभाग, बिहार सरकार, 2023)।

अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह है कि क्या मद्यनिषेध के पश्चात् बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में शराब उपलब्ध है? और यदि उपलब्ध है तो मद्यव्यसनी व्यक्ति किस प्रकार शराब का व्यसन कर रहे हैं तथा इसका उनके ऊपर क्या प्रभाव पड़े हैं? इसके साथ ही मद्यनिषेध की सफलता एवं असफलता का भी अध्ययन करना है।

शोध पद्धति

इस अध्ययन हेतु बिहार के पूर्वी चंपारण जिले का चयन किया गया है। शोध से पूर्व विषय से संबंधित विभिन्न आलेखों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया तथा साक्षात्कार के माध्यम से प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया है। पूर्वी चंपारण जिले में मद्य की उपलब्धता और मद्य व्यसन की वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने हेतु संभाव्यता निदर्शन प्रणाली की लॉटरी विधि का प्रयोग करते हुए चार प्रखंडों (पकड़ी दयाल, चकिया,

मोतिहारी तथा अरेराज) का चयन किया गया तथा असंभाव्यता निदर्शन प्रणाली के स्नोबॉल विधि का प्रयोग करते हुए मद्य व्यसनियों का चयन साक्षात्कार हेतु किया गया है। आंकड़ों के संकलन हेतु कुल 400 सूचनादाताओं का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया तथा इन साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर तालिका का निर्माण कर अवलोकन एवं विश्लेषण किया गया ताकि मद्यनिषेध की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया जा सके।

आंकड़ों का सारणीयन तथा विश्लेषण

मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसन का मद्यव्यसनी व्यक्तियों और उनके परिवार पर पड़ने वाले प्रभावों को इस अध्ययन के माध्यम से जानने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन के द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या मद्यनिषेध के पश्चात् बिहार में शराब उपलब्ध है? मद्यव्यसनी व्यक्ति तथा उनके परिवार पर मद्यनिषेध का क्या प्रभाव पड़ा है? मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्ति के परिवार में घरेलू शांति स्थापित हुई है या नहीं? पुलिस प्रशासन द्वारा शराब व्यसनी व्यक्ति पर कार्रवाई की जा रही है या नहीं? मद्यनिषेध के सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं? इन सभी तथ्यों की जाँच करने हेतु चयनित क्षेत्र के प्रत्येक प्रखंड (पकड़ी दयाल, चकिया, मोतिहारी तथा अरेराज) से उन 100 शराब व्यसनी व्यक्तियों का प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया जो मद्यनिषेध के पश्चात् भी शराब का व्यसन करते हैं। इस प्रकार कुल 100x4=400 सूचनादाताओं से सूचनाएं एकत्रित की गई। यह साक्षात्कार का कार्य बिहार में मद्यनिषेध लागू होने के लगभग 6 वर्षों बाद (अप्रैल 2022-फरवरी 2023) किया गया। इन सूचनाओं को विभिन तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है तथा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है -

सूचनादाताओं की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि

प्रस्तुत अध्ययन में सूचनादाताओं के आयु, लिंग, वर्ग, धर्म, शैक्षणिक स्तर, व्यवसाय, आय, निवास स्थान, परिवार का स्वरूप तथा घरों में शामिल मूलभूत आवश्यकताओं को जानने का प्रयास किया गया। अध्ययन में शामिल 36 प्रतिशत सूचनादाता 41-50 वर्ष, 33 प्रतिशत 31-40 वर्ष, 20 प्रतिशत 21-30 वर्ष, 5 प्रतिशत 20 वर्ष/इससे कम, 4.25 प्रतिशत 51-60 वर्ष तथा 1.75 प्रतिशत 61 वर्ष/इससे अधिक आयु वर्ग के थे। इनमें 100 प्रतिशत सूचनादाता पुरुष वर्ग के ही थे। जिनमें 62.25 प्रतिशत सूचनादाता पिछड़ा वर्ग, 21.25 प्रतिशत सामान्य वर्ग तथा 16.5 प्रतिशत अनुसूचित जाति के थे। इन सूचनादाताओं में 87.75 प्रतिशत व्यक्ति हिंदू धर्म तथा 12.46 प्रतिशत मुस्लिम धर्म से संबंध रखते हैं। इनमें 30.5 प्रतिशत सूचनादाता ने प्राथमिक, 21.5 प्रतिशत माध्यमिक स्तर, 8.55 प्रतिशत उच्च माध्यमिक, 12 प्रतिशत स्नातक तथा 2.25 प्रतिशत स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है। जबकि 25.25 प्रतिशत सूचनादाता निरक्षर है। सूचनादाताओं में 43.25 प्रतिशत व्यक्ति व्यापार, 34.5 प्रतिशत मजदूरी तथा 16.25 प्रतिशत अन्य कार्य करते हैं

जबकि 6 प्रतिशत सूचनादाता सरकारी नौकरी करते हैं। जिनमें 27.75 प्रतिशत सूचनादाता ₹ 1,20,000-1,80,000 वार्षिक आय, 21.75 प्रतिशत ₹ 2,40,000 से अधिक, 20.75 प्रतिशत ₹ 1,80,000-2,40,000, 16.25 प्रतिशत ₹ 60,000- 1,20,000 तथा 13.5 प्रतिशत ₹ 60,000 से कम वार्षिक आय प्राप्त करते हैं। इनमें 53.75 प्रतिशत सूचनादाता गांवों में जबकि 46.25 प्रतिशत शहरों में निवास करते हैं। 51 प्रतिशत सूचनादाता परिवार में संयुक्त रूप से तो वहीं इसके विपरीत 49 प्रतिशत एकाकी रूप से रहते हैं तथा इनमें से 81.5 प्रतिशत सूचनादाताओं के घरों में सभी मूलभूत सुविधाएं (बिजली, पानी, रसोई गैस तथा शौचालय), 15.25 प्रतिशत एक से अधिक (अर्थात बिजली, पानी, रसोई गैस तथा शौचालय में से किन्हीं 2/3 सुविधाएं ही है), 2 प्रतिशत मद्यव्यसनी व्यक्तियों के घरों में केवल पानी, 0.75 प्रतिशत मद्यव्यसनी व्यक्तियों के घरों में केवल बिजली की सुविधाएं एवं 0.5 प्रतिशत मद्यव्यसनी व्यक्तियों के घरों में केवल रसोई गैस उपलब्ध है।

मुख्य प्रश्न के परिणाम एवं विश्लेषण

मद्यनिषेध के पश्चात् मद्यव्यसनी व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों को ज्ञात करने हेतु सूचनादाताओं से यह समझने का प्रयास किया गया कि मद्यव्यसनी व्यक्ति की मद्यनिषेध से पूर्व क्या स्थिति थी? मद्यनिषेध के पश्चात् उनके परिवार एवं समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है? इसके साथ ही यह जानने का प्रयास किया गया कि मद्यनिषेध के बावजूद व्यसनी व्यक्तियों को किस प्रकार शराब उपलब्ध हो पा रहा है? पुलिस प्रशासन मद्यव्यसनी व्यक्ति पर किस प्रकार कारवाई कर रहा है? मद्यनिषेध के प्रभावों को ज्ञात करने हेतु कुल 400 मद्यव्यसनी व्यक्तियों का प्रतिदर्श के रूप में चयन कर साक्षात्कार के माध्यम से सूचनाएं प्राप्त की गई है, जिसे विभिन्न तालिकाओं के माध्यम से दर्शाया गया है तथा इसके विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम मद्यव्यसनी व्यक्तियों से यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि क्या वे मद्यनिषेध से पूर्वशराब का सेवन करते थे? इस प्रश्न के अनुरूप निम्न आंकड़े प्राप्त हुए -

तालिका 1

मद्यनिषेध से पूर्व शराब व्यसन की स्थिति

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	325	81.25
2	नहीं	75	18.75
	कुल योग	400	100

तालिका 1 मद्यनिषेध से पूर्व शराब व्यसन की स्थितियों को प्रदर्शित करती है। इसके विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि कुल 400 सूचनादाताओं में से सर्वाधिक 81.25 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्तियों ने कहा कि वे मद्यनिषेध से पहले शराब का सेवन करते थे। वहीं इसके विपरीत 18.75 प्रतिशत ने प्रतिक्रिया दी कि वे मद्यनिषेध से पहले शराब का सेवन नहीं करते

थे। इसके विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मद्यनिषेध लागू होने के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्ति की सूची में नए शराब व्यसनी व्यक्ति भी शामिल हुए हैं। इसके कारण विभिन्न तालिकाओं में मद्यनिषेध से पूर्व 325 सूचनादाताओं के सूचनाओं को ही शामिल किया गया है।

मद्यव्यसनी व्यक्तियों से यह जानने का प्रयास किया गया कि वे शराब का सेवन क्यों करते हैं? इस प्रश्न के प्रतिउतर में निम्न जानकारियां प्राप्त हुई -

तालिका 2

मद्यपान का कारण

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	मानसिक तनाव के कारण	31	7.75
2	शौक के लिए	92	23.0
3	थकान को कम करने के लिए	163	40.75
4	शराब का आदि होने के कारण	65	16.25
5	अन्य कारण	14	3.5
6	एक से अधिक	35	8.75
	कुल योग	400	100

उपर्युक्त तालिका 2 शराब व्यसनी व्यक्तियों के शराब व्यसन के कारणों को प्रदर्शित करती है। इस के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है सर्वाधिक 40.75 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्ति थकान को कम करने के लिए, 23 प्रतिशत शौक, 16.25 प्रतिशत शराब का आदि होने, 8.75 प्रतिशत एक से अधिक (अर्थात मानसिक तनाव के कारण, शौक के लिए, थकान को कम करने के लिए, शराब का आदी होने के कारण तथा अन्य कारण इनमें से किन्हीं 2/3/4 कारण) कारणों, 7.75 प्रतिशत मानसिक तनाव तथा 3.5 प्रतिशत अन्य (डॉक्टर के परामर्श, दोस्तों के दबाव आदि) कारणों से शराब का सेवन करते हैं। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश व्यक्ति थकान को कम करने के लिए शराब का सेवन करता है।

तालिका 3

शराब व्यसन के प्रकार

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	विदेशी शराब	76	23.38	56	14.0
2	देशी शराब	30	9.23	2	0.5
3	चुलाई शराब	2	0.61	51	12.75
4	ताड़ी	10	3.07	22	5.5
5	एक से अधिक	101	31.07	63	15.75
6	इनमें से सभी	106	32.61	206	51.5
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 3 मद्यनिषेध से पूर्व एवं मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा व्यसन की जाने वाली विभिन्न प्रकार के शराब को प्रदर्शित करती है। सूचनादाताओं में से सर्वाधिक 32.61 प्रतिशत व्यसनी मद्यनिषेध से पहले इनमें से सभी (अर्थात विदेशी शराब, देशी शराब, चुलाई शराब तथा ताड़ी) प्रकार के शराब, 31.07 प्रतिशत एक से अधिक (अर्थात विदेशी शराब, देशी शराब, चुलाई शराब तथा ताड़ी इनमें से किन्हीं 2/3) प्रकार के शराब, 23.38 प्रतिशत केवल विदेशी शराब, 9.23 प्रतिशत केवल देशी शराब, 3.07 प्रतिशत केवल ताड़ी तथा 0.61 प्रतिशत शराब व्यसनी केवल चुलाई शराब का सेवन करते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 51.5 प्रतिशत व्यसनी व्यक्ति एक से अधिक (अर्थात विदेशी शराब, देशी शराब, चुलाई शराब तथा ताड़ी इनमें से किन्हीं 2/3) प्रकार के शराब, 15.75 प्रतिशत इनमें से सभी (अर्थात विदेशी शराब, देशी शराब, चुलाई शराब तथा ताड़ी) प्रकार के शराब, 14 प्रतिशत केवल विदेशी शराब, 12.75 प्रतिशत केवल चुलाई शराब, 5.5 प्रतिशत केवल ताड़ी तथा 0.5 प्रतिशत केवल देशी शराब का सेवन करते हैं। तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् विदेशी शराब का व्यसन करने वालों की संख्या में कमी आने के साथ ही चुलाई गई शराब का व्यसन करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है जो कि स्वस्थ्य के लिए नुकसानदायक के साथ-साथ जहरीली भी है।

तालिका 4
शराब व्यसन की अवधि

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	दैनिक	213	65.53	277	69.25
2	सप्ताहिक	63	19.38	70	17.5
3	समारोह के अवसर पर	16	4.92	21	5.25
4	कभी-कभी	33	10.15	32	8.0
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 4 मद्यनिषेध से पूर्व तथा मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली शराब की विभिन्न अवधि को प्रदर्शित करती है। सूचनादाताओं में 65.53 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्ति मद्यनिषेध से पहले दैनिक, 19.38 प्रतिशत सप्ताहिक, 10.15 प्रतिशत कभी-कभी तथा 10.15 प्रतिशत समारोह के अवसर पर शराब का सेवन करते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 69.25 प्रतिशत व्यसनी व्यक्ति दैनिक, 17.5 प्रतिशत सप्ताहिक, 8 प्रतिशत कभी-कभी तथा 5.25 केवल समारोह के अवसर पर शराब का सेवन करते हैं। तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् दैनिक रूप से शराब का व्यसन करने वाले की संख्या में वृद्धि हुई।

तालिका 5

मद्य व्यसन के लिए लिया जाने वाला कर्ज

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	85	26.15	122	30.5
2	नहीं	240	73.85	278	69.5
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 5 शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा मद्यनिषेध से पूर्व एवं मद्यनिषेध के पश्चात् उधार लेकर शराब सेवन की स्थिति को प्रदर्शित करती है। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि 73.85 प्रतिशत सूचनादाता मद्यनिषेध से पहले उधार लेकर शराब का सेवन नहीं करते थे। वहीं इसके विपरीत 26.15 प्रतिशत उत्तरदाता उधार लेकर शराब का सेवन करते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 69.5 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्ति उधार लेकर शराब का सेवन नहीं करते हैं। वहीं इसके विपरीत 30.5 प्रतिशत उत्तरदाता उधार लेकर शराब का सेवन करते हैं। विश्लेषण के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् कर्ज लेकर शराब पीने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है।

तालिका 6

शराब व्यसन से उत्पन्न होने वाले पारिवारिक तनाव

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	175	53.85	148	37.0
2	नहीं	150	46.15	252	63.0
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 6 मद्यनिषेध से पूर्व एवं मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा शराब व्यसन से उत्पन्न होने वाले पारिवारिक तनाव को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध से पूर्व 53.85 प्रतिशत सूचनादाताओं के शराब के सेवन से परिवारिक तनाव उत्पन्न होता तथा 46. 15 प्रतिशत के शराब व्यसन से परिवारिक तनाव उत्पन्न नहीं होता था। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 63 प्रतिशत व्यसनी व्यक्तियों के शराब व्यसन से परिवारिक तनाव उत्पन्न नहीं होता है तथा 37 प्रतिशत के शराब व्यसन से परिवारिक तनाव उत्पन्न होता है। तुलनात्मक रूप से विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् पारिवारिक तनाव में कमी आई है, जिसे एक महत्वपूर्ण सकारात्मक परिणाम के रूप में देखा जा सकता है।

वैसे मद्यव्यसनी जिन्होंने यह स्वीकार किया था कि उनके शराब व्यसन के कारण पारिवारिक तनाव उत्पन्न होता थाउनसे यह समझने का प्रयास किया गया कि शराब व्यसन के कारण उनके परिवार में किस प्रकार के तनाव उत्पन्न होते थे या होते हैं?

तालिका 7

शराब व्यसन से उत्पन्न होने वाले विभिन्न पारिवारिक तनाव

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	झगड़ा	15	8.57	10	6.75
2	मारपीट	8	4.57	7	4.72
3	अपशब्द का प्रयोग	87	49.71	81	54.72
4	अन्य	7	4.0	9	6.08
5	एक से अधिक	58	33.14	41	27.70
	कुल योग	175	100	148	100

उपर्युक्त तालिका 7 मद्यनिषेध से पूर्व तथा मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसन के कारण उत्पन्न होने वाले विभिन्न पारिवारिक तनावों को प्रदर्शित करती है। यह तालिका 6 से संबंधित है जिन सूचनादाताओं के शराब व्यसन से परिवारिक तनाव उत्पन्न होता था उनमें 49.71 प्रतिशत व्यक्तियों के शराब व्यसन के कारण परिवार में अपशब्द का प्रयोग, 33.14 प्रतिशत के परिवार में एक से अधिक प्रकार के परिवारिक तनाव, 8.57 प्रतिशत के परिवार में झगड़ा, 4.57 प्रतिशत के परिवार में मारपीट तथा 4.0 प्रतिशत के परिवार में अन्य प्रकार के तनाव उत्पन्न होते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 54.72 प्रतिशत के शराब के सेवन से परिवार में अपशब्द के प्रयोग, 27.70 प्रतिशत के व्यसन से एक से अधिक प्रकार के परिवारिक तनाव,6.75 प्रतिशत के परिवार में झगड़ा, 6.08 प्रतिशत के परिवार में अन्य प्रकार के तनाव तथा 4.72 प्रतिशत के परिवार में मारपीट उत्पन्न होता है। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् विभिन्न पारिवारिक तनावों में कमी आई है।

तालिका 8

मद्य व्यसन पर व्यय

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	₹ 1000 से कम	117	36.0	48	12.0
2	₹ 1000-3000	137	42.15	146	36.5
3	₹ 3000-6000	54	16.62	92	23.0
4	₹ 6000-9000	14	4.31	101	25.25
5	₹ 9000 से अधिक	3	0.92	13	3.25
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 8 मद्यनिषेध से पूर्व और मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा शराब व्यसन पर किये जाने वाले खर्च को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध से पहले 42.15 प्रतिशत सूचनादाता शराब व्यसन पर ₹ 1000-3000, 36 प्रतिशत व्यक्ति ₹ 1000 से कम, 16.62 प्रतिशत व्यसनी ₹ 3000-6000, 4.31 प्रतिशत व्यसनी ₹ 6000-9000 तथा 0.92 प्रतिशत व्यसनी ₹ 9000 से अधिक खर्च करते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 36.5 प्रतिशत व्यसनी शराब व्यसन पर ₹ 1000-3000, 25.25 प्रतिशत व्यसनी ₹ 6000-9000, 23 प्रतिशत सूचनादाता ₹ 3000-6000, 12 प्रतिशत ₹ 1000 से कम तथा 3.25 प्रतिशत ₹ 9000 से अधिक खर्च करते हैं। तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है की मद्यनिषेध के पश्चात् व्यसनी व्यक्ति शराब पर अत्यधिक खर्च कर रहा है। इन आंकड़ों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि व्यसनी व्यक्ति अत्यधिक रूपये खर्च कर शराब की बोतले खरीद रहा है, जिसके कारण उन्हें आर्थिक रूप से नुकसान हुआ है।

तालिका 9

मद्य सेवन की साप्ताहिक मात्रा

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	500 मिली. से कम	62	19.08	65	16.25
2	500-1000 मिली.	86	26.46	84	21.0
3	1000-1500 मिली.	111	34.15	93	23.25
4	1500-2000 मिली.	62	19.08	34	8.5
5	2000 मिली. से अधिक	4	1.23	124	31.0
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 9 मद्यनिषेध से पूर्व तथा पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा सेवन की जाने वाले शराब की साप्ताहिक मात्रा को प्रदर्शित करती है। सूचनादाताओं में 34.15 प्रतिशत व्यसनी व्यक्ति मद्यनिषेध से पहले सप्ताह में 1000-1500 मिली., 26.46 प्रतिशत व्यसनी 500-1000 मिली., 19.08 प्रतिशत व्यसनी 1500-2000 मिली., 19.08 प्रतिशत व्यसनी 500 मिली. से कम तथा 1.23 प्रतिशत व्यक्ति 2000 मिली. से अधिक शराब का सेवन करते थे। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 31 प्रतिशत व्यसनी व्यक्तियों ने यह सहमति दी कि मद्यनिषेध के पश्चात् वे सप्ताह में 2000 मिली. से अधिक, 23.25 प्रतिशत व्यसनी 1000-1500 मिली., 21 प्रतिशत व्यक्ति 500-1000 मिली., 16.25 प्रतिशत व्यसनी 500 मिली. से कम एवं 8.5 प्रतिशत 1500-2000 मिली. शराब का सेवन करते हैं। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि व्यसनी व्यक्तियों में शराब सेवन की मात्रा में वृद्धि हुई है।

तालिका 10

शराब की उपलब्धता

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	होम डिलीवरी	10	3.08	170	42.5
2	किसी विशिष्ट दुकान पर	20	6.15	87	21.75
3	सरकारी ठेके की दुकान	282	86.77	00	0
4	अन्य	13	4.0	143	35.75
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 10 मद्यनिषेध से पूर्व एवं मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों को शराब की उपलब्ध के विभिन्न माध्यमों को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध से पहले 86.77 प्रतिशत सूचनादाताओं को शराब सरकारी ठेके की दुकान, 6.15 प्रतिशत को किसी सामान्य दुकान, 4 प्रतिशत को अन्य माध्यम तथा 3.08 प्रतिशत को होम डिलीवरी के माध्यम से उपलब्ध होती थी। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 42.5 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्तियों को शराब होम डिलीवरी, 35.75 प्रतिशत को अन्य माध्यम, 21.75 प्रतिशत को किसी विशिष्ट दुकान से उपलब्ध होती है। तुलनात्मक रूप से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् व्यसनी व्यक्ति को होम डिलीवरी के माध्यम से शराब उपलब्ध हो रहा है।

तालिका 11

मद्य की बिक्री पर प्रतिबन्ध

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पूर्व		मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	103	31.69	266	66.5
2	नहीं	222	68.31	134	33.5
	कुल योग	325	100	400	100

तालिका 11 मद्यनिषेध से पूर्व शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा शराब की बिक्री पर लगाई जाने वाली प्रतिबन्ध की माँग तथा मद्यनिषेध के पश्चात् शराब की अवैध बिक्री पर प्रतिबन्ध की माँगों को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध से पूर्व 68.31 प्रतिशत सूचनादाता नहीं चाहते थे कि शराब की बिक्री पर रोक लगाई जाएं तथा 31.69 प्रतिशत सूचनादाता चाहते थे कि शराब की बिक्री पर रोक लगाई जाएं। जबकि मद्यनिषेध के पश्चात् 66.5 प्रतिशत सूचनादाता चाहते हैं कि शराब की अवैध बिक्री पर रोक लगाई जाएं तथा 31.69 प्रतिशत व्यसनी नहीं चाहते हैं कि शराब की अवैध बिक्री पर रोक लगाई जाए। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि व्यसनी व्यक्ति यह चाहता है कि शराब की अवैध बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाई जानी चाहिए।

तालिका 12

शराब उपलब्धता की प्रकृति

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	सरलतापूर्वक	277	69.25
2	कठिनाई पूर्वक	42	10.5
3	सामान्य पूर्वक	81	20.25
	कुल योग	400	100

तालिका 12 मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले शराब उपलब्धता की प्रकृति को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध के पश्चात् 69.25 प्रतिशत सूचनादाताओं को शराब सरलतापूर्वक, 20.25 प्रतिशत को सामान्यपूर्वक तथा 10.5 प्रतिशत को कठिनाईपूर्वक उपलब्ध होती है। विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के बावजूद भी व्यसनी व्यक्ति को सरलतापूर्वक शराब उपलब्ध हो रही है।

तालिका 13

मद्यनिषेध के पश्चात् शराब बिक्री के बारे में जानकारी के स्रोत

क्रम सं.	विकल्प	मद्यनिषेध के पश्चात	
		कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	दुकानदारों से	111	27.25
2	रिक्शा या ठेला चालक	103	25.75
3	परिवहन चालक से	26	6.5
4	अन्य स्रोतों से	106	26.5
5	एक से अधिक	54	13.5
	कुल योग	400	100

तालिका 13 मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों को शराब बिक्री के बारे में विभिन्न माध्यमों से प्राप्त होने वाली जानकारी को प्रदर्शित करती है। मद्यनिषेध के पश्चात् सूचनादाताओं में 27.25 प्रतिशत व्यसनी व्यक्तियों को अपने निवास स्थान को छोड़कर अन्य बाहरी स्थानों पर शराब बिक्री के बारे में जानकारी दुकानदारों से, 26.5 प्रतिशत को अन्य स्रोतों से, 25.75 प्रतिशत को रिक्शा या ठेला चालक से, 13.5 प्रतिशत को एक से अधिक माध्यमों से तथा 6.5 प्रतिशत को परिवहन चालक से प्राप्त होती है। विश्लेषण के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि व्यसनी व्यक्ति को शराब बिक्री के बारे में जानकारी दुकानदारों एवं अन्य स्रोतों से हो जाती है।

तालिका 14

मद्यनिषेध के पश्चात् पुलिस प्रशासन द्वारा व्यसनी व्यक्तियों की गिरफ्तारी

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	74	18.5
2	नहीं	326	81.5
	कुल योग	400	100

तालिका 14 मद्यनिषेध के पश्चात् मद्यव्यसनी व्यक्तियों की पुलिस प्रशासन के द्वारा की गई गिरफ्तारियों को प्रदर्शित करती है। सूचनादाताओं में 18.5 प्रतिशत व्यसनी व्यक्तियों को मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसन के कारण पुलिस प्रशासन द्वारा गिरफ्तार किया गया तथा 81.5 प्रतिशत को गिरफ्तार नहीं किया गया। विश्लेषण से ज्ञात है कि व्यसन करने वाले व्यक्तियों में मद्यनिषेध अधिनियम के उलंघन के मामले में गिरफ्तारियों की संख्या काफी कम है।

तालिका 15

मद्यनिषेध के पश्चात् पुलिस प्रशासन द्वारा व्यसनी व्यक्तियों को दिया गया दंड

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	केवल चेतावनी	25	33.78
2	कारावास	32	43.24
3	अर्थदंड	13	17.56
4	अन्य	4	5.40
	कुल योग	74	100

तालिका 15 मद्यनिषेध के पश्चात् मद्यव्यसनी व्यक्तियों की पुलिस प्रशासन के द्वारा की गई गिरफ्तारियों के पश्चात् दिए गए दंड को प्रदर्शित करती है। यह तालिका 14 से संबंधित है जिन सूचनादाताओं को शराब व्यसन के पश्चात् पुलिस प्रशासन के द्वारा गिरफ्तार किया गया था उनमें 43.24 प्रतिशत व्यक्तियों को गिरफ्तार किये जाने के पश्चात् कारावास का दंड, 33.78 प्रतिशत को केवल चेतावनी, 17.56 प्रतिशत को अर्थदंड तथा 5.40 प्रतिशत व्यसनियों को अन्य प्रकार का दंड दिया गया। विश्लेषण से यह ज्ञात है कि गिरफ्तारियों के पश्चात् अधिकांश व्यसनियों को कारावास का दंड दिया गया है।

तालिका 16

मद्यनिषेध के पश्चात् समाज/परिवार के लोगों द्वारा प्रशासन से शिकायत का डर

क्रम सं.	विकल्प	कुल आवृति	कुल प्रतिशत
1	हां	318	79.5
2	नहीं	82	20.5
	कुल योग	400	100

तालिका 16 मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनी व्यक्तियों द्वारा शराब के सेवन करने पर समाज/परिवार के लोगों द्वारा प्रशासन से शिकायत के डर को प्रदर्शित करती है। सूचनादाताओं में 79.5 प्रतिशत शराब व्यसनी व्यक्तियों ने यह सहमति दी कि मद्यनिषेध के पश्चात् उन्हें शराब के सेवन करने पर समाज/परिवार के लोगों द्वारा प्रशासन से शिकायत का डर होता है तथा 20.5 प्रतिशत ने यह प्रतिक्रिया दी कि उन्हें शराब के सेवन करने पर समाज/परिवार के लोगों द्वारा प्रशासन से शिकायत का डर नहीं होता है। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् शराब व्यसनियों में समाज/परिवार के लोगों के द्वारा प्रशासन से शिकायत का डर होता है।

निष्कर्ष

अध्ययन के उपरांत यह ज्ञात होता है कि बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में मद्यनिषेध का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़े हैं। यह ज्ञात होता है कि मद्यनिषेध के पश्चात् बिहार में अवैध रूप से शराब उपलब्ध है, जिसके कारण नए शराब व्यसनी व्यक्ति की संख्या में वृद्धि हुई है तथा व्यसनी व्यक्ति अत्यधिक रूपये खर्च कर शराब खरीद रहा है और व्यसन कर रहा है। जहरीली शराब पीने से शराब व्यसनी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ रहा है तथा अत्यधिक मौतें भी हो रही है। इसके साथ ही शराब की सरलता पूर्वक उपलब्धता के कारण शराब व्यसनी की शराब सेवन की मात्रा में भी वृद्धि हुई है। परन्तु इन सभी नकारात्मक प्रभावों के बावजूद बिहार में 'मद्यनिषेध' समाज के लोगों के लिए लाभप्रद साबित हुआ है। व्यसनी व्यक्ति के परिवारों में पारिवारिक तनावों में कमी आने के साथ ही शांति का माहौल स्थापित हुआ है। घरेलु हिंसा की घटनाओं में कमी आई है जिससे सामाजिक शांति स्थापित हुई है।

सुझाव

बिहार में लागू मद्यनिषेध हेतु उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रदान किये गये हैं जो इस प्रकार है-

- मद्यनिषेध कानून को भारत में केंद्रीय स्तर पर बाध्यकारी रूप से लागू किया जाएं ताकि शराब की अवैध कालाबाजारी को सरलतापूर्वक रोका जा सके।
- व्यसनी व्यक्तियों को पकड़े जाने के पश्चात् उन पर दंडात्मक कारवाई न करते हुए सुधारात्मक कारवाई की जाये और उन्हें व्यसन मुक्ति केंद्र पहुँचाया जाए।
- मद्यनिषेध के बाद वर्तमान समय में प्रशासन की भ्रष्टाचारी संलिप्तता के कारण शराब लोगों के घर तक पहुंच रही है, यदि मद्यनिषेध को सख्ती पूर्वक लागू नहीं किया गया तो धीरे-धीरे शराब व्यसनी व्यक्ति का प्रशासन के प्रति डर भी समाप्त हो जाएगा और सामाजिक शांति भी भंग हो जाएगी। इसलिए प्रशासन की भ्रष्टाचारी संलिप्तता पर आवश्यक रूप से लगाम लगाई जाए।

- मद्यव्यसनी व्यक्ति के बीच शराब से होने वाले नुकसान को प्रत्यक्ष रूप से एक प्रयोगशाला, लघु फिल्म, प्रचार-प्रसार एवं नुक्कड़-नाटक आदि के माध्यम से जागरूकता फैलाई जाएं।

सन्दर्भ

गांधी. मो.क. (2019). *मेरे सपनों का भारत.* नई दिल्ली: राजपाल एंड संस. पृष्ठ -139

उपर्युक्त, गांधी. मो.क. (2019). पृष्ठ -139

यंग इंडिया, 04-02-1926, *सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय,* भाग-29 , पृष्ठ 429-30

प्रसाद, धनेश्वर. (2018). *शराबबंदी एक फौलादी फैसला.* दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 62

चंद्रसेन. (1940). *हिंदुस्तान लुट गया : कब और कैसे.* दिल्ली : प्रकाशक मंडल, पृष्ठ 86

चंद्रसेन. (1990). *मद्यनिषेध : नशे का व्यसन.* दिल्ली: शारदा प्रकाशन, पृष्ठ 9

https://www.who.int/data/gho/indicator-metadata-registry/imr-details/466

https://apps.who.int/iris/bitstream/handle/10665/274603/9789241565639-eng.pdf?ua=1

डोनाल्ड, ए. मायकेला, एस. लिशा, ए. फुलविया, पी -अल्बर्ट, बी. (2007). *पब्लिक लाइब्रेरी ऑफ साइंस मेडिसिन.* वॉल्यूम. 4, पृष्ठ 36

https://apps.who.int/iris/bitstream/handle/10665/274603/9789241565639-eng.pdf?ua=1

एरिक जे. एंड गेबर्ट सी.(1998). जेनेटिक्स ऑफ अल्कोहलिज्म. *एनुअल रिव्यू ऑफ जेनेटिक्स.* वॉल्यूम. 23, पृष्ठ, 19-36

श्रीवास, डी. (2008). *युवाओं में मादक द्रव्य सेवन की प्रकृति एवं प्रभाव का अध्ययन.* बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, पृष्ठ 78

शरण, आशुतोष एंड महावर, सुनील. (2023). भारत में मद्यनिषेध और महात्मा गाँधी की विचार दृष्टि. *मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल.* वॉल्यूम 2. अंक 1. पृष्ठ 81

मद्यनिषेध, उत्पाद एवं निबंधन विभाग, बिहार सरकार. https://state.bihar.gov.in/excise/CitizenHome.html, Accesed on 07-04-2023

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 1, जून 2025, पृ. 173-180)
UGC-CARE (Group-I)

वर्तमान में भारतीय संघीय लोकतंत्र में एक राष्ट्र-एक चुनाव की आवश्यकता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

साक्षी दीक्षित[*] एवं रचना यादव[†]

भारत संवैधानिक लोकतंत्र पर आधारित एक संघीय राज्य है जिसके मूल में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव प्रणाली है, जिसमें राष्ट्र के समस्त नागरिकजनों के साथ-साथ विभिन्न स्वायत्त संस्थाओं की भी गहरी निष्ठा है। किसी भी लोकतांत्रिक राज्य के लिए नियमित चुनाव एक अत्यन्त आवश्यक हिस्सा होता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है जिसमें स्वतंत्रता से वर्तमान तक विभिन्न रूपों में लोकतंत्र के इस महान उत्सव को सफलतापूर्वक बनाए रखने का प्रयास किया गया है। चुनाव ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी राष्ट्र की शासन व्यवस्था को विधिक, राजनीतिक कुशलता और निष्पक्षता के साथ संचालित किया जाता रहा है। आज भारत की राजनीति में चुनावी सुधार के अंतर्गत एक राष्ट्र-एक चुनाव की मांग की जा रही है। अत: यह शोध आलेख

[*]शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान,आगरा (उ.प्र.).
E-mail: dixitsakshi000@gmail.com
[†]सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान,आगरा (उ.प्र.).
E-mail: drrachnayadav@dei.ac.in

भारतीय संघीय लोकतंत्र के समक्ष प्रस्तावित एक राष्ट्र एक चुनाव की भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में आवश्यकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेगा। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत में निर्वाचन व्यवस्था से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना है एवं एक राष्ट्र-एक चुनाव व्यवस्था के लाभ और चुनौतियों को समझना है। प्रस्तुत शोध आलेख में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसमें तथ्यों का संकलन मुख्यत: द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। यह लेख एक राष्ट्र-एक चुनाव की अवधारणा के पक्ष एवं सीमाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रदान करता है। इसके साथ ही प्रस्तुत आलेख के माध्यम से एक देश-एक चुनाव की आवश्यकता, भारत में इसकी पृष्ठभूमि और इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द - स्वतंत्र चुनाव, लोकतांत्रिक व्यवस्था, संघीय गज्य, राजनीति, एक राष्ट्र, संसदीय प्रणाली, चुनौती आदि।

भारत में वर्तमान चुनाव प्रणाली

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जिसमें योग्य मतदाताओं की संख्या 90 करोड़ से अधिक है (भारत का निर्वाचन आयोग, 2024)। देश में संसद, राज्य-विधान मंडलों एवं स्थानीय निकाय हेतु चुनाव कराये जाते हैं। भारत की चुनाव प्रणाली की रूपरेखा संविधान में वर्णित है, जो कि संघ और प्रांतों के मध्य शक्तियों के स्पष्ट परिसीमन के साथ एक संघीय संरचना का प्रावधान करती है। भारत के संविधान के द्वारा, अनुच्छेद 324 के अंतर्गत भारत निर्वाचन आयोग की व्याख्या की गई है। इसे ही संघ एवं प्रांतीय स्तर के चुनाव संचालन की जिम्मेदारी प्रदान की गई है। इसी कारण से इसे स्वायत्त, स्थायी तथा निष्पक्ष निकाय के रूप में 25 जनवरी 1950 को स्थापित किया गया था। भारत निर्वाचन आयोग का कार्य न सिर्फ चुनावों को संचालित करना है वरन् इसके साथ ही यह राजनीतिक दलों और चुनाव वित्त-पोषितों पर व्यापक नियामक निगरानी भी रखता है। लगभग सात दशकों से चुनावी प्रक्रिया की अखंडता और विश्वसनीयता को मजबूती के साथ बनाए रखने वाली एक अत्यधिक सम्मानित और स्वतंत्र निकाय के रूप में भारत निर्वाचन आयोग द्वारा स्थान बनाया गया है। भारत में प्रथम आम चुनाव (1951-52) से लेकर हाल ही में संचालित हुए 18वें आम चुनाव 2024 को प्रत्येक 5 साल की समयावधि पर सफलतापूर्वक कराया गया है, जब तक कि लोकसभा समय से पहले भंग न हुई हो। 2024 के आम चुनावों में 64 प्रतिशत से अधिक मतदान हुआ, जो कि भारतीय लोकतंत्र की जीवंतता को दर्शाता है। यह प्रतिशत शुरुआती दौर में 45.67 प्रतिशत था (भारत निर्वाचन आयोग, 2024)।

एक राष्ट्र-एक चुनाव की अवधारणा

समकालिक चुनाव का विचार, भारतीय चुनावी चक्र को इस तरह से संरचित करने को लेकर है कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ एवं निश्चित समय के भीतर हों। हालाँकि वर्ष 1967 तक इस अवधारणा के तहत चुनाव आयोजित किये गए,

लेकिन कार्यकाल समाप्त होने से पहले विधानसभाओं और लोकसभाओं के बार-बार भंग होने के कारण यह अभ्यास धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर हो गया। वर्तमान में केवल कुछ राज्यों (आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, ओडिशा और सिक्किम) की विधानसभाओं के चुनाव ही लोकसभा चुनावों के साथ होते हैं।

'एक देश, एक चुनाव' वर्तमान केंद्र सरकार के एजेंडे में शामिल महत्त्वपूर्ण सुधारों में से एक है। वस्तुत: भारत के पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने जनवरी 2018 में संसद के अपने संबोधन में सरकार द्वारा प्रस्तावित सुधारों में से एक के रूप में इसकी चर्चा भी की थी। उन्होंने कहा था कि नागरिक देश के किसी न किसी हिस्से में बार-बार आयोजित होते रहने वाले चुनावों को लेकर एक चिंता रखते हैं क्योंकि इसका अर्थव्यवस्था और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी संपूर्ण देश में एक चुनाव कराये जाने की वांछनीयता पर मुखरता से बात करते रहे हैं (भारत सरकार, 2024)।

लोकतांत्रिक व्यवस्था

लोकतंत्र की एक परिभाषा अब्राहम लिंकन ने दी है "लोकतंत्र जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए शासन है" (लिंकन, 1863)। भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था संघवाद, संसदीय लोकतंत्र और बहुदलीय प्रणालियों के सिद्धांत पर आधारित है। देश में सरकार की कार्यप्रणाली और शक्तियों के वितरण की व्याख्या के लिए एक संविधान है, जो कि सर्वोच्च है।

भारत में संघीय प्रणाली

भारत एक संघीय प्रणाली वाला राष्ट्र है, लेकिन इसका झुकाव सरकार की एकात्मक प्रणाली की ओर अधिक है, इस कारण से इसे के.सी. व्हेअर जैसे राजनीतिक व्याख्याकारों के द्वारा अर्द्ध-संघीय प्रणाली के रूप में माना गया है। भारत एक विशेष प्रकार का संघ राज्य है इसमें एकात्मक और संघात्मक प्रणाली दोनों की विशेषताओं का समन्वय किया गया है। संविधान में परिकल्पित लोकतंत्र की अवधारणा में संसद और राज्य विधानसभाओं में निर्वाचन के माध्यम से लोगों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है। अत: राज्यों का संघ होने के नाते, भारतीय संघ के अतिरिक्त इसके प्रत्येक राज्य में अलग-अलग राज्य विधायिकाएं होती है जिनके चुनाव की व्यवस्था संविधान में की गयी है।

समकालिक चुनाव का इतिहास

एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा भारत में नई नहीं है वरन् यह पहले से ही यहाँ प्रचलित थी। 1952 के पहले आम चुनाव से लेकर 1967 तक लोकसभा तथा राज्य विधानसभा दोनों के लिए एक साथ चुनाव होते रहे हैं, 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के बाद पहला आम चुनाव 1951-52 में हुआ, जिसमें एक साथ चुनाव हुए। संविधान सभा की बहस में प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना ने कहा था कि "यह बहुत संभव है कि संघ

और प्रांतों के विभिन्न विधानमंडलों के चुनाव एक साथ न हो। हर वक्त कहीं न कहीं कोई न कोई चुनाव होता ही रहेगा, हो सकता है शुरुआती पांच या 10 साल ऐसा न हो लेकिन 10 से 12 साल बाद हर पल किसी न किसी प्रांत में कोई न कोई चुनाव चल रहा होगा। हमारे संविधान में सभी चुनाव एक साथ नहीं होंगे, वरन् विभिन्न विधान मंडलों के विघटन के अनुसार, एवं पारित अविश्वास प्रस्ताव के आधार पर अलग-अलग समय पर होंगे" (सक्सेना, 1950)। महत्वपूर्ण यह है कि प्रोफेसर सक्सेना की भविष्यवाणी के अनुरूप ही परिस्थितियों में परिवर्तन आया और वर्तमान में चुनाव एक साथ नहीं हो रहे हैं, अत: एक साथ चुनाव स्वरूप में परिवर्तन का कारण क्या है? और क्या इसे चुनाव सुधार के रूप में दोबारा भारत की मौजूदा केंद्र सरकार के द्वारा स्थापित किए जाने की मांग करना उचित साबित होगा? 1951-52 के पहले चुनाव से लेकर 1965 तक लगातार तीन चुनाव एक साथ आयोजित किए गए। 1965 से पहले भी केरल राज्य में पहली बार इसे बाधित किया गया था जिसमें राज्य विधानसभा को समय से पहले भंग कर दिया गया था और तत्कालीन मुख्यमंत्री ई.एम.एस. नंबूदरीपाद को उनके पद से हटा दिया गया था और बीच में ही चुनाव कराया गया था। साल 1967 के चुनावों में कांग्रेस को कई राज्यों में विधानसभा चुनावों में हार का सामना करना पड़ा था। बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, पश्चिम बंगाल और ओडिशा (उड़ीसा) जैसे कई राज्यों में विरोधी दलों या गठबंधन की सरकार बनी थी। इनमें से कई सरकारें अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाईं और विधानसभा समय से पहले भंग हो जाने के कारण, साल 1967 के बाद से बड़े पैमाने पर लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ होने का सिलसिला टूट गया। किंतु वर्तमान में केंद्र सरकार इसकी पुन: मांग कर रही है (भारत सरकार, 2024)।

भारत में एक राष्ट्र-एक चुनाव का कालक्रम

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से पहले भी दोनों चुनावों को एक साथ कराने की कोशिशें होती रही है - 1983 में चुनाव आयोग ने अपनी सालाना रिपोर्ट में इस विचार को प्रस्तुत किया था (भारत निर्वाचन आयोग, 1983)। उसके बाद साल 1999 में विधि आयोग ने भी यही बात अपनी रिपोर्ट में कही थी (विधि आयोग, 1999)। 2003 में अटल बिहार वाजपेयी (तत्कालीन प्रधानमंत्री) ने सोनिया गांधी (कांग्रेस अध्यक्ष) से इस मुद्दे पर बातचीत की लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उसके बाद लालकृष्ण आडवाणी ने वर्ष 2010 में इंटरनेट के माध्यम से यह बात साझा की, कि उन्होंने मनमोहन सिंह (तत्कालीन पीएम) और प्रणब मुखर्जी (तत्कालीन वित्त मंत्री) से दोनों चुनावों को साथ कराने तथा कार्यकाल को स्थिर करने की बात की थी। साल 2014 में जब से भारतीय जनता पार्टी ने इस विचार को अपने चुनावी घोषणा पत्र में शामिल किया है तब से इस पर लगातार बहस होती रही है। सत्ता में आने के बाद पी.एम. मोदी ने जब 2016 में एक देश-एक चुनाव पर जोर दिया तो नीति आयोग ने बड़ी तत्परता से इस पर रिपोर्ट भी तैयार कर ली (नीति आयोग, 2016)। उसके बाद वर्ष 2018 में विधि आयोग ने

कहा कि इस व्यवस्था को लागू करने के लिए कम से कम 5 संविधान संशोधन करने पड़ेंगे (विधि आयोग, 2018)।

एक देश एक चुनाव की आवश्यकता

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है, जिसमें प्रत्येक समय किसी न किसी स्थान पर चुनाव होता रहता है तथा आचार संहिता के कारण विकास कार्यों को बाधित करता रहता है। भारत को इन सब के प्रभाव से मुक्त करने के लिए 'एक राष्ट्र-एक चुनाव' के बारे में गहराई से विचार विमर्श करने की आवश्यकता है। देश में होने वाले चुनावों का अगर हम गहराई से आंकलन करते हैं तो हम पाते हैं कि देश में हर साल किसी न किसी राज्य के विधानसभा का चुनाव होता है। इसके कारण प्रशासनिक नीतियों के साथ-साथ देश के खजाने पर भी प्रभाव पड़ता है। जिस कारण से विकास हेतु लाई गई योजनाएं विस्तृत रूप से प्रभावित होती नजर आती है । ऐसी ही स्थिति लगभग वर्ष भर देश के अलग-अलग राज्यों में बनी रहती है। ऐसे में 'एक देश एक चुनाव' का विचार इन परिस्थितियों से छुटकारा दिला सकता है (भारत सरकार, 2024)। तार्किक एवं अन्य चुनौतियों के बावजूद भारत में लोकसभा (संसद) और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने का विचार लंबे समय से चर्चा का विषय रहा है।

एक देश-एक चुनाव के लाभ

अगस्त 2018 में भारत के विधि आयोग द्वारा एक साथ चुनावों पर जारी मसौदा रिपोर्ट के अनुसार, एक राष्ट्र-एक चुनाव के अभ्यास से सार्वजनिक धन की बचत की जा सकती है, प्रशासनिक व्यवस्था और सुरक्षा बलों पर पड़ने वाले तनाव को कम किया जा सकेगा, सरकारी नीतियों का समय पर कार्यान्वयन होगा तथा चुनाव प्रचार के बजाय विकास गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करते हुए विभिन्न प्रशासनिक सुधार किये जा सकेंगे (विधि आयोग, 2018)। एक राष्ट्र-एक चुनाव से देश को निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं - एक देश-एक चुनाव से मतदान में होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है। शेष अतिरिक्त राशि को देश के विकास में लगाया जा सकता है। राजनीतिक पार्टियों द्वारा किए जाने वाले खर्च पर नजर रखने में आसानी होगी। जब चुनाव की प्रक्रिया 5 वर्ष में एक बार होगी तो भारतीय निर्वाचन आयोग, अर्द्धसैनिक-बलों तथा नागरिकों को तैयारी के लिए अधिक समय मिलेगा, जिसके कारण चुनाव में अधिक पारदर्शिता होगी। प्रशासन तथा सुरक्षा बलों के अतिरिक्त भार को भी कम किया जा सकता है। इससे सरकारी नीतियों को समय पर लागू तथा कार्यान्वित करने में मदद मिलेगी।

एक देश-एक चुनाव की सीमाएं

पूरे देश के लिए एक चुनाव प्रक्रिया के लाभ तो है ही लेकिन साथ-साथ उसके कुछ नुकसान भी हैं, जो निम्नलिखित हैं - यदि देश में चुनाव वन टाइम शैली हो जाएगा तो,

विधानसभा का चुनाव लड़ने वाली क्षेत्रीय पार्टियां अपने क्षेत्रीय मुद्दों को मजबूती से नहीं उठा पाएंगी, राष्ट्रीय पार्टियों के आगे इनकी छवि धुंधली पड़ जाएगी। एक साथ चुनाव होने के कारण, इसके परिणाम घोषित होने में काफी देर हो सकती है क्योंकि आजकल सारी पार्टियां ई.वी.एम.का विरोध कर रही है तथा बैलेट पेपर से मतदान की मांग कर रही है। इसमें कुछ संवैधानिक समस्याएं भी है। जैसे यदि कई दल गठबंधन के माध्यम से सरकार बनाते हैं तो वह सरकार पाँच वर्ष से पहले भी गिर सकती है तब ऐसी स्थिति में पूरे देश में फिर से चुनाव कराना पड़ सकता है। पूरे देश में एक साथ चुनाव कराने में अत्यधिक मशीनरी एवं संसाधनों की आवश्यकता होती है, इत्यादि।

एक देश-एक चुनाव के समक्ष चुनौतियां

सैकड़ों राजनीतिक दलों को इस मत पर एकत्र करना तथा उन्हें विश्वास दिलाना लोहे के चने चबाने के बराबर है। 'एक राष्ट्र-एक चुनाव' का विचार 'संघवाद' की अवधारणा से सुमेलित नहीं है क्योंकि यह इस धारणा पर आधारित है कि संपूर्ण राष्ट्र 'एक' है जो कि अनुच्छेद 1 द्वारा भारत को 'राज्यों के संघ' के रूप में वर्णित विचार का खंडन करता है। अत: यह भारतीय संसदीय प्रणाली एवं संघीय ढांचे के विपरीत प्रतीत होता है। इस व्यवस्था को लागू करने के लिए कई विधानसभाओं के कार्यकाल को घटाना या बढ़ाना पड़ सकता है, जिससे राज्यों की स्वायत्तता खतरे में पड़ जाएगी। अत्यधिक जनसंख्या की दृष्टि से संसाधनों का सीमित होना। एक साथ चुनाव के लिये लगभग 30 लाख इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन और वोटर-वेरिफाइड पेपर ऑडिट ट्रेल मशीनों की आवश्यकता होगी। भारत निर्वाचन आयोग ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि एक साथ चुनाव कराने के लिये पर्याप्त बजट की आवश्यकता होगी। प्रत्येक 15 वर्ष की अवधि के बाद मशीनों को बदलने की अतिरिक्त लागत के साथ ई.वी.एम.और वी.वी.पी.ए.टी. की खरीद के लिये कुल लगभग 9,284.15 करोड़ रुपए की आवश्यकता होगी। एक साथ चुनाव होने से चुनावों के लिये मशीनों को एकत्र करने हेतु भंडारण लागत में वृद्धि होगी (भारत निर्वाचन आयोग, 2024)।

अनुच्छेद 83, 85, 172, 174, 356 आदि का उल्लंघन। संविधान के अनुच्छेद 83(2) और अनुच्छेद 172 में कहा गया है कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष का होगा, यदि इन्हें पहले भंग न किया जाए तथा अनुच्छेद 356 के तहत ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं जिसमें विधानसभाएँ पहले भी भंग की जा सकती हैं। इसलिये केंद्र अथवा राज्य सरकार का कार्यकाल पूरा होने से पहले सरकार गिरने की स्थिति में एक 'राष्ट्र एक चुनाव' योजना की व्यवहार्यता सबसे अहम प्रश्न है इस तरह के बड़े बदलाव के लिये संविधान में संशोधन करने से न केवल विभिन्न स्थितियों और प्रावधानों पर व्यापक तौर पर विचार करने की आवश्यकता होगी, बल्कि ऐसे बदलाव भविष्य में किसी प्रकार के संवैधानिक संशोधनों के लिये चिंताजनक उदाहरण भी सिद्ध हो सकते हैं। बार-बार होने वाले चुनावों के कारण चुनाव के वर्तमान स्वरूप को लोकतंत्र में अधिक लाभकारी के

तौर पर देखा जा सकता है क्योंकि यह मतदाताओं की आवाज सुनने की अधिक बार अनुमति देता है। चूँकि राष्ट्रीय और राज्य चुनावों के अंतर्निहित मुद्दे अलग-अलग होते हैं, इसलिये वर्तमान ढाँचा इन मुद्दों को पृथक रूप से हल करने में मदद करता है, जिससे अधिक जवाबदेही सुनिश्चित होती है। कुछ राजनीतिक दलों का तर्क है कि यह मतदाताओं के व्यवहार को इस तरह से प्रभावित कर सकता है कि मतदाता राज्य चुनावों के लिये भी राष्ट्रीय मुद्दों को केंद्र में रखकर मतदान करेंगे जिससे बड़े राष्ट्रीय दल, राज्य विधानसभा तथा लोकसभा दोनों चुनावों में जीत हासिल कर सकते हैं और इस तरह क्षेत्रीय दल हाशिये पर चले जाएंगे। राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर चुनाव कभी-कभी अलग-अलग मुद्दों पर लड़े जाते हैं, और जब वे एक साथ आयोजित किये जाएंगे तो मतदाता मुद्दों के एक समूह को दूसरे की तुलना में अधिक महत्त्व दे सकते हैं। प्रत्येक पाँच वर्ष में एक से अधिक बार मतदाताओं का सामना करने से राजनेताओं की जवाबदेही बढ़ती है और वे सतर्क रहते हैं। अंतत: चुनावों के दौरान बहुत सारी नौकरियाँ भी सृजित होती हैं, जिससे जमीनी स्तर पर अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है।

सुझाव

एक साथ चुनाव की आवश्यकता एवं व्यवहार्यता पर सभी राजनीतिक दलों और राज्यों के बीच आम सहमति का निर्माण किया जाना चाहिये। यह विभिन्न हित धारकों के बीच संवाद, परामर्श और विचार-विमर्श के माध्यम से किया जा सकता है। सरकार को 'एक राष्ट्र-एक चुनाव' को लागू करने के लिए अध्ययन, तथ्यों के मूल्यांकन और इस अवधारणा को लागू करने के तरीके पर मतदाताओं, विपक्षी दल के नेताओं एवं स्थानीय दलों से प्रतिक्रिया आमंत्रित करनी चाहिये। इस प्रकार, सर्वसम्मति से पूरे देश को यह तय करने का अवसर दिया जाना चाहिये कि वास्तव में भारत जैसे बहुभाषी, बहुधर्मी, विविध भौगोलिक स्थिति तथा विशाल जनसंख्या वाले देश में, 'एक राष्ट्र-एक चुनाव' को लागू करने की आवश्यकता है भी या नहीं।

निष्कर्ष

वर्तमान भारतीय चुनाव प्रणाली में एक राष्ट्र-एक चुनाव का मुद्दा एक उल्लेखनीय परिवर्तन हो सकता है यदि कुशल प्रशासनिक कर्मचारियों और सुरक्षा की बढ़ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नियमों और विधियों के उचित कार्यान्वयन के साथ इसे लागू किया जा सकेस स्थायी समिति का यह मानना है कि "भारत में चुनावों की अवधि को कम करने के लिए समाधान ढूंढे जाने चाहिए ताकि सरकारी मशीनरी एवं चुनाव आयोग को अन्य प्रशासनिक कार्य हेतु कुछ अतिरिक्त समय मिल सकता है।" एक भारत एक चुनाव एक अनुकरणीय अवधारणा है किंतु इससे समस्याएं कम होंगी अथवा नहीं, यहाँ गहन, विस्तृत एवं निर्णायक बहस की आवश्यकता है। वर्तमान में राजनीति के अंतर्गत किया गया कोई भी

कार्य वोट हासिल करने की मंशा से किया जाता है। अब भारत जैसे बड़े देश के समक्ष महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या वह वास्तव में पारंपरिक चुनाव तंत्र को छोड़कर एक राष्ट्र-एक चुनाव जैसे सुधार को अपनाने के लिए तैयार है?

संदर्भ

भारत निर्वाचन आयोग. (1983). *वार्षिक रिपोर्ट 1983*. भारत सरकार।

भारत सरकार. (2024). *एक राष्ट्र, एक चुनाव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और संभावनाएँ*. नीति आयोग।

भारत निर्वाचन आयोग. (2024). *भारत में समकालिक चुनाव का इतिहास*.

लिंकन, ए. (1863). *गेटीसबर्ग संबोधन*. यू.एस. गवर्नमेंट प्रिंटिंग ऑफिस।

नीति आयोग. (2016). *एक देश-एक चुनाव पर अध्ययन रिपोर्ट*. भारत सरकार।

प्रेस सूचना ब्यूरो (PIB). (2024). *भारत में एक राष्ट्र-एक चुनाव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य*. भारत सरकार।

सक्सेना, श्र.ल. (1950). *संविधान सभा बहस, खंड 12*. भारत सरकार प्रेस।

विधि आयोग. (1999). *संविधान और चुनाव सुधार पर रिपोर्ट* (रिपोर्ट संख्या 20). भारत सरकार।

विधि आयोग. (2018). *एक राष्ट्र-एक चुनाव पर अनुशंसाएँ* (रिपोर्ट संख्या 30). भारत सरकार।

लेखकों के लिए अनुदेश

मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल में समाज विज्ञान से सम्बन्धित सैद्धान्तिक आलेख, अनुभवजन्य शोध आधारित आलेख, टिप्पणियाँ और पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित की जाएँगी। लेखकों से निवेदन है कि अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु प्रेषित करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखें -

- कृपया अपनी रचना को यूनीकोड फॉन्ट में टंकित कर एमएस-वर्ड फाइल में mpissrhindijournal@gmail.com अथवा mailboxmpissr@gmail.com पर ई-मेल के माध्यम से प्रेषित करें। शोध आलेख की शब्द सीमा 3500 से 5000 के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 100-150 शब्दों में शोध आलेख का सारांश भी अनिवार्य है।
- विशेष परिमाण संख्या जैसे 2 प्रतिशत या 5 किलोमीटर को सूचित करने के अतिरिक्त इकाई अंकों (1-9) को शब्दों में ही लिखें जबकि दहाई एवं उससे अधिक की संख्या को अंकों में लिखें।
- किसी भी वर्तनी के लिए एकरूपता महत्वपूर्ण होती है। सम्पूर्ण रचना में एक ही शब्द को विभिन्न प्रकार से नहीं लिखा जाना चाहिए। इसमें प्रचलन और तकनीकी सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- रचना में उद्धृत वाक्यांशों को दोहरे उद्धरण चिह्न ("...") के मध्य दें। यदि उद्धृत अंश तीन वाक्यों से अधिक का हो तो उसे अलग पैरा में दें। उद्धृत अंश में लेखन की शैली और वर्तनी में कोई भी परिवर्तन अपनी ओर से न करें।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ शोध आलेख के अंत में दिये जाएँ तथा शोध आलेख में यथास्थान उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें। सन्दर्भ सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके न लिखें। सन्दर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा का मिश्रण हो तो सन्दर्भ को लिप्यान्तरित कर देवनागरी लिपि में ही लिखें।
- समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि आदि शोध आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे। प्राप्त रचनाओं की समीक्षा प्रकाशन से पूर्व विषय विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। यदि समीक्षक रचना में संशोधन हेतु अभिमत देते हैं तो रचनाकार को वांछित संशोधन करने होंगे। किसी भी शोध आलेख को स्वीकृत/अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादक का होगा।
- पत्र व्यवहार का पता : सम्पादक, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, 6, प्रो. रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (म.प्र.)।

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित स्वायत्त शोध संस्थान है। कार्य एवं स्वरूप की दृष्टि से मध्यप्रदेश में यह अपनी तरह का एकमात्र शोध संस्थान है। समाज विज्ञानों में समकालीन अन्तरशास्त्रीय संदृष्टि को बढ़ावा देते हुए समाज विज्ञान मनीषा का सशक्त संवाहक बनना संस्थान का मूल उद्देश्य है।

अपनी संस्थापना से ही यह संस्थान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं विकास की विभिन्न समस्याओं, मुद्दों और प्रक्रिया ओं पर अन्तरशास्त्रीय शोध को संचालित और प्रोत्साहित करते हुए सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत महत्त्व की शोध परियोजनाओं को क्रियान्वित करता है।

संस्थान की शोध गतिविधियाँ मुख्यतः पंचायत राज एवं ग्रामीण विकास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति से सम्बन्धित मुद्दे, विकास एवं संस्थापन, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक न्याय, लोकतन्त्र एवं मानवाधिकार, सूचना तकनीकी तथा समाज, शिक्षा एवं बाल अधिकार एवं नवीन आर्थिक नीतियाँ आदि संकेन्द्रण क्षेत्रों पर केन्द्रित हैं।

परिसंवादों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि अकादमिक अनुष्ठानों का आयोजन, समाज विज्ञानों में अनुसन्धानपरक नवोन्मेष एवं नवाचारों का प्रवर्तन, मन्त्रालयों एवं अन्य सामाजिक अभिकरणों को परामर्श एवं शोधपरक सहयोग प्रदान करना संस्थान की अन्य प्रमुख गतिविधियाँ हैं। संस्थान में एक संवर्द्धनशील पुस्तकालय एवं प्रलेखन केन्द्र है जिसमें समाज विज्ञानों पर पुस्तकें, शोध जर्नल्स और प्रलेख उपलब्ध हैं।

संस्थान शोध कार्यों को अवसरिक पत्रों, विनिबन्धों, शोध-पत्रों एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त दो षाण्मासिक शोध जर्नल - मध्यप्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़ (अँग्रेजी) एवं मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल (हिन्दी) का प्रकाशन भी संस्थान द्वारा किया जाता है।

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय में
पं.क्र. MPHIN/2003/10172 द्वारा पंजीकृत

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के लिए
डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया द्वारा
6, रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश) से
प्रकाशित एवं मुद्रित